



यथार्थवाद के नए प्रतिमान

(डा० भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास “का के लागू पांव” एवं
“गोबिन्द गाथा” के विशेष संदर्भ में)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-सार

निर्देशक

प्रो० अजब सिंह

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

शोधार्थिनी

कीर्ति राणा

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़
2002

यथार्थवाद के नए प्रतिमान
(डॉ० भगवती हारण मिश्र के उपन्यास 'का के लागू पांव'
एवं 'गोबिन्द गाथा' के विशेष सन्दर्भ में)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
द्वारा पी.एच.डी. उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का
सार

निर्देशक
प्रो० अजब सिंह
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग

शोधार्थिनी
कीर्ति राणा

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

वर्ष - 2002

यथार्थ, यथार्थता, यथार्थवाद शब्द का व्यापक फलक के क्रम में विश्लेषण—अनुशीलन —

यथार्थ शब्द जितना सरल, संक्षिप्त है अर्थ में यह उतना ही गूढ़ व विस्तृत है । साहित्य की एक पद्धति के रूप में यथार्थवाद पश्चिमी साहित्य से भारतीय हिन्दी साहित्य में आया है अतः पहले यह जानना आवश्यक है कि पाश्चात्य जगत में यथार्थ को किस सन्दर्भ में ग्रहण किया जाता है ।

पाश्चात्य सन्दर्भ में—

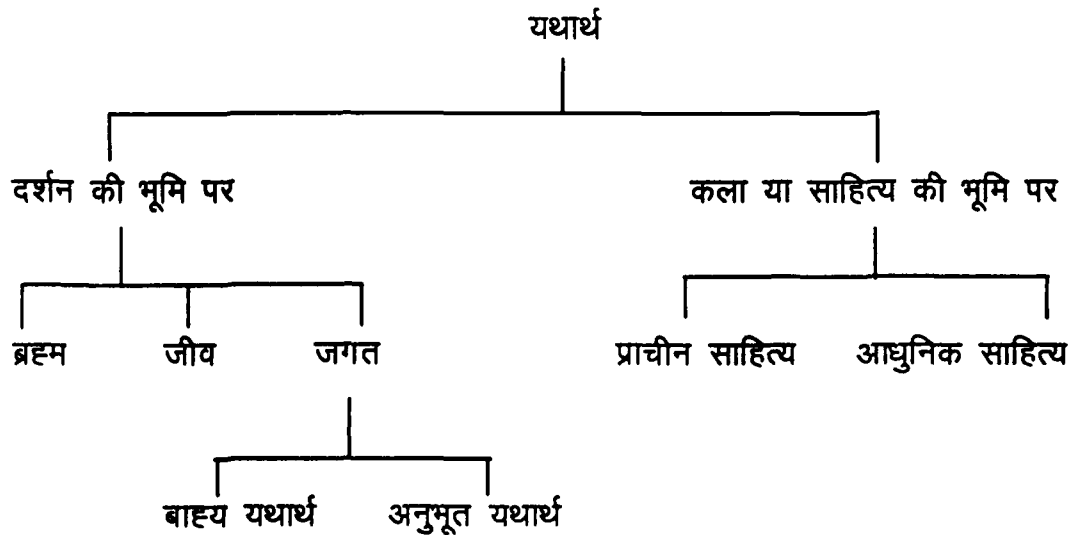
पश्चिम में यथार्थ का अर्थ है वास्तव, यथार्थता का अर्थ है वास्तविकता तथा यथार्थवाद सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचाने का रास्ता है । पश्चिमी यथार्थवाद मार्क्सवाद से सर्वाधिक प्रभावित हुआ 19वीं शताब्दी में यथार्थवाद विकसित हुआ । मैथ्यू आर्नल्ड की मान्यता है कि साहित्य ही जीवन की व्याख्या है । कला तभी यथार्थवादी है जब वह जीवन का चित्र उपस्थित करती है ।

पश्चिम में यथार्थवाद का विकास उपन्यास के माध्यम से हुआ । पश्चिमी विद्वान साहित्य में यथार्थ के रूप में दृश्य जगत के यथार्थ को ग्रहण करते हैं तथा उसका चित्रण ही यथार्थवाद है ।

पश्चिमी यथार्थवाद वस्तुजगत से पूरी तरह प्रभावित है जो कुछ भी बाह्य जगत में है वह मन से स्वतन्त्र अपनी वस्तुगत सत्ता में यथार्थ है । पश्चिमी साहित्य ने यथार्थ को भौतिक सन्दर्भों में ग्रहण किया है ।

भारतीय सन्दर्भ में—

भारतीय साहित्य में यथार्थ शब्द का प्रयोग सत्य के अर्थ में हुआ है । प्राचीन साहित्य में सत्य केवल ईश्वर को माना गया अतः उसी सन्दर्भ में इसका प्रयोग किया गया है । यथार्थ हमें भारतीय सन्दर्भ में दो भूमियों पर प्राप्त होता है ।



साहित्य में यथार्थ का अर्थ समस्त जगत सम्पूर्ण जगत का यथार्थ है हिन्दी विश्व कोष के अनुसार "अर्थ अनतिक्रम इति यथार्थ" जैसा ठीक होना चाहिये बैसा ।

यथार्थ का अर्थ है जो भी कुछ अस्तित्व में है वह यथार्थ है अपने आसपास व्याप्त इस यथार्थ का चित्रण जब एक पद्धति के रूप में किया जाने लगा तो वही यथार्थवाद हो गया । प्रेमचन्द का कहना है कि यथार्थवाद हमारी क्रूरताओं, हमारी दुर्बलताओं का नग्न चित्र होता है ।

जयशंकर प्रसाद लघुता पर साहित्यिक दृष्टिपात को यथार्थवाद मानते हैं ।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार तटस्थ रहकर जीवन और जगत का यथार्थ अंकन ही यथार्थवाद है ।

बाबू गुलाबराय के अनुसार यथार्थ वह है जो नित्यप्रति हमारे समाने घटित होता है ।

डॉ० शिवकुमार मिश्र जीवन को उसके सम्पूर्ण रूप में उभारकर देखने को यथार्थवाद का लक्ष्य मानते हैं ।

सच्चा यथार्थवादी अपनी कृति में सत्य के स्वरूप को विकृत करके नहीं परोसता बल्कि उसे इस रूप में परोसता है कि वह समाज में व्याप्त बुराइयों से लोगों को घृणा करना सिखाए ।

भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करने पर यह भी दृष्टि में आता है कि भारतीय सन्दर्भ में भौतिक के साथ आध्यात्मिक सन्दर्भ को भी यथार्थ के अर्थ में ग्रहण किया गया ।

पश्चिमी साहित्य में यथार्थ का विकास जहाँ कथा – साहित्य के माध्यम से हुआ वहीं भारतीय हिन्दी साहित्य में काव्य के माध्यम से यथार्थ का विकास हुआ । भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर यथार्थ तीन रूपों में मिलता है ।

THESIS

- | | | |
|---------------------|---|----------------------------------|
| आध्यात्मिक यथार्थ | – | ईश्वर के सन्दर्भ में |
| सामाजिक यथार्थ | – | जगत एवं मानव के सन्दर्भ में |
| मनोवैज्ञानिक यथार्थ | – | विचार एवं भावनाओं के सन्दर्भ में |

भारतीय साहित्य में यथार्थवाद पश्चिमी जगत से आया है बीसवीं सदी में उभरने वाली नई राष्ट्रीय चेतना, मार्क्सवादी तथा समाजवादी विचारों के कारण यथार्थवाद का आगमन हुआ । उस समय में समाजवादी विचारों का प्रभाव था अतः तत्कालीन साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद दृष्टिगोचर होता है । भारतेन्द्र युग की रचनाओं में यही यथार्थवाद देखने को मिलता है । समय के साथ – साथ छायावाद, स्वच्छंदतावाद, नवस्वच्छंदतावाद, आदि में यथार्थवाद का क्रमिक विकास देखने को मिलता है ।

वास्तव में भारतीय यथार्थवाद इसे ही अपनी संपूर्णता में ग्रहण करता है ।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों सन्दर्भों में यथार्थवाद को देखने पर यह पता चलता है कि यथार्थवाद को पश्चिम में एकांगी दृष्टिकोण से स्वीकार किया गया तथा उसका विकास कथा साहित्य के माध्यम से हुआ । वहाँ यथार्थवाद के चित्रण का विषय लेखक के चारों ओर घटने वाला वस्तुगत यथार्थ था जबकि भारतीय यथार्थ उसे उसकी सम्पूर्णता में देखता है यह उसे भौतिक के साथ – साथ आध्यात्मिक सन्दर्भ में भी ग्रहण करता

है । तथा दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय यथार्थवाद पश्चिम से प्रभावित होने पर भी काव्य के माध्यम से विकसित होता है न कि कथा – साहित्य के माध्यम से ।

भारतीय साहित्य में भी यथार्थवाद के आरम्भिक विकास के चरण वही रहे हैं जो पाश्चात्य साहित्य में रहे किन्तु बाद में इसे भारतीय संस्कृति ने प्रभावित किया और यह नवीन रूप में विकसित हुआ ।

यथार्थवाद के विविधचरण—

वैसे तो यथार्थवाद अनेक रूपों में विकसित हुआ लेकिन ऐसे चरण जो अपना ठोस वस्तुगत अस्तित्व रखते हैं, वे हैं—

1. आलोचनात्मक यथार्थवाद
2. समाजवादी यथार्थवाद
3. अति यथार्थवाद
4. जादुई यथार्थवाद
5. रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद

आलोचनात्मक यथार्थवाद—

यह यथार्थवाद का वह रूप जो इन्द्रिय ग्राह्य बोध को आधार मानकर व्यक्ति और समाज की वास्तविकताओं का उद्घाटन और विश्लेषण सौन्दर्यशास्त्रीय अनुभवों के रूप में करता है । इसके प्रस्तुतकर्ता बलजाक और स्तेन्तल हैं ।

अन्स्ट फिशर ने कहा कि आलोचनात्मक यथार्थवादी पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ इसी अकेले अहं के रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति एक ऐसे विलक्षण अस्वीकार का प्रतिफल है जिसमें अभिजात तथा गँवारू या सामान्य दोनों प्रकार की मानसिकता घुली मिली है ।

इसका पुरस्कर्ता ईमानदारी से यथार्थ का विश्लेषण करता है जो कुछ बुरा एवं घृणित है उसकी खुलकर आलोचना करता है एवं उसे धिक्कारता है तथा पीड़ित मुनष्यता के प्रति हमदर्दी रखता है ।

प्रेमचन्द्र का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके उपन्यासों और कहानियों में समाजवादी यथार्थवाद या कम से कम आलोचनात्मक यथार्थवाद के पर्याय के रूप में सामने आता है ।

यशपाल रॉगेय राघव, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव, अमृतराय जगदीश इत्यादि की कृतियों में यह विचार धारा लक्षित होती है ।

समाजवादी यथार्थवाद—

23 अप्रैल सन् 1932 को समाजवादी यथार्थवाद को स्वीकृति मिली । समाजवादी यथार्थवाद की मूल वस्तु वर्ग संघर्ष है यह परम्परागत की अपेक्षा जीवन की गतिशीलता पर बल देता है ।

नन्द दुलारे वाजपेयी यथार्थवाद का सबसे स्वस्थ रूप समाजवादी यथार्थवाद को ही मानते हैं इनके नायक साधारण जनसमुदाय के नायक ही हैं जैसे प्रेमचन्द्र के 'गोदान' उपन्यास का पात्र 'गोबर' । हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत यशपाल, अमृतलाल नागर, रॉगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्ता आदि समाजिक यथार्थवादी उपन्यास कार हैं ।

अतियथार्थवाद—

इसके प्रवर्तक क्रांस के आंद्रे फ्रास और पाल एलुआर्ड थे ।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार अति यथार्थवाद एक प्रकार से मानव विचारधारा के क्षेत्र में व्यवस्था के प्रति क्रम वद्धता के प्रति विद्रोह करता है जो कुछ रूढ़ियों एवं व्यवस्थाओं में बंधा हुआ है उन सबको आमूल नष्ट कर देना ही अति यथार्थवादी आन्दोलन का मुख्य ध्येय रहा । डॉ० नगेन्द्र के अनुसार अति यथार्थवादी साहित्य कृत्रिमता के आवरण को हटाकर समाज और मानव को उसके यथार्थ, कहीं — कहीं नग्न रूप में उद्घाटित करता है । यह

मानव दुर्बलताओं के प्रति अरुचि न उत्पन्न कर इसको लेकर उनका चित्रण करता है जिससे कहीं कहीं वह बीमत्स व जुगप्साकारक हो सकता है ।

जादुई यथार्थवाद—

हिन्दी में जादुई यथार्थवाद की चर्चा सन् 82 में कोलंबियाई लेखक ग्रेब्रियल मार्क्वेस के उपन्यास 'वन हंड्रेड इयर्स ऑफ सॉलिच्यूड को नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद शुरू हुई ।

जादुई यथार्थवाद तीसरी दुनियाँ से प्रेरणा लेकर मिथक एवं फैंटेसी के माध्यम से यथार्थ को उपस्थित करता है ।

लैटिन अमेरिकी जादुई यथार्थवाद की सारी शक्ति आदमी के भौतिक जगत् और आत्मिक जगत् दोनों के ही विस्मयों के द्विधात्मक सह अस्तित्व को तलवार की धार पर चलने के संतुलन और रोमांच के साथ व्यक्त करने में निहित रहती है ।

रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद—

यथार्थवाद का आधुनिकतम चरण रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद है डॉ० अजब सिंह की आलोचनात्मक पुस्तक यथार्थवाद: पुनर्मूल्यांकन में यह अपने पूर्ण रूप में उपस्थित हुआ है । रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद: आध्यात्मिक, सांस्कृतिक चेतना के रूप में समकालीन मानव जीवन के लिये एक नवीन मार्गदर्शन का आदर्श प्रतिमान बन सकता है ।

मानवी चेतना में जो सबसे प्रमुख वैशिष्ट्य है वह आत्मतत्त्व है आध्यात्मिकता को सर्वथा नकार देना अनुचित है योगियों, सिद्धों, नाथों, की जो परंपरा है उसको नकारने का मतलब है कि हम अपने यहाँ की स्वस्थ परम्परा नकार रहे हैं । इसलिये आर्ष चेतना की प्रस्तुति के लिये यथार्थवाद की रचनात्मक क्रांतिकारी चेष्टा की आवश्यकता है ।

यह संस्कृति व अध्यात्म दोनों के साथ ही यथार्थ को उसके भौतिक रूप में ग्रहण करता है । अतः यह सम्पूर्ण दृष्टिकोण पाठक के सम्मुख रखता है ।

यथार्थवाद के बदलते संदर्भ—

यथार्थ को देखने का दृष्टिकोण सबका भिन्न होता है अतः उसे ग्रहण करने के संदर्भ भी बदल गए हैं।

यथार्थवाद का भौतिक संदर्भ—

साहित्य की यथार्थवादी धारा ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाती है। साहित्य में यथार्थवाद की नींव रखने वालों ने जगत के प्रति वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया।

हिन्दी साहित्य ने अपने आरम्भिक दौर अर्थात् भारतेन्दु युग से ही यथार्थवाद के इसी संदर्भ को ग्रहण किया। परिणामस्वरूप 19 वीं शताब्दी में नयी विचार धाराओं ने जन्म लिया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति ऐसे क्रान्तिकारी तत्व थे जिनका संघर्ष भारतीय सामंतवादी सभ्यता, विश्वासमूलक दृष्टिकोण तथा धार्मिक आध्यात्मिक संस्कृति से हुआ।

मुनष्य के जीवन को अधिकाधिक सुखी बनाने के लिए इहलोकवादी विचार धारा को बल मिला तथा भोगवादी संस्कृति प्रबल हुई।

यथार्थवाद के भौतिकवादी स्वरूप ने समाज से संकीर्णताओं एवं सामाजिक बुराइयों को दूर करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। हार्ड फास्ट के अनुसार यथार्थवाद के भौतिक जीवन एवं जगत के चित्रण ने देशभक्ति, राष्ट्रीयता, समाज के नव निर्माण जैसे तत्वों को बल प्रदान किया।

यथार्थवाद का सांस्कृतिक आध्यात्मिक संदर्भ—

यथार्थवाद आध्यात्मिक संदर्भ में, प्राचीन भारतीय साहित्य में बहुतायत से देखने को मिलता है। भारतीय मानस में यथार्थ अंदर तक बसा है। हमारी चेतना में स्वतंत्र रूप से विद्यमान रहने वाली चीज तो वस्तुतः भौतिक तत्व ही है। लेकिन अपनी व्यापकता में आध्यात्मिक चेतना को भी समेटता है।

यथार्थ भौतिकवाद से उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ अध्यात्म तत्व की ओर अग्रसर हुआ है।

आज के भौतिकवादी यथार्थ ने अपने लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया अतः आध्यात्मिक संदर्भ में भी इसे देखने की आवश्यकता महसूस हुई अब तक विज्ञान और अध्यात्म में जो विरोध रहा है उसका परिणाम अशुभ है। मनुष्य एक शरीर भी है और आत्मा भी अतः यह आवश्यक है कि इस अधूरेपन को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के माध्यम से पूरा किया है। साहित्य के क्षेत्र में यही कार्य आध्यात्मिक यथार्थवाद से संभव है।

यथार्थवाद के नये प्रतिमान—

यथार्थवाद का नवीन प्रतिमान रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद के रूप में सम्मुख आया।

रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद—

यह भौतिक यथार्थ और सांस्कृतिक आध्यात्मिक यथार्थ के मिश्रण से बना है मार्क्सवाद ने भी अपने समग्र रूप में आध्यात्मिकता को अपनाया। डॉ० अजब सिंह ने रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद को आज के युग की महती आवश्यकता माना है। आज के मनुष्य की आवश्यकता रचनात्मक शक्तियाँ हैं अतः भारतीय दर्शन के तत्वों का सहारा आवश्यक है।

योग से ही रचनात्मक क्रान्तिकारी चेतना के विकास के दरवाजे खुलते हैं। योग का उद्देश्य इस धरती पर अतिमानस रचनात्मक चेतना : आध्यात्मिकता को उतारना है। उसे यहाँ स्थापित करके ही हम मनुष्यत्व को पूर्णता तक पहुँचा सकते हैं।

आज ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता है जो जीवन के यथार्थ को समझे। साहित्य मनुष्य के समग्र जीवन का अंकन करे।

आर्ष ऋषियों को यह उद्घोष है कि मानव जीवन का सार आध्यात्मिकता है अतः रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद के द्वारा इस आध्यात्मिक तत्व को अपनाना चाहिए।

रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद में व्यक्त आध्यात्मिक, सांस्कृतिक चेतना—

भारत न केवल एक आर्थिक एवं सामाजिक यथार्थ है। बल्कि एक जीवन यथार्थ है। कोई भी साहित्य अपनी संस्कृति से विमुख नहीं रह सकता। जब भारतीय साहित्य में भारतीय संस्कृति दृष्टिगोचर होती है तो उसमें हमें आध्यात्मिकता स्पष्ट लक्षित होती है।

यथार्थवाद एक रचनात्मक पद्धति है इसलिए आध्यात्मिक क्रान्ति के इस दौर में आनन्द की प्राप्ति के लिए रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद का साहित्य में प्रयोग आवश्यक है। इसके द्वारा ही समाज को प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं यही विश्वमानवता की कल्याणी धारा को प्रवाहित करने में समर्थ है।

विज्ञान एवं मानववाद—

साहित्य के क्षेत्र में नित्य नये – नये रूपों का विकास होता जा रहा है प्राचीन मान्यताओं पर नवीन साहित्य का सृजन नहीं हो सकता। यथार्थवाद भी निरन्तर परिवर्तनशील है इसलिये साहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। यथार्थवाद अपने आरंभ में मार्क्सवाद से पूरी तरह प्रभावित रहा। पश्चिम के प्रभाव से आगमन होने के कारण हिन्दी साहित्य में भौतिकता का प्रवेश हुआ। पश्चात्य साहित्य में यथार्थवाद वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाते हुये स्वीकार किया गया मार्क्सवाद कहना है “केवल बोधगम्य वास्तविक जगत ही यथार्थ है।”

पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवाद का विकास उपन्यास एवं कहानी के माध्यम से हुआ । कथा साहित्य कल्पना पर आधारित होता है इसीलिये वह यथार्थ का पूर्ण रूप प्रस्तुत करने में असमर्थ है । महामानव, अतिमानव की परिकल्पना पाश्चात्य साहित्य में देखने को नहीं मिलती । भारतीय साहित्य में यथार्थवाद का विकास कविता के माध्यम से हुआ । स्वच्छंदतावादियों ने अपनी काव्य कृतियों में महामानव, अतिमानव की उद्घोषणा करते हुये पूर्ण यथार्थवाद को प्रस्तुत करने का प्रयास किया ।

यथार्थवाद का भौतिक सन्दर्भ कथा साहित्य में प्रेमचन्द की कृतियों में प्रमुखतः देखने को मिलता है । यथार्थवाद के भौतिक जीवन एवं जगत के चित्रण ने देशभक्ति, राष्ट्रीयता, समाज के नव निर्माण जैसे तत्वों को बल प्रदान किया । यथार्थवाद के भौतिक पक्ष ने विश्व में अनेक क्रांतियों को जन्म दिया ।

समय के साथ – साथ यह अनुभव किया जाने लगा कि अध्यात्म पक्ष को उपेक्षित कर हम यथार्थ का पूर्ण रूप प्राप्त नहीं कर सकते वैसे भी भारतीयता को अध्यात्म से अलग करके नहीं देखा जा सकता । भारतीय साहित्य के अनुसार यथार्थ वह है जो सदैव रहता है इस रूप में केवल ईश्वर ही यथार्थ है ।

हमारी चेतना में स्वतन्त्र रूप से विद्यमान रहने वाले भौतिक तत्व में ही आध्यात्मिकता समाविष्ट है । अतः मनुष्य को चेतना की सम्पूर्णता के साथ ही विकास पथ पर अग्रसर होना चाहिये ।

आज जब यह अनुभव किया जा रहा है कि भौतिकवादी संस्कृति का नाश कर रही है तब यह आवश्यक हो जाता है कि यथार्थ को अध्यात्म के साथ मिलाकर देखा जाये । इसी क्रम में यह मानव को नवमानव एवं अतिमानव की श्रेणी में लाता है ।

कोरा भौतिकवाद मनुष्य के जीवन को जटिल बनाता है इसलिये विस्तृत मानस पटल पर अध्यात्म को स्वीकारना है भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय छायावादी कवियों ने भी किया ।

डॉ० अजब सिंह कहते हैं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के द्वारा मनुष्य का पूर्ण विकास हो सकता है । आज के युग की आवश्यकता भी यही है वर्तमान समय में यथार्थ को अध्यात्म के साथ देखा जाना आवश्यक है ।

इस रूप में यथार्थवाद के नये प्रतिमान के रूप में हिन्दी के प्रख्यात आलोचक डॉ० अजब सिंह रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद की बात करते हैं यह यथार्थ निरन्तर नष्ट होते जा रहे नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करता है । यह मानव के अन्दर एक नवीन चेतना की सृष्टि करता है जो सम्पूर्ण विश्व को एक मानती है । यह विश्वकल्याण, विश्वमानवता की रक्षा — सुरक्षा का मार्ग है ।

इस प्रकार के यथार्थवाद से युक्त रचनाओं का मूल उद्देश्य मानव का विकास कर उसे महामानव बनाना है । अपनी भारतीय संस्कृति से विमुख होकर हम प्रगति नहीं कर सकते हैं अतः रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद भारतीय संस्कृति के जीवन्त मूल्यों की स्थापना करता हुआ मानव जीवन के वास्तविक यथार्थ से हमारा परिचय कराता है ।

अपने वैश्विक स्तर पर यथार्थवाद अपनी संपूर्णता में नये प्रतिमान के रूप में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद का स्वरूप अपनाता है ।

यथार्थवाद का मुख्य उद्देश्य मानववाद की स्थापना है और सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिये आज के समय में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद का साहित्य में प्रयोग ही एकमात्र उपाय है । इस विशेषता से युक्त रचना ही अमृताकला प्रेमकला है ।

यथार्थवाद अपने समस्त विकास के केन्द्र में मनुष्य को रखता है । अतः यह मानववाद का प्रबल पक्षधर है । मानववाद बहुत दूर विज्ञान द्वारा स्थापित किया गया है ।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में मानव नियति—

विज्ञान ने जितनी भी प्रगति की है मानव को केन्द्र में रखकर की है । “विज्ञान एव वैज्ञानिकों की चिन्तनधारा के केन्द्र में मानव ही विद्यमान है । विज्ञान की प्रगति ने मानव

के चिन्तन क्रम में, जीवन की व्यवहार प्रणाली में, चेतना के गतिमान स्तरों में, समाजों की व्यवस्था में, राष्ट्रों की संचालित शक्ति में और विश्व भर की सांस्कृतिक गतिविधियों में एक परिवर्तन ला दिया परिणामस्वरूप मानवतावादी चिन्तनधारा को स्वीकृति मिली । जैसे – जैसे विज्ञान मानव के सम्बन्ध में नवीन जानकारीयाँ उपलब्ध कराता गया वैसे – वैसे मनुष्य अपनी शक्तियों से परिचित होता गया ।

वैज्ञानिक उपलब्धियों से यह सिद्ध किया जाने लगा कि मनुष्य एक विकासशील प्राणी है इस विशाल सृष्टिएक एक अंश है जिसका मृत्यु के पश्चात कोई अस्तित्व नहीं रहता इसलिये मनुष्य का सम्बन्ध केवल इसी जीवन और संसार से है ।

मनुष्य में सृजनात्मक क्रिया की स्वतन्त्र शक्ति है और वही अपने भाग्य का विधाता है ।

मानववाद— समाजवाद :—

इस प्रकार के विश्वासों ने मनुष्य को अपना नियन्ता स्वयं बनाया । फलस्वरूप संसार में अनेक क्रांतियाँ हुई जो मानववाद एवं समाजवाद की स्थापना में सहायक हुई मानववाद मनुष्य को श्रेष्ठ मानता है अतः किसी भी प्रकार का शोषण एवं उत्पीड़न असहनीय है ।

मानववादी विश्वबन्धुत्व, समत्व, विश्वास, सौहार्द, सर्वेभवन्तु सुखिनः जैसे लक्ष्यों को स्थापित करने का प्रयास करते हैं इस रूप में यह समाजवाद की स्थापना भी करता है ।

मानववाद एक ऐसे समाज की स्थापना चाहता है जिसमें व्यवहार में सब मनुष्य समान हो । मनुष्य को अपने जीवन की निम्नतम सुविधाएँ रोटी, कपड़ा तथा आवास उपलब्ध हो । मनुष्य अपनी शक्तियों को पहचाने तथा एक नयी मानव संस्कृति की स्थापना

करें । इस प्रकार यह समाजवाद का पक्ष लेते हुये मानव के विकास की आवश्यकता पर बल देता है ।

मानववाद—

मनुष्य के पूर्णत्व का जो स्वप्न हमारे साहित्यकारों ने देखा था उसका प्रारम्भिक चरण मानववाद है । आधुनिक काल में भी तथा प्राचीन समय से ही मानव को केन्द्र में रखकर साहित्य का सृजन हुआ है तब से आज तक साहित्यकारों, दार्शनिकों एवं मनीषियों ने यह अनुभव किया कि चेतना के स्तरों का विकास करता हुआ मनुष्य मानव से नवमानव और नवमानव से अतिमानव की श्रेणी को प्राप्त कर सकता है । यह मनुष्यत्व से देवत्व तक की विकास यात्रा है ।

नवमानववाद —

मानववाद जहाँ केवल मानव के स्वातंत्र्य का दर्शन है वहीं नवमानववाद उससे एक कदम आगे सांस्कृतिक परिवर्तन का भी पक्षधर है । नवमानववादियों का मुख्य कार्य है कि वे जनता को लोकतन्त्रीय मूल्यों, स्वातंत्र्य, समानता, विवेक सहयोग आत्मानुशासन के प्रति जागरूक बनायें तथा इन मूल्यों पर आधारित उचित संस्थानों का प्रतिष्ठापन करें ।

नवमानववाद शासन को जनता के हाथ में देने का पक्ष धर है । यह मानव की स्वतन्त्रता को एक मौलिक मूल्य मानने का पक्ष लेता है विचारों की स्वायत्त सत्ता पर आग्रह नवमानव वाद की विशेषता है प्रगतिवादी — प्रयोगवादी रचनाओं में कथा साहित्य में इसी प्रकार के मानववाद के दर्शन होते हैं ।

नवलकिशोर इरविंग बेविट ओर पॉल ई मूर द्वारा प्रवर्तित नवमानववाद का प्रमुख सिद्धान्त आंतरिक अवरोध और प्रमुख मूल्य संयम एवं सामंजस्य को मानते हैं । इसका लक्ष्य है प्राचीन संस्कृति और अतिप्राकृत सत्ता को अस्वीकारते हुये धर्म के अच्छे तत्वों का संश्लेषण ।

डॉ० अजब सिंह के ग्रन्थ 'नवस्वच्छंदतावाद' में हम पाते हैं कि नवस्वच्छंदतावादी साहित्य में मानववाद किंचित नये रूप में लक्षित होता है । यहाँ मानव नव मानव है नवमानववादी दर्शन को प्रस्तुत करने का श्रेय मानवेन्द्र नाथ राय को है । राय नवमानववाद के आधार पर नई विश्वजनीन मानवता के उदय की घोषणा करते हैं यह एक स्वतन्त्र, समन्वित और न्यायपरक सामाजिक व्यवस्था देने में समर्थ होगा ।

अतिमानववाद—

यथार्थवादी चिन्तन ने साहित्यिक प्रक्रिया में बदलाव उपस्थित किया जिसके कारण मानव के बदलते रूपों को साहित्य में देखा गया । नवमानव अपनी चेतना के स्तर पर विकास करता हुआ अतिमानस की स्थिति को प्राप्त करता है । यह अतिमानस अरविन्द की देन हैं कहते हैं — व्यक्तियों में सर्वथा नवीन चेतना का संचार करें, उनके अस्तित्व के समग्र रूप को बदलों जिससे पृथ्वी पर नए जीवन का समारंभ हो सके मनुष्य आज जिन समस्याओं से जूझ रहा है उनका समाधान अतिमानस की भूमि है जब मनुष्य का पदार्पण यहाँ होता है तभी उसका कल्याण होता है ।

नीत्सो के अनुसार मनुष्य वह चीज है जिससे मनुष्य को आगे जाना है जो स्थिति बन्दर की मनुष्य के आगे है वही स्थिति मनुष्य की महामनुष्य के सामने होगी । अतिमानव ही सृष्टि का लक्ष्य है ।

मनुष्य की चेतना का यह विकास भारतीय चिन्तन एवं साधना पर आधारित है ।

सुभाष चन्द्र बोस के शब्दों में हिन्दू दर्शन के अनुसार पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि तभी संभव है जब हम योगिक बोध अर्थात् किसी प्रकार के प्रज्ञात्मक बोध द्वारा अतिमानसिक स्तर पर पहुँच सकें अतः मनुष्य की चेतना के चरमविकास द्वारा मानव से अति मानव की श्रेणी को प्राप्त किया जा सकता है ।

मनुष्य की चेतना विभिन्न क्षेत्रों में विकास करती है जिसके परिणामस्वरूप तीन प्रकार मानव दृष्टिगोचर होते हैं वैज्ञानिक मानव, आध्यात्मिक मानव, दार्शनिक मानव ।

वैज्ञानिक मानव—

वैज्ञानिक मानव अपनी चेतना के स्तर पर स्वयं को ही प्रत्येक वस्तु का नियामक मानता है । वह धर्म तथा ईश्वर जैसी किसी वस्तु में विश्वास नहीं करता तथा सृष्टि में घटने वाली प्रत्येक घटना के पीछे कारण कार्य के सिद्धान्त को मानता है । यह विज्ञान के द्वारा समूची मानवता को बचाना चाहता है ।

आध्यात्मिक मानव—

धर्म और अध्यात्म को ही जीवन का लक्ष्य समझकर, जो योग के द्वारा, चिन्तन के द्वारा अपनी चेतना का विकास करता है वही आध्यात्मिक मानव है । आज के वैदिक मनुष्य और आगामी आध्यात्मिक मनुष्य में वही भेद होगा जो पशुओं और आज के मनुष्यों में है । मनुष्य का व्यक्तित्व ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है ।

आध्यात्मिक मनुष्य का आर्चिभाव विश्व का अगला सौभाग्य है । यही आध्यात्मिक आदर्श हमारे भीतर रचनात्मक शक्तियों का रक्षण करेगा निष्प्राण बुद्धि से मानव को रक्षा और त्राण देगा । मनुष्य की वासनाओं को रचनात्मक रूप देकर मन आचरण और आत्मा से हमें एक बना कर विश्व- बंधुत्व को संभव बनाएगा ।

दार्शनिक मानव—

दार्शनिक मानव जीवन और जगत को विज्ञान और अध्यात्म दोनों को मिलाकर दर्शन के धरातल पर देखता है । वह केवल प्रगति का उन्नति का, प्रदर्शक है । जीवन को सर्वश्रेष्ठ रूप से जीने के लिये एक जीवन दर्शन उपस्थित करता है । अतिमानव के रूप में दार्शनिक मानव एक ऐसा जीवन — दर्शन उपस्थित करता है जो सर्वात्म दर्शन हो तथा सम्पूर्ण विश्व के लिये कल्याण कारी हो ।

डॉ० भगवतीशरण मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व—

डॉ० भगवतीशरण मिश्र आधुनिक समय के साहित्य में स्थापित एक ऐसे हस्ताक्षर हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में विशेषकर उपन्यासों में यथार्थवाद के नये प्रतिमान के रूप में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को प्रस्तुत किया है विहार प्रान्त के जिला रोहतास के एक गाँव में 27 मार्च 1939 को जन्मे डॉ० मिश्र की हिन्दी संस्कृत में प्रारम्भ से ही रुचि थी । पिताजी के आदेशानुसार प्रशासनिक सेवा में आने के बावजूद आपने लेखन कार्य किया । प्रशासनिक पदों के अतिरिक्त आप हिन्दी एवं साहित्य संबंधी स्वतन्त्र रूप से धारित कुछ सरकारी पदों पर भी रहे ।

उत्कृष्ट साहित्य सेवा के लिये समय — समय पर आपको पुरस्कारों से सम्मानित भी किया जाता रहा है ।

मिश्र जी की भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था बहुत गहरी है वर्तमान समय में निरन्तर नष्ट होते जा रहे मानवीय मूल्यों के प्रति मिश्र जी के साहित्य में चिन्ता दिखाई देती है इन्ही नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रयास इनके साहित्य में है ।

डॉ० मिश्र जी शैली शिल्प के मामले में जहाँ एक ओर परम्परा से हट कर कार्य करते हैं वहीं दूसरी ओर भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा को नवीनता के साथ अपनी कृतियों में उपस्थित करते हैं । अपने कृतित्व में वे जितने गम्भीर दिखाई देते हैं व्यवहार में उतने ही सरल एवं सहज हैं ।

डॉ० मिश्र के व्यक्तित्व की विविधता उनकी कृतियों में भी लक्षित होती है । हिन्दी, अंग्रेजी संस्कृत, बँगला, भोजपुरी तथा मौथिली भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण आपकी कृतियों में भारत की विविधता में एकता वाली संस्कृति के दर्शन होते हैं ।

कृतियाँ—

डॉ० मिश्र ने हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में लिखा है । ये विधायें हैं कविता, कहानी, ललित निबन्ध हास्य व्यंग्य, उपन्यास, तान्त्रिक एवं आध्यात्मिक, बाल साहित्य प्रौढ़ साहित्य, खण्डकाव्य, पर्यावरण साहित्य इत्यादि ।

आपकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं,— एहसासों की एक शाम, चुकने का दर्द (कहानी संग्रह) पवनपुत्र, पीतांवरा, का के लागू पांव, गोविन्द गाथा, अथ मुख्यमन्त्री कथा, देख कबीरा रोया, पावक, अग्निपुरुष, प्रथमपुरुष, पुरुषोत्तम (उपन्यास) प्रेरक कहॉनियाँ धरती का सपना, परियों के देश में (बाल साहित्य) यदा यदा हि धर्मस्य (निबन्ध संग्रह) मि० मुखर्जी मजिस्ट्रेट बने (हास्य व्यंग्य) शीशे का शैतान (कविता संग्रह) आदि ।

डॉ० मिश्र की रचनायें संख्या में साठ से भी अधिक हैं । इनके 'शान्ति दूत' उपन्यास को इन्टरनेट पर धारावाहिक के रूप में प्रकाशित किया गया है ।

डॉ० भगवती शरण मिश्र के उपन्यास साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण—

अनेक विधाओं में लेखन के बावजूद उपन्यास जगत में डॉ० मिश्र की विशिष्ट पहचान है । आपके पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद अपनी सांस्कृतिक आध्यात्मिक पूर्णता के साथ उपस्थित हुआ ।

नदी नहीं मुड़ती—

नदी नहीं मुड़ती एक सामाजिक उपन्यास है । जिसमें जीवन में भौतिकता के साथ साथ धर्म एवं नैतिकता के महत्व को दर्शाया है । उपन्यास की नायिका नैतिकता एवं धर्म को विस्मृत कर सुख पाना चाहती है किन्तु बाद में उसे अपने किरे पर पश्चाताप होता है ।

पहलासूरज—

पहला सूरज छत्रपति शिवाजी के जीवन पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । इस उपन्यास में एक मानव को, जीवन के संघर्षों का सामना करते हुये महामानव बनते हुये वर्णित किया है ।

पवनपुत्र—

‘पवनपुत्र’ डॉ० मिश्र का एक लोकप्रिय उपन्यास है । पवनपुत्र हनुमान के जीवन पर आधारित इस उपन्यास का कथानक पौराणिक होने के बावजूद जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता है । यह जीवन में आध्यात्मिकता की आवश्यकता पर बल देते हुये अतिमानव के निर्माण की उद्घोषणा करता है । विघटनकारी मानव मूल्यों की रक्षा और उनकी पुनर्स्थापना यह उपन्यास करता है । कथा प्राचीन अवश्य है किन्तु वर्तमान से पूर्णतया संबद्ध है ।

प्रथमपुरुष—

यह उपन्यास श्रीकृष्ण के बाल्यकाल की घटनाओं पर आधारित पौराणिक — ऐतिहासिक उपन्यास है । कृष्ण के जीवन से जुड़े चमत्कारों को यथार्थ की भूमि पर देखने का साहसी प्रयत्न इस उपन्यास में है । इस उपन्यास का लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि ईश्वर पैदा नहीं होता बल्कि अपने संघर्ष, कर्म, आकांक्षा व महत्वाकांक्षा के बल पर मानवत्व से देवत्व को प्राप्त करता है ।

पुरुषोत्तम—

‘पुरुषोत्तम’ ‘प्रथमपुरुष’ का ही द्वितीय खण्ड है । इसमें कृष्ण की किशोरावस्था से युवावस्था तक की घटनाओं को ग्रहण किया है । महाभारत के युद्ध व गीता के सन्देश को मिश्र जी ने बहुत कुशलता के साथ वर्णित किया है । नयी पीढ़ी को यह उपन्यास गीता — दर्शन बहुत ही सरल भाषा में तथा सार रूप में उपलब्ध कराता है । श्रीकृष्ण का चरित्र ऐसे मानव के रूप में इस उपन्यास में विकास पाता है जो दार्शनिकमानव, आध्यात्मिक मानव

तथा अतिमानव की अवस्था को अपने पराक्रम से प्राप्त कर देवत्व के पद को प्राप्त करता है ।

पीतांबर—

‘पीतांबर’ मीराबाई के जीवन पर आधारित जीवनीपरक, चरित्र— प्रधान उपन्यास है पीतांबर जितना ऐतिहासिक है उतना ही मनोवैज्ञानिक भी । नारी मनोविज्ञान को इसमें पूरी सम्पूर्णता के साथ देखा जा सकता है । इस उपन्यास की नायिका मीरा सामाजिक क्रांतिकारी है । वह समाजिक मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करती है तथा समाजवादी, मानववादी, नायिका की भाँति उसका चरित्र विकास पाता है । मीरा अध्यात्म से पूर्णतया संवधित रहीं अतः अध्यात्मिकता का रंग भी इस उपन्यास में है । यद्यपि कुछेक घटनाओं को लेखक ने अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है किन्तु यह आखिरकार है तो उपन्यास न कि इतिहास । कल्पना का आश्रय तो लेखक के लिये कथा साहित्य के निर्माण में आवश्यक है ही ।

का के लागू पांव—

‘का के लागू पांव’ डॉ० मिश्र का ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें गुरु तेग बहादुर के जीवन का घटनाक्रम है । यह पूर्णतया यथार्थ के ताने — बाने पर बुना उपन्यास है । रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद के सभी पक्षों को हम इस उपन्यास में पाते हैं । यह मानव जीवन को उसकी पूरी यथार्थता के साथ पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता है आज के युग की समस्याओं के समाधान को इसकी घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है । यह उपन्यास जीवन की वास्तविकताओं के प्रति पूर्ण सजग है ।

गोबिन्द गाथा—

‘का के लागू पांव’ का ही दूसरा खण्ड ‘गोबिन्द गाथा’ है प्रथम खण्ड में गोबिन्द राय (गुरु गोबिन्द सिंह की बाल्यावस्था) का वर्णन है तो इस खण्ड में गुरु गोबिन्द सिंह की

कथा है । यह एक महापुरुष के निर्माण और उसके लिये आवश्यक आत्मविश्वास, अपार सहन शक्ति और अलौकिक आदान – अवदान की कथा है । गुरु गोबिन्द द्वारा स्थापित किये गये खालसा पंथ का उद्देय समाज से जाति – पांति के भेदभाव को दूर करना था इस रूप में यह उपन्यास, देश – प्रेम, सामाजिक एकता, भाईचारे जैसे मूल्यों की स्थापना करता है ।

देखकबीरा रोया—

कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी था । इनके बहु आयामी व्यक्तित्व को अपनी सम्पूर्णता में डॉ० मिश्र ने 'देख कबीरा उपन्यास' में चित्रित किया है । कबीर के जीवन से जुड़े चमत्कारिक प्रसंगों को डॉ० मिश्र ने विज्ञान सम्मत बनाने का प्रयत्न किया है । कबीर का चरित्र एक मानववादी, नवमानववादी, अतिमानववादी का चरित्र है । कबीर के ऐतिहासिक चरित्र को पूरी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है । स्थान— स्थान पर कबीर के पदों एवं दोहों का प्रयोग होने से यह उपन्यास अत्यंत रोचक बन पड़ा है कबीर तो स्वयं यथार्थ के प्रस्तोता थे अतः उनके जीवन पर आधारित यह उपन्यास यथार्थ को ही प्रस्तुत करता है ।

शान्ति दूत—

'शांतिदूत' अहिंसा और विश्व शान्ति के दूत महात्मा गाँधी के जीवन पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । वर्तमान समय के भ्रष्ट राजनीतिज्ञों व देश में बढ़ते हुये हिंसा के साम्राज्य के वातावरण में यह कृति गाँधी जी को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करती है । उनके जीवन की घटनाओं को तिथिवार इस उपन्यास में वर्णित किया गया है जो इस बात का प्रमाण है कि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ मरोड़कर नहीं अपितु यथार्थ के परिवेश में ही प्रस्तुत किया गया है ।

अथ मुख्यमन्त्री कथा—

यह उपन्यास पौराणिक ऐतिहासिक की लीक से हटकर एक राजनैतिक उपन्यास है। आज के धराशायी होते मानव — मूल्यों एवं सर्वत्र व्याप्त अपसंस्कृति पर प्रकाश डालने वाली तथा पाठको के मानस को झकझोसे वाला उपन्यास है यह । यह समकालीन भ्रष्ट राजनीतिक तन्त्र की वास्तविकताओं को उजागर करता है यह भी कल्पना के द्वारा यथार्थ की भूमि पर रची एक यथार्थवादी कृति है जिसमें विहार के एक मुख्यमन्त्री की कथा है ।

पावक, अग्निपुरुष—

बल्लभाचार्य के जीवन — चरित को पावक और अग्निपुरुष दो खंडों में डॉ मिश्र ने प्रस्तुत किया है । यह भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें बल्लभाचार्य के चरित्र का विकास यथार्थ के साथ उपस्थित हुआ । भक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य बल्लभाचार्य ने किया । प्राणी मात्र से प्रेम करना उनकी पुष्टि मार्गीय साधना का लक्ष्य है क्योंकि ईश्वर की कृपा बिना किसी भेदभाव से सभी को प्राप्त होती है । बल्लभाचार्य का जीवन आज के युग की युवा पीढ़ी को एक उचित मार्ग प्रदान करता है तथा आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देता है ।

यथार्थवाद के नए प्रतिमान—

(डॉ० भगवतीशरण मिश्र की कृति 'का के लागू पांव' एवं 'गोबिन्द गाथा' के विशेष सन्दर्भ में)

'का के लागू पांव' ऐसा उपन्यास है जिसमें कल्पना का प्रयोग केवल दृश्य चित्र वर्णन में हुआ है । उपन्यास के पात्र तथा उपन्यास में वर्णित घटनाएँ यथार्थ हैं । यह कृति यथार्थवाद को एकांगी रूप में प्रस्तुत नहीं करती अपितु यह भौतिकता, सामाजिकता के साथ — साथ आध्यात्मिकता को भी अपने अन्दर समाहित करती है इसलिये यह रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद की प्रतिनिधि रचना है । इस उपन्यास के नायक का जीवन चरित इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अध्यात्म को भौतिकता के साथ समाहित करके ही सफल क्रांति

की जा सकती हैं यह क्रांति विध्वंसकारी नहीं अपितु रचनात्मक होती है । ऐसी क्रांति ऐसे मानवों की एक फौज खड़ी कर सकती है जो अतिमानव हों ।

यथार्थवाद को वैश्विक स्तर पर रेखांकित करने करने के लिये, विश्वमानवता के कल्याण के लिये रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवादी चेतना की आवश्यकता को यह उपन्यास अजागर करता है तथा इसकी स्थापना करता है । भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना यह उपन्यास करना है । इस कृति में यथार्थवादी चेतना अपनी परिपूर्णता में अभिव्यांजित है ।

‘का के लागू पांव’ की ही तरह ‘गोबिन्द गाथा’ भी मानव के कल्याण के लिये जो कि यथार्थवाद का मूल उद्देश्य है सर्वात्म दर्शन को प्रस्तुत करती है । यह दर्शन मनुष्य के कल्याण के लिये आत्मतत्त्व को अपनाने पर बल देता है । उपन्यास का नायक समाज में परिवर्तन की क्रांति का पक्षधर तो है किन्तु धर्म व अध्यात्म के हथियार के साथ । इस उपन्यास का नायक समाजवादी व आलोचनात्मक यथार्थवादी उपन्यास के नायकों से भी श्रेष्ठ है उसकी श्रेष्ठता का कारण उसके चरित्र में सांस्कृतिक व आध्यात्मिक गुणों का होना है ।

उपन्यास के पात्रों में, घटना में, वातावरण में, भाषा में तथा उद्देश्य में भी यथार्थवाद के नये प्रतिमान के रूप में रचनात्मक, क्रांतिकारी यथार्थवाद प्रस्तुत हुआ है क्योंकि इन सभी में हम भारतीय संस्कृति, श्रद्धा व आध्यात्मिक गुणों को पाते हैं ।

‘का के लागू पांव’ तथा ‘गोबिन्द गाथा’ यथार्थवाद के नये प्रतिमान का मानकरूप है ।

तीर्थ संस्कृति एवं अखण्ड मानववाद—

तीर्थ संस्कृति, मानवी संस्कृति सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने वाली संस्कृति है । ‘का के लागू पांव’ एवं गोबिन्द गाथा में विभिन्न तीर्थों का वर्णन है जो यह

बताता है कि किस प्रकार तीर्थ स्थानों पर जाने से मनुष्य की भावनाएँ ऊर्ध्वमुखी हो जाती है तथा एक विशेष प्रकार की ऊर्जा मनुष्य को वहाँ से प्राप्त होती है तीर्थ संस्कृति का वर्णन करते समय इन उपन्यासों में लेखक ने विभिन्न तीर्थ स्थानों का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है यह कथा—साहित्य तथा आलोचना के क्षेत्र में भौगोलिक आलोचना के रूप में नयी शुरुआत है । तीर्थ स्थानों से सम्बन्धित जो असुन्दर व घृणित पक्ष है उसे भी लेखक ने निष्पक्ष भाव से रखा है ।

तीर्थ स्थानों पर चाहे वे किसी भी धर्म के हों एक विशेष बात यह होती है कि वहाँ किसी के भी साथ किसी प्रकार भेदभाव नहीं होता । इस प्रकार तीर्थ संस्कृति के द्वारा विश्वमानवतावाद का सन्देश लेखक ने दिया है । ये विभिन्न तीर्थ स्थान ही हैं जो सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँध सकते हैं ।

वास्तव में विश्वमानवतावाद की स्थापना के लिये अध्यात्मवाद, अतिच्छन्दा, अमृताकला व प्रेमकला की आवश्यकता है । इनकी उपेक्षा करके हम सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में नहीं बाँध सकते । अध्यात्म ही वह तत्व है जो सम्पूर्ण विश्व के मानवों को कल्याणकारी मार्ग सुझा सकता है तथा उनकी चेतना को अतिच्छन्दस की अवस्था पर पहुँचा सकता है । इस तत्व से मुक्त रचना ही अमृताकला से परिपूर्ण रचना है । ऐसी रचना ही विश्वमानवतावाद, का सन्देश प्रदान कर सकती है । 'का के लागू पांव' एवं 'गोबिन्द गाथा' में विभिन्न भाषाओं के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डाला गया है । संस्कृत, अरबी, फारसी तथा हिन्दुस्तानी तीनों ही भाषाएँ उस समय महत्वपूर्ण भाषाएँ थी अतः संस्कृत जिसमें हम भारतीय संस्कृति का अध्ययन करते हैं । अरबी — फारसी जिसमें मुस्लिम संस्कृति झलकती है तथा हिन्दुस्तानी जो कि समन्वयात्मक रूप लिये रहती है तीनों का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि तीनों मिलकर ही तत्कालीन भारत का पूर्ण रूप प्रस्तुत करती हैं ।

इन भाषाओं के माध्यम से यह भी इन उपन्यासों में सिद्ध किया गया कि ईश्वर तत्व, अध्यात्म तत्व एक ही है । मनुष्य की अज्ञानता ही उसको विभिन्न रूपों में देखती व

समझती है जबकि वह आत्म तत्त्व तो विश्व के सभी व्यक्तियों में समान रूप से उपस्थित है ।

इस दोनों उपन्यासों की यह मुख्य विशेषता है कि इनमें वर्णित एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है । सम्पूर्ण कथा – साहित्य के इतिहास में ऐसा प्रथम बार हुआ जबकि बिना किसी काल्पनिक पात्र की सृष्टि किये किसी लेखक ने उपन्यास की रचना की है ।

‘का के लागूं पांव’ और ‘गोबिन्द गाथा’ दोनों ही उपन्यासों में लेखक ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि आध्यात्मिकता ही विश्वमानवता की वाहिका है । यदि सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँधना है तो उसे आध्यात्मिकता के द्वारा ही बाँधा जा सकता है ।

वास्तव में वर्तमान समय में यह सिद्ध हो गया है कि यथार्थ को एकतरफा दृष्टिकोण , एकांगी दृष्टिकोण से देखने पर हम उसके उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते । यदि हम मानव को पूर्ण विकास चाहते हैं तो हमें भारतीय तत्त्व की उपेक्षा करके नहीं वरन उसे समाहित करके यथार्थवाद को देखना होगा । ऐसा करने पर यथार्थवाद एक नवीन रूप के साथ आलोचकों के सम्मुख उपस्थित हुआ जिसे रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद के रूप में चिह्नित किया गया ।

डॉ० भगवनीशरण मिश्र के उपन्यासों में इसी यथार्थवाद के दर्शन होते हैं ।

यह शोध प्रबन्ध यथार्थवाद के नये प्रतिमान के रूप में रचनात्मक, क्रांतिकारी यथार्थवाद को स्वीकारता है तथा उसके तत्त्वों के रूप में मानववाद, विज्ञानवाद, अतिमानववाद, अतिच्छन्दस, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, अमृताकला को ग्रहण करता है ।

यह यथार्थवाद ही सम्पूर्ण यथार्थवाद है और यही विश्व के समक्ष एक कल्याणकारी मार्ग उपस्थित करता है । ~~मानव~~ को उसके चरम विकास तक पहुँचाना ही इसका लक्ष्य है ।



यथार्थवाद के नए प्रतिमान

(डा० भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास “का के लागू पांव” एवं
“गोबिन्द गाथा” के विशेष संदर्भ में)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

प्रो० अजब सिंह

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

शोधार्थिनी

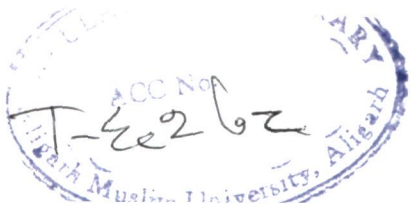
कीर्ति राणा

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

2002



T6278

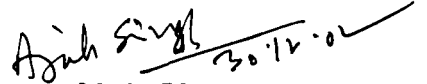
**DEPARTMENT OF HINDI
FACULTY OF ARTS
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH - 202 002**

CHAIRMAN

Telex : 564—230 AMU IN
Phones : Off.—700920 } Ext.
700921 } 342
700922 } 343
Res.— (0571) 501660

This is to certify that Mrs. Kirti Rana (D.O.A. 25-11-1999)
Research Scholar in Hindi has submitted her Ph.D. Thesis on
dated 30.-12-2002 on the Topic : "Yatharthwad Ke Naye Pratiman
: Kake Lagun Panw Avam Gobind Gatha Ke Vishesh Sandarbh
mein"

She was regular for two years from the date of admission
in the Department of Hindi and has completed her Ph.D. thesis
under the supervision of professor Ajab Singh, Dept. of Hindi,
A.M.U. Aligarh.


(Professor Ajab Singh)
Chairman

Professor Ajab Singh

Chairman

Department of Hindi
Aligarh Muslim University
Aligarh.

B.A. (Hons.), M.A., Ph.D., D.Lit.

- ☐ The International Man of the Year 1997-98
- ☐ The Twentieth Century Achievement Award 1997-98
- ☐ WHO's Who, The Twenty First Century Award
The International Biographical Centre, Cambridge C.B. 230 P. (England)
- ☐ Acharya Ramchandra Shukla Namit Puraskar of the
Year 1987 for the Best Book of Hindi Criticism. 'नवस्वच्छंदतावाद'
- ☐ Acharaya Ram Chandra Shukla Namit Purskar of the
year 1998 for the Best Book of Hindi criticism 'यथार्थवाद: पुनर्मूल्यांकन'



This is to certify that the Thesis entitled "**Yatharthvad Ke Naye Pratiman**
(**Kake Lagun Panw Awa.n Gobind Gatha Ke Vishesh Sandarbh Mein**)" has
been written by **Mrs. Kirti Rana** under my supervision. It is an original research
work and is suitable for submission for Award of Ph.D. Degree in Hindi of the
Aligarh Muslim University, Aligarh.

Ajab Singh
Chairman
Department of Hindi
Aligarh Muslim University
ALIGARH

Ajab Singh
(**Professor Ajab Singh**) 30.12.02
Supervisor

परम आदरणीय
ममतामयी, प्रेरणादायिनी
जननी
को
समर्पित

प्राक्कथन

प्रस्तावना:-

✓ 'यथार्थवाद' शब्द आते ही मस्तिष्क में एक परिभाषा बन जाती है जो हमें प्रत्यक्ष दीखता है उसी का साहित्य में चित्रण यथार्थवाद है किन्तु जब इस शब्द की गहराई में जाते हैं तब पाते हैं कि यह सुनने में पढ़ने में जितना सरल है उतनी ही गूढ़ता अपने अन्दर समाहित किए है । समाजवाद भौतिकवाद, मार्क्सवाद स्वच्छतावाद, प्रकृतवाद आदि तमामवादों को समाहित किये है। ✓

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यथार्थवाद के नए प्रतिमान के रूप में 'सांस्कृतिक आध्यात्मिक रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद' को लिया है। इसके अभाव में यथार्थवाद अपने पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता । यह अपनी परिपूर्णता में मानव के चरन विकास की माँग करता है अतः आध्यात्मिकता को अतिछन्दा को उपेक्षित नहीं किया जा सकता है।

डॉ० भगवतीशरण मिश्र जी की औपन्यासिक कृतियों 'का के लागू पाँव' एवं 'गोबिन्द गाथा' के संदर्भ में यथार्थवाद के नए प्रतिमान के रूप में इसी रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवादी को प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में यथार्थवादी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मानव चरित्रों के उत्तरोत्तर विकास को दिखाया गया है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत यथार्थवाद के सैद्धान्तिक रूप को स्पष्ट किया गया है। चूँकि ✓ यथार्थवाद एक वाद के रूप में पश्चिम से आया अतः भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों संदर्भों में यथार्थ यथार्थता एवं यथार्थवाद शब्द को किस रूप में लिया गया इसका विश्लेषण एवं अनुशीलन है । जिसके निष्कर्ष स्वरूप भारतीय यथार्थवाद में भौतिकवाद का प्रभाव द्रष्टिगोचर होता है। अपने विकास के दौरान यथार्थवाद को यँ तो विभिन्न साँचों में ढालने के प्रयास हुए लेकिन मुख्यतः यथार्थवाद चार चरणों में विकसित हुआ। आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में साहित्यकारों ने सामाजिक अव्यवस्था का खुलकर चित्रण किया तथा उसे इस रूप में पाठकों के सम्मुख रखा कि उसका विद्रूप पक्ष उनको उसे समाप्त करने की प्रेरणा दे।

समाजवादी यथार्थवाद के रूप में मार्क्सवादी सिद्धान्तों को अपनाया गया। अपने तृतीय चरण में यथार्थवाद बाहरी जगत से हटकर व्यक्ति के अन्तर्मन में भी प्रवेश कर गया। मनुष्यके अचेतन में व्याप्त विचारों को मूर्त रूप प्रदान करना इसका लक्ष्य बन गया इसीलिए इसे अतियथार्थवाद की संज्ञा प्रदान की गई।

अपने चतुर्थ चरण में यह मिथकों की दुनियाँ में प्रवेश करता है। यह मनुष्य के भौतिक एवं आत्मिक दोनों जगत के विस्मयों के द्विआत्मक सहअस्तित्व को रचनाओं में अंकित करता है।

द्वितीय अध्याय में वर्तमान समय में यथार्थवाद के बदलते संदर्भों को लिया गया है। क्योंकि निरन्तर विकास करते जा रहे यथार्थवाद में समय के साथ साथ परिवर्तन हुआ है उसके संदर्भों में बदलाव आया। यथार्थवाद का आरम्भिक संदर्भ भौतिक वादी था भौतिक जगत के यथार्थ को ही यथार्थ मान जाता था तथा उसी का साहित्य में चित्रण यथार्थवाद हुआ। किन्तु यह यथार्थवाद के स्वरूप को पूरी तरह स्पष्ट करने में असफल रहा। यह उसके एकांगी चित्रण को अभिव्यक्त करता था जबकि साहित्य में यथार्थवाद आत्मिक जगत में प्रवेश कर चुका था। भौतिक तत्व की व्यापकता की परिधि में आत्मिक जगत भी आ जाता है। अतः यथार्थवाद और अधिक व्यापक होकर सांस्कृतिक आध्यात्मिक यथार्थवाद हो गया है। सांस्कृतिक आध्यात्मिक यथार्थवाद को समाहित करने के बाद मानववाद इसमें स्वतः ही प्रविष्ट हो गया क्योंकि आत्मतत्त्व मानव से ही समबन्धित है। इस प्रकार यथार्थवाद के पूर्ण विकास के रूप में मानवत्व का पूर्ण विकास देखा गया है। इसी श्रृंखला में यथार्थवाद के नए प्रतिमान के रूप में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को स्वीकार किया गया। जो समाजवाद की ही तरह मनुष्य के चरम विकास का पक्षधर है। यह मानव को महामानव, अतिमानव की श्रेणी तक लाकर सम्पूर्ण विश्व में अखण्डमानववाद, विश्वमानवतावाद की स्थापना का प्रयास

करता है। यह मानव के विकास के लिए क्रांति का पक्ष धर है किन्तु ऐसी क्रांति का जो ध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक है।

यथार्थवाद के नए प्रतिमान को रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद का नाम देकर एक सम्पूर्णता के रूप में उपस्थित करने का श्रेय डॉ अजब सिंह (अध्यक्ष हिन्दी विभाग अ. मु. वि०) को है। उनका कहना है कि “ यथार्थ को वैश्विक स्तर पर संपूर्णता में रेखांकित करने के लिए हमें एक नया संदर्भ लेना है जिसमें विश्वमानवता की कल्याणी चेतना का उत्स है।

सामान्य जनों के अपार आध्यात्मिक और बौद्धिक क्षमता में यदि हमारा विश्वास है हमारी आस्था है तो हम रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद चेतना जो सांस्कृतिक आध्यात्मिक चेतना से संपृक्त होकर विश्वमानवता की कल्याणी धारा को प्रवाहित करने में संवल प्रदान कर सकती है”। वास्तव में अध्यात्म की अपेक्षा कर हम यथार्थ को पूर्ण रूप में स्वीकार नहीं कर सकते डा० भगवतीशरण मिश्र ऐसे उपन्यासकार है जिन्होंने कथा साहित्य में प्रथम बार यथार्थवाद को व्यापक परिप्रेक्ष्य में लिया है।

उसी परिप्रेक्ष्य में यह आध्यात्मिक — सांस्कृतिक चेतना, अति मानस, अतिच्छन्दस अमृताकला व प्रेमकला को ग्रहण करता है।

तृतीय अध्याय यथार्थवाद की आत्मा के रूप में मानववाद को व्याख्यायित करता है। यथार्थवाद पूरी तरह वैज्ञानिक है। विज्ञान के विकास ने इस वाद को अत्यधिक प्रभावित किया। विज्ञान के आविष्कारों के परिणामस्वरूप मानव को यह ज्ञात हुआ कि उसका विकास किस प्रकार हुआ। मानववाद वैज्ञानिक अनुसंधानों के साथ ही साथ विकास की ओर अग्रसर होता गया। प्राचीन मान्यताएँ समाप्त होती गई तथा विज्ञान ने मनुष्य को सर्व समर्थ मान लिया। किन्तु यह विचार सत्य सिद्ध नहीं हुआ और मानववाद जिसने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ माना नष्ट प्राय हो गया वैज्ञानिक उलब्धियों ने मनुष्य की नियति को अपने नियंत्रण में रखने की अनेक कोशिशें की किन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका विज्ञान की उपलब्धियों से ही यह

सिद्ध हुआ कि कुछ पदार्थों में स्वेच्छाचारिता का गुण विद्यमान होता है। मनुष्य भी ऐसा ही पदार्थ है जिसके अन्दर विवेक व इच्छाशक्ति विद्यमान है। इन खोजों के पश्चात् मानववाद ही नई परिभाषा विकसित हुई जिसके अंतर्गत वह अपना विकास स्वयं कर सकता था। इसका ज्ञान होने पर समाजवाद का जन्म हुआ चूँकि मनुष्य अपनी शक्ति से परिचित हो चुका था। इसी क्रम में मानववाद विकसित होते हुए नवमानववाद व अतिमानववाद की श्रेणी तक पहुँच गया। इस श्रेणी तक विकसित होने में मानव तीन कोटियों में वर्गीकृत हो गया वैज्ञानिकमानव आध्यात्मिक मानव दार्शनिक मानव। इन तीनों के क्षेत्र भिन्न हैं किन्तु अपनी चरमावस्था पर पहुँचकर ये सभी विश्वमानवतावाद के लिए समर्पित हैं।

चतुर्थ अध्याय में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद के प्रस्ताता डॉ० भगवतीशरण मिश्र जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन है। उनके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को छूने का प्रयास इसमें किया गया है।

पंचम अध्याय में डॉ० भगवतीशरण मिश्र जी की उन औपन्यासिक कृतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। जिनमें यथार्थवाद अपनी पूर्णता के साथ उपस्थित है। इसके अंतर्गत ऐसे उपन्यासों को लिया गया है जो पौराणिक ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित हैं। अपवाद के रूप में "नदी नहीं मुड़ती" को लिया गया है जिसमें सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण है। इन सभी औपन्यासिक कृतियों में मानव के उत्तरोत्तर विकास को सांस्कृतिक आध्यात्मिक संपूर्णता के साथ देखा जा सकता है।

छठे अध्याय में यथार्थवाद के नए प्रतिमान "रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को डॉ० भगवती शरण मिश्र की कृति "का के लागू पाँव" एवं 'गोविन्द गाथा' के विशेष संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया है। गुरुतेग वहादुर एवं गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन पर आधारित इन उपन्यासों में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है।

यह उपन्यास भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को भी समाहित किये हैं। सातवें अध्याय में इसी सांस्कृतिक परिवेश के अन्तर्गत तीर्थ संस्कृति एवं अखण्ड मानववाद को लिया गया है। तीर्थ संस्कृति के माध्यम से भौगोलिक आलोचना की शुरुआत को इस उपन्यास में देखा जा सकता है तीर्थ संस्कृति मानवी संस्कृति है अतः यह अपने मूल रूप में रहकर भी सम्पूर्ण विश्व को विश्वमानवतावाद का संदेश प्रदान करती है। इस विश्वमानवतावाद के धटक के रूप में यह आध्यात्मवाद, अतिच्छन्दा, अमृतकला व प्रेमकला का वैशिष्ट्य सिद्ध करती हैं।

“ का के लागू पाँव” एवं ‘गोविन्द गाथा’ में भारतीय भाषाओं के संदर्भ में संस्कृत एवं अरबी फारसी के साथ साथ हिन्दुस्तानी भाषा के अध्ययन पर भी बल दिया गया है। सभी भाषाओं का सामूहिक अध्ययन भाषाई मतभेदों को दूर कर एकता स्थापित करने में सहायक है। विश्व की दो प्रमुख भाषाओं संस्कृत एवं अरबी के माध्यम से ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को ग्रहण कर विश्वमानवतावाद को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इन उपन्यासों की सबसे विशिष्ट बात यह है कि पात्रों का चयन काल्पनिकता से परे है। उपन्यास के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है जब एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है। का के लागू पाँव और ‘गोविन्द गाथा’ के साथ-साथ मिश्र जी के अन्य उपन्यास भी आध्यात्मिकता से ओत प्रोत हैं।

आध्यात्मिकता ही विश्वमानवता की संदेश वाहक है अतः ये उपन्यास यथार्थवादी कथा के माध्यम से आध्यात्मिकता के संदर्भ में विश्व को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। अंतिम अध्याय में सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध के निचोड़ को, सार को, उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यथार्थवाद के संदर्भ में इस विषय की मौलिकता एवं नवीनता यही है कि इसमें यथार्थवाद को आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भी देखने का प्रयास किया है। इस प्रयास में यह अपनी सम्पूर्णता में सामने आया है। दूसरी एक विशेष बात यह है कि डॉ०

भगवतीशरण मिश्र जी के जिन दो उपन्यासों (का के लागू पॉव व गोविन्द गाथा) को विशेष सन्दर्भ में इस यथार्थवाद को देखने का प्रयत्न किया है उनमें एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है जो कि कथा साहित्य के इतिहास में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन है। उन उपन्यासों की विशेषता यह भी है कि इनमें तीर्थी के माध्यम से कथा का विकास हुआ है। तीर्थ संस्कृति के द्वारा भौगोलिक आलोचना की शुरुआत भी इस उपन्यास में की गई है।

यथार्थवाद के नए प्रतिमान के रूप में इन्हीं सब नवीन परिवर्तनों को उद्घाटित करना इस शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है तथा यही इसका महत्व है।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे हिन्दी साहित्य के आलोचना जगत के एक उज्ज्वल नक्षत्र डॉ० अजब सिंह जी के निर्देशन में शोध कार्य सम्पन्न करने का अवसर प्राप्त हुआ। श्रद्धेय गुरुवर के स्नेह, प्रेरणा एवं मार्गदर्शन ने मेरे कार्य को अनवरत रूप से चलते रहने में सहयोग दिया। इस कार्य को करते समय अनेक बार ऐसा हुआ जब विपरीत परिस्थितियों में धिरकर मन निराशा के गर्त में डूब जाता था तब गुरु के सानिध्य मात्र से मैं अपने अन्दर एक अनोखी ऊर्जा अनुभव करती और मेरा कार्य पुनः पूरे जोश के साथ आरम्भ हो जाता उनके कमरे से निकलकर मुझे ऐसा लगता कि सारी समस्याएँ अपने आप सुलझ गई। इस ग्रंथ को इस रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय श्रद्धेय गुरुवर डॉ० अजब सिंह जी को ही है उनके प्रति कृतज्ञता अर्पित करने के लिये शब्द नहीं हैं मेरे पास। उनके प्रति जो आदर भाव मेरे हृदय में है उसे लेखनी के माध्यम से व्यक्त करना असम्भव है।

श्रद्धेय गुरुजी के बाद प्रख्यात उपन्यासकार डॉ० भगवती शरण मिश्र जी को कृतज्ञता अर्पित करना मेरा परम कर्तव्य है। आपने समय – समय पर विभिन्न रूपों में मुझे सहयोग दिया। जब भी कभी मैंने अपनी सुविधानुसार उनसे समय माँगा उन्होंने मुझे सदैव समय दिया साथ ही अध्ययन सामग्री भी मेरे बिना मैंने उसे उपलब्ध कराई। मेरे कार्य के विषय में नियमित रूप से पूछते रहना उनके चरित्र की एक और विशेषता है उनकी इसी

विशेषता ने मुझे कार्य करने की प्रेरणा दी । मेरे गुरु के ही समान डॉ० मिश्र भी मेरे लिये पूज्य तथा आदरणीय हैं ।

इस अवसर पर अपने परिवारजनों का सहयोग विस्मरित नहीं किया जा सकता जिसमें सर्वप्रथम मेरी माँ श्रीमती शान्ति राना के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ यद्यपि उन्हें धन्यवाद देना तो औपचारिकता ही है क्योंकि माँ की ममता व त्याग से उत्पन्न होना न तो मैं चाहती हूँ और न ही हो सकती हूँ । उन्होंने तथा मेरी श्वसा श्रीमती सुशीला देवी ने मुझे पारिवारिक दायित्वों से पूर्णतया मुक्त रखकर मेरे कार्य में सहयोग प्रदान किया है । इसके लिये मैं हृदय से दोनों माँओं के प्रति आभार प्रकट करती हूँ ।

मेरे अग्रज श्री अमित राना, अनुज श्री अजित राना तथा देवर श्री कुशेन्द्रपाल सिंह जी के लिये भी मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने समय – समय पर अपनी सेवाएँ मुझे उपलब्ध कराई विशेषकर अनुज के सहयोग से ही यह कार्य समय पर पूरा हो सका है । श्री जितेन्द्र पाल सिंह (एड०) की सेवाएँ भी अविस्मरणीय है । उनको भी धन्यवाद देना मेरा दायित्व है ।

इस ग्रंथ के निर्माण में मेरे जीवन सहचर श्री बसन्त कुमार सिंह जी का योगदान भी महत्वपूर्ण है । जिन्होंने मेरे साथ इस कार्य को पूरा करने में परिश्रम भी किया तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मुझे अपना कार्य अनवरत करते रहने की प्रेरणा दी । यह शोध ग्रन्थ उन्हीं के सहयोग का परिणाम है ।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी परिवारीजन, मित्रों के प्रति आभार प्रकट करना मेरा कर्तव्य है जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से मेरे कार्य में सहयोग दिया है ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पुस्तकालय कर्मियों की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया ।

कीर्ति राणा
30/12/02
कीर्ति राणा

अनुक्रम

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

यथार्थवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप

क— यथार्थ, यथार्थता, यथार्थवाद शब्द का व्यापक फलक के क्रम में
विश्लेषण—अनुशीलन ।

1. भारतीय सन्दर्भ में
2. पाश्चात्य सन्दर्भ में
3. निष्कर्ष

ख— यथार्थवाद के विविध चरण

1. आलोचनात्मक यथार्थवाद
2. समाजवादी यथार्थवाद
3. अति यथार्थवाद
4. जादुई यथार्थवाद
5. रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद

द्वितीय अध्याय

यथार्थवाद के बदलते सन्दर्भ—

क— यथार्थवाद का भौतिक सन्दर्भ

ख— यथार्थवाद का सांस्कृतिक—आध्यात्मिक सन्दर्भ

ग- यथार्थवाद के नये प्रतिमान रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद
आध्यात्मिक –सांस्कृतिक चेतना- अतिमानस- अतिच्छन्दस व
अमृताकला-प्रेमकला

तृतीय अध्याय

विज्ञान एवं मानववाद

क- विज्ञान एवं मानववाद
ख- वैज्ञानिक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में मानव नियति
ग- मानववाद एवं समाजवाद
घ- आधुनिक एवं अद्यतन समकालीन सन्दर्भों में मानववाद के विविध
चरण

1. मानववाद
2. नवमानववाद
3. अतिमानववाद

ड- वैज्ञानिक मानव,
आध्यात्मिक मानव,
दार्शनिक मानव,

च- वैज्ञानिक सन्दर्भों में मानववाद का समग्र विश्लेषण

चतुर्थ अध्याय

डॉ० भगवती शरण मिश्र का जीवन-दर्शन

क- व्यक्तित्व
ख- कृतित्व

पंचम अध्याय

डॉ० भगवती शरण मिश्र के उपन्यास साहित्य का आलोचनात्मक

विश्लेषण—

- | | | |
|-----------------------|-----------------------|---------------------------|
| (1) नदी नहीं मुड़ती | (2) पहला सूरज, | (3) पवनपुत्र, |
| (4) प्रथम पुरुष, | (5) पुरुषोत्तम, | (6) एक और अहल्या |
| (7) पीताम्बरा, | (8) का के लागू पांव, | (9) गोविन्द गाथा, |
| (10) देख कबीरा रोया, | (11) शान्ति दूत | (12) अथ मुख्यमन्त्री कथा |
| (13) पावक | (14) अग्नि पुरुष | |

षष्ठम् अध्याय

यथार्थवाद के नये प्रतिमान “डॉ० भगवती शरण मिश्र” के
उपन्यास ‘का के लागू पांव’ एवं ‘गोविन्द गाथा’ के विशेष सन्दर्भ
में अध्ययन विश्लेषण

- (क) का के लागू पांव
- (ख) गोविन्द गाथा

सप्तम् अध्याय

तीर्थ — संस्कृति एवं अखण्ड मानववाद

- (क) तीर्थ संस्कृति, मानवी संस्कृति के संदर्भ में, ‘का के लागू पांव’ एवं गोविन्द गाथा का आलोचनात्मक अध्ययन।
- (ख) तीर्थ संस्कृति के द्वारा भौगोलिक आलोचना की शुरुआत
- (ग) तीर्थ संस्कृति के द्वारा विश्वमानवतावाद का संदेश

- (घ) विश्वमानवतावाद के घटक के रूप में आध्यात्मवाद, अतिच्छन्दा, अमृताकला व प्रेमकला का वैशिष्ट्य
- (ङ) भारतीय भाषाओं के संदर्भ में संस्कृत एवं अरबी-फारसी के साथ-साथ हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन
- (च) संस्कृत एवं अरबी के अध्ययन से ईश्वर तत्त्व – आध्यात्म तत्त्व के संस्पर्श से विश्वमानवतावाद का संदेश ।
- (छ) पात्रों के चयन में काल्पनिकता का अभाव एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है।
- (इन उपन्यासों का एक पात्र भी काल्पनिक नहीं है— यह कथा – साहित्य के वैश्वक इतिहास में एक अनोखी घटना है) ।
- (ज) आध्यात्मिकता ही विश्वमानवता की संदेश वाहक

अष्टम् अध्याय

निष्कर्ष, उपलब्धियाँ एवं उपसंहार

प्रथम अध्याय

यथार्थवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप:-

यथार्थवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप

(क) यथार्थ, यथार्थता, यथार्थवाद शब्द का व्यापक फलक के क्रम में
विश्लेषण –अनुशीलन

(क) पाश्चात्य संदर्भ में

(ख) भारतीय संदर्भ में

(ग) निष्कर्ष

(ख) यथार्थवाद के विविध चरण

(1) आलोचनात्मक यथार्थवाद

(2) समाजवादी यथार्थवाद

(3) अति यथार्थवाद

(4) जादुई यथार्थवाद

(5) रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद

यथार्थ, यथार्थता, यथार्थवाद शब्द का व्यापक फलक के क्रम में विश्लेषण अनुशील।

यथार्थ शब्द अपने आप में जितना सीधा एवं सरल दृष्टिगोचर होता है उतना ही गूढ़ अर्थ यह अपने आप में समाहित किए हुए है। हिन्दी विश्वकोष के अनुसार यथार्थ का अर्थ है “अर्थ अनतिक्रम शब्द यथार्थ” यथारूप जैसा ठीक होना चाहिए वैसा जैसा का तैसा, ठीक, वाजिब, ¹“ यथार्थ वही है जो जैसा है वैसाही जब वह ग्रहण किया जाता है। यथार्थ के इसी अर्थ को मानक हिन्दी कोष में लिया है— “जो अपने अर्थ आदि के ठीक अनुरूप हो ठीक, बाजिब, उचित, जैसा होना चाहिए ठीक वैसा।”²

कला, दर्शन एवं साहित्य तीनों ही क्षेत्रों में यथार्थ को ग्रहण किया गया क्योंकि कला कोई भी हो वह यथार्थ को ही आधार स्वरूप ग्रहण करती है।

साहित्यकार अपनी कलाकृति में यथार्थ को इस रूप में ग्रहण करता है व प्रस्तुत करता है कि वह वास्तविक प्रतीत हो। “एक साहित्यकार के लिए यथार्थ वह है जो सम्भव हो सकता है।”³

साहित्यकार साहित्य में इस जगत के यथार्थ को ग्रहण करता है। इस संसार में जो भी दृश्यमान है तथा जिसे हम देखते हैं सुनते हैं, अनुभव करते हैं उसको उसी रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। हमारे चारों ओर बाह्य जगत में जो भी कुछ घटित है उसको चित्रित करना ही यथार्थ है।

बाबू गुलाबराय के अनुसार यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, सुख-दुख की धूप छाँव का मिश्रण रहता है। यह सामान्य भाव भूमि के धरातल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए

1— डॉ० नगेन्द्र नाथ बसु द्वारा सम्पादित हिन्दी विश्वकोष पृ० 482 18 वॉ भाग 1986

2— रामचन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित मानक हिन्दी कोष पृ० 435

3— रघुवर सहाय : यथार्थयथास्थिति नहीं (पृ० 14)

परीदेश की वस्तुएँ हैं जो उसकी पहुँच से बाहर है। वह संसार की कलुष कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है।¹ इस रूप में साहित्य में यथार्थ को देखता है तथा अपने अनुभव के आधार पर उसका चित्रांकन करता है। इस रूप में सम्पूर्ण कला यथार्थ है। “यदि हम यथार्थ को एक पद्धति के रूप में लेकर एक दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित करना चाहें, कला के अंतर्गत यथार्थ के चित्रण के रूप में, तो हम पाएंगे कि अमूर्त कला या वैसी ही कुछ चीजों को छोड़कर वस्तुतः सारी कला यथार्थ कला है।”² इसीलिए हम यथार्थ को एक पद्धति के रूप में ग्रहण कर उसका विवेचन करेंगे क्योंकि हमारा मुख्य प्रतिपाद्य यथार्थवाद है।

यथार्थ का चित्रण करते समय मुख्य समस्या है जगत में यथार्थता क्या है? उसको पहचानने की वास्तव में यथार्थता का अर्थ है यथार्थ होने का भाव। समाज की जगत की यथार्थता को परखने का भाव सबका भिन्न-भिन्न है इसलिए यथार्थवाद के सम्बन्ध में धारारें भी भिन्न-भिन्न हैं। समय-समय पर दार्शनिकों एवं साहित्यकारों तथा वैज्ञानिकों की भिन्न-भिन्न मान्यताओं ने यथार्थवाद को प्रभावित किया है।

भारत में यथार्थवाद का आगमन पाश्चात्य साहित्य से हुआ किन्तु भारत में आने पर हमारे साहित्यकारों ने उसको ज्यों का त्यों ही ग्रहण कर लिया अपितु भारतीय दर्शन के प्रभाव से उसके स्वरूप में कुछ अन्तर आया है। इसलिये हम यथार्थवाद को पहले पाश्चात्य संदर्भ में तथा फिर भारतीय संदर्भ में देखने का प्रयास करेंगे।

पाश्चात्य संदर्भ में :-

एक साहित्यकार व रचनाकार इस जगत में उसी से संबन्ध रखता है। उसी उसकी रचना सार्थक भी तभी होती है जब उसमें इस जगत का चित्रण होता है। बाह्य जगत

1- द्वारिका प्रसाद मीतल : हिन्दी साहित्य के वाद पृ० 230
2- शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद (पृ० 230)

से संबद्ध होने के कारण ही आरम्भ से लेकर अद्यतन यथार्थ किसी न किसी रूप में रचनाओं में विद्यमान रहा है । जैसे-जैसे मनुष्य का बौद्धिक विकास होता गया वैसे ही एक रचनात्मक पद्धति के रूप में यथार्थ विकसित हुआ ।

पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताओं के अनुसार 'यथार्थवाद मिथ्या वस्तुपरकता तथा मिथ्या व्यक्ति परकता के बीच का कोई मध्य-मार्ग नहीं है वरन इसके विपरीत यह हमारे समय की भूल-भुलैया में बिना किसी नक्शे के भटकने वाले 'लोगों' के द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत किए गये प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचाने वाला एक तीसरा रास्ता है।'¹ 'लुकाच की इस मान्यता के अनुसार यथार्थ सत्य तक पहुँचाने का रास्ता है। एंगेल्स के अनुसार मेरे विचार से यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरो के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करे।'² यथार्थवादी लेखक वही है जो अपनी कृति में सत्य का चित्रण करता है। स्टीवेंसन के अनुसार समस्त प्रतिनिधि कला जिसे जीवित कहा जा सकता है यथार्थ भी होती है और आदर्श भी । जिस यथार्थवाद के विषय में हम विवाद करते हैं वह केवल बहिरंग वस्तुओं का विषय है । इसमें प्रकृति और सत्य की कोई विशेष उपासना नहीं केवल एक बदला हुआ अस्थायी साहित्यिक ढर्रा है । जिसके कारण पहले अधिक विस्तृत अधिक विविध स्वच्छन्दतावादी कला की ओर से मुँह फेर लिया है।'³

पाश्चात्य यथार्थवाद को सर्वाधिक प्रभावित किया पाश्चात्य दर्शन शास्त्रियों ने जिसमें मार्क्स, एंगेल्स, बाल्जाक, जोला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी पद्धति ही समाजवादी यथार्थवाद के मूल में हैं । यद्यपि पश्चिम में भी यथार्थवादियों

-
1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 11
 2. वही पृ० 10
 3. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 8

को किसी और रूप में ग्रहण किया गमतो साहित्य में किसी और रूप में।

पाश्चात्य विद्वानों की यथार्थवाद संबंधी इन परिभाषाओं का अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि इनकी दृष्टिमें यथार्थ वह है जिसे हम बाह्य जगत में देखते हैं। मनुष्य के मन तथा मस्तिष्क से परे जिसका एक स्वतंत्र अस्तित्व है। समाज के सत्य को उसकी पूरी यथार्थता के साथ साहित्य में चित्रित करने की पद्धति यथार्थवाद है पाश्चात्य यथार्थवाद को समझने के लिए उसके साहित्य में उदय एवं विकास पर एक दृष्टि डालना भी आवश्यक है। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप सामंतवादी व्यवस्था पूरी तरह धराशायी हो गई। एक नए बुर्जुआवर्ग द्वारा पूँजीवादी समाज व्यवस्था का शुभारंभ हुआ किन्तु इस व्यवस्था ने मनुष्य को यांत्रिक बना दिया “हेनरी फील्डिंग” की प्रसिद्ध कृति ‘रॉबिसन क्रूसो’ का नायक एक ऐसा ही नया मनुष्य है जो मनुष्यता के पिछले अनुभवों से सीख लेता हुआ एक निर्जन द्वीप में एक नितांत नई सभ्यता की सृष्टि करता है। इसी संदर्भ में बोरिस सुखोव ने लिखा है कि यह यथार्थवाद की एक अदभुत विजय थी जिसे केवल यथार्थवादी दृष्टि से सम्पन्न रचनाकार ही सामने ला सकते थे।¹ यथार्थवाद को एक सामाजिक व्यवस्था को प्रस्तुत करने वाली पद्धति के रूप में ग्रहण किया गया वस्तुवादी साहित्य में जगत के प्रति आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण के स्थान पर वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण स्वीकार किया गया।²

इस यथार्थवाद को तत्कालीन दार्शनिक एवं वैज्ञानिक मान्यताओं ने बहुत प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नवीन परिवर्तनों ने परंपरा से चले आ रहे विचारों में नवीन चेतना भर दी। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्य पर हुआ। तथा शास्त्रीयतावाद एवं स्वच्छंदतावाद दोनों के मध्य यथार्थवाद अपनी संपूर्ण

-
1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 25
 2. डॉ० कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० 9

शक्ति व गरिमा के साथ उपस्थित हुआ उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित इस यथार्थवाद में स्वच्छंदतावाद का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है । “पुश्किन, बाल्जाक, डिकेंस गोगल स्टेंडल 19वीं शताब्दी के यथार्थवाद के वे पुरस्कर्ता हैं जिनके कृतित्व में स्वच्छंदतावादी तत्वों को सरलतापूर्वक परखा जा सकता है ।”¹

दोब्रोल्यावोव— आलोचना की यथार्थवादी पद्धति लेखक पर अन्य लोगों के विचार थोपने की परिपाटी की अनुमति नहीं देती आलोचक अपने सामने उन पात्रों-चरित्रों को देखता है जिनकी लेखक ने रचना की है उनके क्रियाकलापों को परखता है तथा अपने ऊपर डाले गये उनके प्रभावों की परीक्षा करता है : लेखक को केवल उसी हालत में दोषी ठहराया जा सकता है जबकि ये प्रभाव अपूर्ण, अस्पष्ट और संदिग्ध हों। वह केवल युक्तियों के सहारे कभी भी इस तरह के नतीजे नहीं निकालता।

किसी भी मानसिक कल्पना अन्य वस्तु का चित्रण उसमें नहीं होता है । “बाह्य संसार की वास्तविकता का प्रत्यक्षीकरण निरपेक्ष अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है और इन बाह्य वस्तुओं के बारे में जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है अथवा इनका जो प्रत्यक्षीकरण होता है वह वस्तुओं की भौतिक वास्तविकता पर ही आधारित और उसी के अनुरूप होता है ।”² इस रूप में पश्चिमी यथार्थवाद में भौतिकवाद को प्रश्रय मिला जिसे मार्क्स ने और अधिक पुष्ट किया । मार्क्सवाद ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को स्थापित किया मार्क्सवादी समाजवादी विचार दर्शन ने यथार्थवाद को एक क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान किया । इसके कारण शोषित वर्ग एक नए समाज का स्वप्न लेकर सामने आया जिससे साहित्य तथा कला आंदोलन भी प्रभावित हुए । साहित्य में इनका मुख्य वाहक उपन्यास रहा “यथार्थवाद के प्रथम महत्वपूर्ण उपन्यासकार बाल्जाक और स्टेन्डल हैं — — — स्टेन्डल और बाल्जाक से लेकर एन्थनी

1. शिव कुमार मिश्र :-

यथार्थवाद पृ० 30

2. वही

पृ० 27

पॉवेल और हेनरी विलियम्स तक यूरोपीय यथार्थवाद के अनेक रूप देखने को मिलते हैं ।¹ उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में होने वाले वैज्ञानिक अनुसंधानों का योगदान भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है । "फ्रायड ने बताया यथार्थ के दो प्रकार हैं मानसिक यथार्थ और वास्तविक यथार्थ यदि वास्तविक यथार्थ अति कठोर या अति हताशाजनक है तो मनोकामनाएँ या फंतासियाँ अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं और मनुष्य मनोवैज्ञानिक यथार्थ में इस प्रकार जीने जगता है मानो वह वास्तविक यथार्थ हो ।"² इस प्रकार के वैज्ञानिक अविष्कारों के फलस्वरूप जीवन में जो व्यापक, क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए उन्हें साहित्य में अभिव्यक्त करने की चुनौती यथार्थवाद ने और विशेष रूप से उपन्यास ने स्वीकार की । यूरोप में उपन्यासों के माध्यम से ही जीवन के यथार्थ का चित्रण करने का प्रयास हुआ । जीवन के वे पक्ष जो अब तक साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित थे उनको यथार्थ ने ग्रहण किया । अमेरिकी यथार्थवादी विलियम डीन हावल्स ने यथार्थवाद के सन्दर्भ में कहा है कि – "सच्च यथार्थवादी जब मानव जीवन पर दृष्टिपात करता है तो वह नहीं कह सकता कि अमुक वस्तु देखने योग्य है और अमुक नहीं ।"³

इसलिए मनुष्य के जीवन के सुन्दर व असुन्दर सभी पक्षों का समावेश साहित्य में हुआ । बदलती विचारधारा ने यथार्थवाद के स्वरूप को भी बदला । साहित्य के पारिभाषिक शब्दों के अपने कोष में शिप्ले ने यथार्थवादी विचार की तीन भूमियों पर बल दिया –

- (1) चित्रण को अधिक समर्थ, पूर्ण तथा प्रभावशाली बनाने हेतु वस्तुस्थिति के एक-एक ब्यौरे को सही रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास ।
- (2) एक प्रेरक सिद्धांत अथवा संपूर्ण साहित्यिक निर्माण को अनुशासित करने वाले एकमात्र सौंदर्य शास्त्रीय प्रतिमान अथवा लक्ष्य के रूप में उसकी स्वीकृति ।

1. सत्यकाम : आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं प्रेमचन्द पृ० 41-42

2. वही पृ० 33

3. डॉ अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 7

- (3) एक आंदोलन जो दूसरी स्थिति से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित हुआ।¹

यथार्थवाद के बदलते रूपों में आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, अतियथार्थवाद आदि रूप देखने को मिलते हैं। वास्तव में यथार्थ को देखने का सबका अपना अपना दृष्टिकोण होता है। यथार्थ प्रस्तुत करते समय पुरस्कर्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विचारों एवं अनुभवों को उसमें सम्मिलित न करे जिसको वह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा है। ऐसा करने पर यथार्थ के स्वरूप के विकृत होने की सम्भावना बढ़ जाती है। सच्चे यथार्थ के लिए आवश्यक है कि लेखक पात्रों व परिस्थितियों को पूरी सच्चाई के साथ चित्रित करे। एंगेल्स के अनुसार “मेरे विचार से यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें।”²

जीवन की यथार्थता से संबद्ध होने के कारण ही यथार्थवाद कम समय में अधिक लोकप्रिय हो गया। “यथार्थवाद की बढ़ती लोकप्रियता स्वच्छंदतावाद के काल्पनिक संसार के विरुद्ध एक साधारण प्रतिक्रिया से अधिक थी। इसकी लोकप्रियता दो आधारभूत कारणों से अधिक थी आधुनिक विज्ञान के विकास इसके विस्तृत ब्यौरे पर प्रभाव के कारण दूसरे पाठकों एवं लेखकों की सामाजिक समस्याओं के लिए यथार्थवादी समझ की बढ़ती हुई इच्छा इन दोनों ही कारणों ने भारत में तथा विदेशों में यथार्थवाद के विकास में योग दिया लेखकों ने सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए समाज के यथार्थ चित्रण पर जोर दिया।”³

पश्चिमी यथार्थवाद का उपरोक्त विवेचन करने के पश्चात एक तथ्य स्पष्ट है कि

-
1. शिप्ले : डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर पृ० 325
 2. डॉ शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 10
 3. द वर्ल्ड बुक एन्साइक्लोपीडिया (Vol.16) पृ० 172

पश्चिम में यथार्थ को इस बाह्य जगत के संदर्भ में भिन्न - 2 हैं । भौतिक संदर्भों में ग्रहण किया गया है ।

“यथार्थवाद बाह्य जगत की भौतिक सत्ता को स्वीकार करने वाला दर्शन है और यथार्थवाद की कला चेतना भी इसी दार्शनिक विचार की देन है । यथार्थवादी जीवन दृष्टि तथा कला दृष्टि का विकास विज्ञान द्वारा अनुमूलित और पुष्ट है चूँकि विज्ञान स्वतः अपनी अनन्त संभावनाओं के साथ आज विकासशील है ।” पश्चिमी यथार्थवाद वस्तुजगत से प्रभावित है इनके अनुसार यह जगत एवं इसके विभिन्न पदार्थ मनुष्य की सत्ता से पृथक् उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है ।

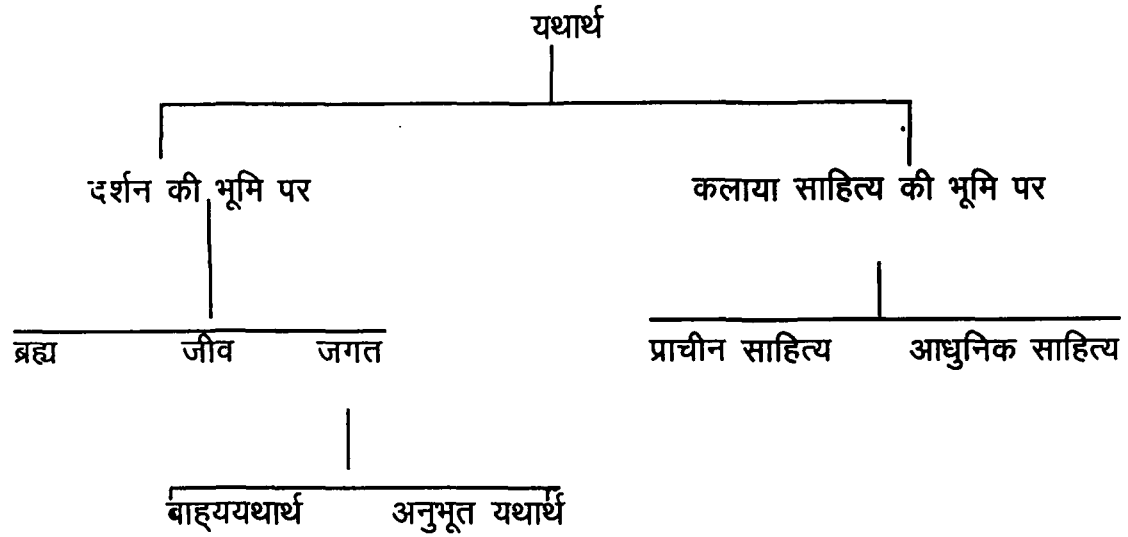
भारतीय संदर्भ में—

हिन्दी साहित्य में ही नहीं, समूचे भारतीय साहित्य तथा कला-जगत में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश के लिए बासवीं शताब्दी में उभरने वाली नई राष्ट्रीय चेतना तथा मार्क्सवादी, समाजवादी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है किन्तु यदि यथार्थ शब्द पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग सत्य के अर्थ में हुआ है तथा सत्य वही है जो कभी नष्ट नहीं होता है । इस प्रकार की व्याख्या करते हुए वेद, पुराण एवं उपनिषदों में ईश्वर को एकमात्र सत्य माना गया है और उसी के संदर्भ में यथार्थ शब्द का प्रयोग हुआ है । छान्दोग्यउपनिषद के अनुसार ‘सारा जगत सत का संस्थान मात्र है अतः उत्पत्ति से पूर्व सत ही था ।’²

विभिन्न दर्शन न्याय, वैशेषिक, साँख्य इत्यादि अपने-अपने मतों के अनुसार जीव, जगत और ईश्वर के संबंध में इनकी यथार्थता के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं वे मानते हैं “संसार की परिवर्तनशील अवस्थाएँ नश्वर हैं तो वह यह भी स्वीकार करता है कि वे

-
1. डॉ शिव कुमार मिश्र : दर्शन साहित्य और समाज पृ० 45
 2. छान्दोग्य उपनिषद पृ० 306

नितान्त यथार्थ नहीं है यथार्थ अपरिवर्तित है जबकि एकीकृत पदार्थों के रूप में परिवर्तित होता है ।¹ भारतीय सदर्भ में यथार्थ का विश्लेषण करने पर वह हमें दो भूमियों पर उपलब्ध होता है ।



दर्शन शास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न मान्यताओं के अनुसार कभी केवल ब्रह्म को यथार्थ माना, कभी ब्रह्म और जीव दोनों को तो कभी ब्रह्म, और जीव दोनों को तो कभी ब्रह्म, जीव एवं जगत को, किन्तु इनके यथार्थ का अर्थ है जो कभी नष्ट नहीं होता तथा जो एकमात्र सत्य है इसी रूप में दर्शन शास्त्रियों ने यथार्थ को ग्रहण किया । कला और साहित्य चूँकि मनुष्य के जीवन से जुड़े हैं अतः उसमें इस संसार में जो भी कुछ दृश्यमान है तथा जैसा अनुभव किया जाता है उसका ज्यों का त्यों चित्रण यथार्थ है । यहाँ हमारा उद्देश्य एवं विषय साहित्यिक यथार्थ है । अतः दार्शनिक यथार्थ को यही विराम देकर हम साहित्य में यथार्थ की स्थिति पर ही चर्चा करेंगे । भाषा शब्द कोष के अनुसार यथार्थ का अर्थ है— “ठीक, वाजिब जैसे (1) आपका कहना यथार्थ है (2) जैसा ठीक होना चाहिए वैसा । ज्यों का त्यों ।”²

1. डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन पृ० 101
 2. संपादक डॉ० रमाशंकर रसाल : भाषा शब्द कोष पृ० 1540

हिन्दी विश्व कोष के अनुसार “अर्थ अनतिक्रमय इति यथार्थ” यथारूप, जैसा ठीक होना चाहिए वैसा, जैसे का तैसा”

उपरोक्त दोनों परिभाषाओं में जैसा है के साथ-2 जैसा ठीक होना चाहिए वह भी यथार्थ है। इस रूप में यह आदर्श के अधिक निकट प्रतीत होता है।

“अपने व्यापक रूप में यथार्थ का अर्थ है समस्त जगत सम्पूर्ण जगत यथार्थ है। उसकी प्रत्येक वस्तु उसका प्रत्येक कण यथार्थ है। उसका प्रत्येक स्पन्दन यथार्थ है संक्षेप में यथार्थ का अर्थ है— अस्तित्व या सत्ता जो कुछ भी अस्तित्व में है वह यथार्थ है।”² इस रूप में जो कुछ भी हमारे चारों ओर विद्यमान है वह यथार्थ है। जब इसी यथार्थ का चित्रण एक पद्धति के रूप में साहित्य में किया जाने लगा तो वही यथार्थवाद हो गया।

भारतीय साहित्य में यूँ तो प्रारम्भिक अवस्था से ही किसी न किसी रूप में यथार्थ को प्रस्तुत किया गया। प्राचीन महाकाव्य रामायण और महाभारत में भी युगीन यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता है। यथार्थ ही वह आधारभूत विषय रहा है जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य व कला में हुई है। साहित्यकार अथवा कलाकार अपने चारों ओर के वातावरण से विषय ग्रहण कर अभिव्यक्त करता है किन्तु जिस रूप में यथार्थ को अब ग्रहण किया जाता है उस रूप में यह प्राचीन समय में नहीं था। बाह्य जगत से तथ्यों को विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किया गया और इस प्रयास में कई प्रकार की परिभाषाएँ विकसित हुई। यथार्थवाद के स्वरूप को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए इन परिभाषाओं पर एक दृष्टि डालना बहुत आवश्यक है। भारतीय हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद अपने प्रारम्भिक स्वरूप में समाज की कमियों के चित्रण के रूप में ग्रहण किया जाता था। हिन्दी के प्रख्यात उपन्यासकार प्रेमचन्द जिनकी कृतियों में सामाजिक यथार्थ का सच्चा स्वरूप दिखाई देता

1. संपादक श्री नगेन्द्र नाथ वसु : हिन्दी विश्व कोष पृ0 482 18वाँ भाग
2. संपादक नामवर सिंह : आलोचना पृ0 55 अक्टूबर दिसम्बर 76

है ने यथार्थवाद के बारे में लिखा है कि “यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है हमको अपने चारों तरफ बुराई नजर आने लगी है।”¹ इसीलिए प्रेमचन्द ने आदर्शवादी यथार्थवाद को अपना विषय बनाया। उनका यथार्थ आदर्शोन्मुखी था। प्रेमचन्द की दृष्टि में समाज में जो भी घृणित व निम्नतम है वही यथार्थ है। अच्छा कर्म करने पर बुरा फल मिलना यही समाज का सत्य है। ऐसी ही परिभाषा जयशंकर प्रसाद देते हुए लिखते हैं “यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात उसमें स्वाभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है लघुता से मेरा अभिप्राय साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःखों और अभावों का वास्तविक उल्लेख।”²

जयशंकर प्रसाद भी दुःखों और कष्टों के वास्तविक उल्लेख को ही यथार्थवाद के अन्तर्गत ग्रहण करते हैं। जीवन एवं जगत के दुःखों एवं अभावों का ज्यों का त्यों उल्लेख ही यथार्थवाद है।

समय के साथ-साथ यथार्थवाद का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ जिसके परिणाम स्वरूप यथार्थ सम्बन्धी धारणा भी बदली। हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार “यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन पद्धति है जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए।”³

यथार्थवाद को एक दृष्टिकोण न मानकर उसे एक पद्धति के रूप में यहाँ स्वीकार किया गया है। सामाजिक चित्रण की एक साहित्यिक पद्धति ही यथार्थवाद है। डॉ०

-
- | | |
|----------------------------------|------------------------------------|
| 1. प्रेमचन्द : | कुछ विचार पृ० 49 संस्करण 1982 |
| 2. जयशंकर प्रसाद : | काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ० 17 |
| 3. सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : | हिन्दी साहित्य कोष पृ० 510 |

नगेन्द्र के अनुसार – “साहित्य में जीवन और जगत का यथातथ्य अंकन होना चाहिए ।
 – – – – यह वाद लेखक से नितांत निर्वैयक्तिक एवं निस्संग दृष्टि तथा तटस्थ निरूपण की माँग करता है अभिजात्यवाद, आदर्शवाद और स्वच्छंदतावाद से इसका सीधा संघर्ष है ।”¹ यह वाद लेखक से हर प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त रहकर निष्पक्ष रहकर जो कुछ वह अपने चारों ओर देखता है उसका चित्रण करने की अपेक्षा करता है । यथार्थ के अत्यधिक स्पष्ट चित्रण का विरोध करते हुए नगेन्द्र आगे लिखते हैं । “यथार्थवाद विश्व ही एक महत्वपूर्ण और स्वस्थ साहित्य – दर्शन है किन्तु इसकी सतर्कता एक सीमा तक ही सीमित है इसे बहुत दूर तक घसीटे जाने में दो प्रकार की हानियाँ हो सकती हैं एक तो यथा तथ्य की रक्षा के लिए घटना एवं वस्तु – वर्णन के अनावश्यक विस्तार से उत्पन्न होने वाली अब तथा दूसरी भाषा और वर्ण्य दोनों स्तरों पर अश्लीलता के सीमातों तक पहुँच जाने की प्रवृत्ति ।”² इस परिभाषा में डॉ० नगेन्द्र यथार्थवाद और प्रकृतवाद के मध्य एक बारीक अन्तर करते जान पड़ते हैं । इनके अनुसार यथार्थ को अति से बचना चाहिए ।

बाबू गुलाबराय यथार्थवाद की अपनी परिभाषा में कहते हैं “यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है उसमें पाप-पुण्य, सुख-दुख की धूप छाँह का मिश्रण रहता है यह सामान्य भावभूमि के समतल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परीदेश की वस्तुएँ हैं जो उसकी पहुँच से बाहर हैं वह संसार की कलुष कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है ।”³ यथार्थ चित्रण करते समय लेखक किसी वस्तु को छिपाता नहीं है समाज में व्याप्त अच्छाई-बुराई दोनों का समान भाव से चित्रण करना ही यथार्थवाद का लक्ष्य होता है । यथार्थवाद को एक स्पष्ट चित्र प्रदान करने वाले

-
1. सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य कोष पृ० 510
 2. सम्पादक डॉ० नगेन्द्र : भारतीय साहित्य कोष पृ० 1026
 3. द्वारिका प्रसाद मीतल : हिन्दी साहित्य के बाद पृ० 234

शिवकुमार मिश्र का कथन है कि “सच्चे तथा महान यथार्थवाद का लक्ष्य समाज, जीवन तथा मनुष्य के जीवन के यत्र-तत्र बिखरे स्फुट अंशों को ही परखने और मूर्त करने का ही नहीं होता वरन् उनकी दृष्टि इनके सम्पूर्ण रूप को उभारने की ओर रहती है। वह इन्हें इनकी संपूर्णता में ही देखने पर बल देता है।”¹ वास्तव में यही वास्तविकता यथार्थवाद है। सार्थक यथार्थवाद वही है जो जीवन को उसकी संपूर्णता में ग्रहण करता है। जीवन के किसी एक पक्ष को लेना अथवा परंपरागत रूप को ग्रहण करना नहीं है। समय के परिवर्तन के साथ समाज में परिवर्तन होता रहता है। अतः हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि “कला के क्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।”² किसी भी वस्तु के एक पक्ष को लेकर उसका चित्रण करना उसके वास्तविक स्वरूप को हमारे सामने नहीं रखता है। यदि हम जीवन का सत्य कहीं पाना चाहते हैं तो वह यथार्थवादी कृति में ही प्राप्त हो सकता है।

यथार्थवाद को केवल जीवन के घृणित एवं विरूप के चित्रण तक ही सीमित मानना संकुचित मानसिकता का द्योतक है “महान साहित्य और कल्प सदा निर्विकल्प रूप से जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिम्बित करती है। अतः उसकी एकमात्र कसौटी भी इसका यथार्थवाद है।”³ यथार्थवाद के पुरस्कर्ता का लक्ष्य सत्य को उजागर करना है किन्तु इस सत्य के चित्रण के द्वारा वह पाठक को कुरूप तथा घिनौनी वास्तविकता से प्रेम करना नहीं सिखाता अपितु उस विकृत व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक व रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन विकृतियों को समाप्त करने के लिए समाज का आह्वान करता है। “साहित्य में यथार्थवाद जीवन का वह वास्तविक चित्रण है जो समाज का जीवन्त

-
1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 12
 2. हजारी प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क पृ० 95
 3. सम्पादक शिवदान सिंह चौहान : आलोचना पृ० 3

चित्र उपस्थित कर देता है प्रत्येक युग में वास्तविकता को ढूँढना ही साहित्य में सच्चा यथार्थवाद है ।¹ यथार्थवादी कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह रचनात्मक दृष्टि कोण रखते हुए यथार्थवाद को प्रस्तुत करे “सच्चा यथार्थवादी रचनाकार युगजीवन का मात्र दर्शक नहीं होता और न ही वह उससे तटस्थ रहता है । एक दृष्टि संपन्न सजग तथा संप्राण व्यक्ति होने के नाते यथार्थ जीवन के साथ उसका सक्रिय इनावाल्वमेंट होता है और जीवन से जुड़े रहने वाली यह स्थिति ही उसे यथार्थ जीवन का अंकन करने के लिए कुरेदती है । वह अपने विश्वासों, अपनी मान्यताओं और अपने विचारों को लेकर कृति में उतारता है देखने की बात यह होती है कि कही उसकी यह भूमिका सत्य को विरूप या विकृत तो नहीं कर रही, और इसलिए “यथार्थवाद” के मनीषियों ने रचनाकार की दृष्टि के पात्रों तथा परिस्थितियों के भीतर से व्यंजित होने की बात कही है । आरोपित विचारों तथा दृष्टिकोणों का उन्होंने विरोध किया है और उसे ‘यथार्थवाद’ को क्षति पहुँचाने वाला उसे निष्प्रभ बना देने वाला कहा है ।² यथार्थवाद से सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों के ये विचार यथार्थवाद का एक स्पष्ट रूप हमारे सामने रखते हैं । यथार्थवाद केवल घृणित एवं विरूप का चित्रण नहीं है अपितु सामाजिक बुराइयों के चित्रण के द्वारा यह पाठक को उन बुराइयों से घृणा करना तो सिखाता ही है साथ ही उन्हें दूर करने की प्रेरणा भी देता है ।

यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि इन परिभाषाओं में हमें यथार्थवाद का वह स्वरूप लक्षित होता है जो पश्चिमी प्रभाव के परिणामस्वरूप हमने ग्रहण किया है । भारतीय साहित्य पर यदि दृष्टिपात करें तो हमें यथार्थवाद के इस भैतिकवादी स्वरूप के अतिरिक्त आध्यात्मिकता का पक्ष भी उसमें दृष्टिगोचर होता है यह सही है भारतीय साहित्य

1. त्रिभुवन सिंह, : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० 70

3. डॉ शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 16

में यथार्थवाद का आगमन 19वीं शताब्दी में हुआ जो परिस्थितियाँ पश्चिम में यथार्थवाद के उदय का कारण थीं। वैसी ही परिस्थितियाँ भारत में 19वीं सदी में बन गई थी। भारतीय साहित्य ऐसे 19. मार्क्सवाद से बहुत प्रभावित हुआ हिन्दी साहित्य में ही नहीं समूचे भारतीय साहित्य तथा कला-जगत में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश के लिए बीसवीं शताब्दी में उभरने वाली नई राष्ट्रीय चेतना तथा मार्क्सवादी – समाजवादी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है।¹ उस समय के साहित्य में हमें यथार्थवाद का वही स्वरूप लक्षित होता है जो पश्चिमी साहित्य में हैं किन्तु भारतीय साहित्य में इस समय से पूर्व तथा बाद में भी जो यथार्थवाद स्वभावतः दीख पड़ता है वह भारतीय संस्कृति को अपने में समाहित किए हैं। इन कवियों एवं लेखकों ने एक लक्ष्य के रूप में यथार्थवाद का चित्रण नहीं किया है अपितु वह स्वाभाविक रूप से इनकी कृतियों में लक्षित होता है। भारतीय साहित्य में काव्य के माध्यम से यथार्थवाद विकसित हुआ है। कबीर से लेकर आधुनिक काल के कवियों तक के काव्य में हमें यथार्थवाद देखने को मिलता है। भारतीय कवियों एवं लेखकों ने मनुष्य के जीवन के सत्य को ही यथार्थ माना और उस सत्य के रूप में उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति को ग्रहण किया।

साहित्य दर्शन से प्रभावित होता है। अतः भारतीय दर्शन की आध्यात्मिकता को भारतीय साहित्य ने स्वीकार किया। इस रूप में समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद के साथ – साथ आध्यात्मिक यथार्थवाद भी लक्षित होता है। भारतीय संदर्भ में यथार्थ का शब्द नया नहीं है प्राचीन भारतीय साहित्य के अंतर्गत इस शब्द का प्रयोग सत्य के अर्थ में हुआ है तथा सत्य वही है जो कभी नष्ट नहीं होता है। इस प्रकार की व्याख्या करते हुए वेद पुराण एवं उपनिषदों में ईश्वर को एकमात्र सत्य माना गया है और उसी के संदर्भ में यथार्थ शब्द का प्रयोग हुआ है विख्यात दार्शनिक डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 161

हैं कि "ईश्वर परम सत् की यथार्थ तात्त्विक प्रस्तुति तो नहीं किन्तु वह उसकी श्रेष्ठतम प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तो है ही । " प्रजा" के माध्यम से उस सत् को जब हम ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं तो वह हमारी कल्पना में ईश्वर का रूप ले लेता है।" इस रूप में साहित्यकारों ने यथार्थ के आध्यात्मिक पक्ष को भारतीय दर्शन से ग्रहण किया । सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर यथार्थ तीन स्वरूपों में देखने को मिलता है—

आध्यात्मिक यथार्थ— ईश्वर के संदर्भ में

सामाजिक यथार्थ— जगत एवं मानव के संदर्भ में

मनोवैज्ञानिक यथार्थ— विचार एवं भावनाओं के संदर्भ में

एक वाद के रूप में यथार्थवाद को ग्रहण करते हुए भी भारतीय साहित्यकारों के साहित्य में उनके भारतीय प्रभाव को देखा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद के स्वरूप को समझने के लिए उसके प्रारम्भ पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक विचारधारा एवं चिंतन के परिणामस्वरूप भारत के सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में नवजागरण का दौर आरम्भ हुआ । जैसी परिस्थितियाँ यूरोप में यथार्थवादी विचारधारा के लिए आधारभूमि भी कुछ वैसी ही परिस्थितियाँ इस समय भारत में उत्पन्न हुई और लोगों का ध्यान देश व समाज के यथार्थ की ओर उन्मुख हुआ।

इस में हुई समाजवादी क्रांति ने भारतीयों को मार्क्सवाद – समाजवाद के प्रति आकर्षित किया।

"हिन्दी साहित्य में ही नहीं समूचे भारतीय साहित्य तथा कला—जगत में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश के लिए बीसवीं शताब्दी में उभरने वाली नई राष्ट्रीय चेतना तथा मार्क्सवादी – समाजवादी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है।"² भारतीय समाज की दशा उस समय ऐसी थी कि उनको भी एक सामाजिक क्रांति की आवश्यकता थी । अतः तत्कालीन

1. डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् :

समकालीन भारतीय दर्शन पृ० 198

2. डॉ० शिव कुमार मिश्र :

यथार्थवाद पृ० 161

साहित्यकारों जैसे भारतेन्दु एवं उनके सहयोगियों के साहित्य में हमें समाजवादी यथार्थवाद दृष्टिगोचर होता है। जयशंकर प्रसाद कहते हैं श्री हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय वेदना के साथ ही जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण आरम्भ किया था। 'प्रेम योगिनी' हिन्दी में इस ढंग का पहला प्रयास है और 'देखी तुमरी कासी' वाली कविता को भी मैं इसी श्रेणी का समझता हूँ।¹ भारतेन्दु युग में बालकृष्ण भट्ट प्रतापनारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' मुख्य कवि हैं। जिन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाजव्यवस्था विदेशी शासकों के देशी चाटुकारों, अंग्रेजों की भारत विरोधी नीतियों के यथार्थ का खुलकर चित्रण किया है। व्यंग्य को यथार्थ प्रकट करने का माध्यम बनाकर बड़ी कुशलता से विकृतियों का पर्दाफाश किया है। यद्यपि इस काल के कवि पश्चिमी यथार्थवाद से परिचित नहीं थे किन्तु युगीन परिस्थितियों ने इनकी कृतियों में स्वभावतः ही यथार्थ का समावेश कर दिया था। भारतीय यथार्थवाद की यह विशेषता रही कि यह काव्य के माध्यम से विकसित हुआ। छायावाद के कवि निराला की कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नए पत्ते आदि कृतियों में यथार्थवादी चेतना का प्रस्फुटन देखा जा सकता है। जयशंकर प्रसाद की महान कृति 'कामायनी' में भी भारतीय यथार्थवाद का उज्ज्वल रूप दिखाई देता है। सुमित्रानन्दन पन्त का 'लोकायतन' भी इसी प्रकार का यथार्थवादी काव्य है।

सन् 1936 में भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और इसके साथ ही हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद पूरी शक्ति से प्रकट हुआ। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार— "हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद की मौलिक शक्ति सम्भावना यथार्थवाद को ही लेकर विकसित हुई थी। प्रगतिवाद के उपरान्त प्रयोगवाद को भी यथार्थवाद का दाय मिला एक प्रकार से प्रयोगवाद में यथार्थवाद की प्रवृत्ति कुछ और गहरी हुई।"² यह यथार्थवाद जो भारतीय

1. जयशंकर प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ०

2. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य कोष पृ० 510

साहित्य में विकसित हुआ काव्य के माध्यम से उपन्यास एवं कहानियों तक व्याप्त हो गया । वास्तव में यथार्थवाद के प्रस्तुतीकरण के द्वारा लेखक पाठक से, उन प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति क्रांति की मांग करता हैं ।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में जब हम यथार्थवाद का अध्ययन करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि केवल पश्चिम से प्रभावित यथार्थवादी कृतियों के यथार्थ को ही यथार्थवाद न मानकर उसके मूल जो कि भारतेन्दु युग से लेकर छायावाद, स्वच्छन्दतावाद तक मिलता है उसे पहचाने । भारतीय यथार्थवाद के सही स्वरूप की पहचान हम तभी कर सकते हैं । भारतीय यथार्थवादी चेतना आध्यात्मिक को मानववादी समाजवादी चेतना के साथ मिलाकर देखने का प्रयत्न करती है ।

“आज वैचारिक क्रान्ति का या परिवर्तन का वह क्षण आ गया है, जब हम सम्पूर्ण विश्व को समाजवादी चेतना को आध्यात्मिकता से संदर्भित करके विश्वमानवता के कल्याण के लिए मानक रूप में उपस्थित कर सकते हैं क्योंकि आध्यात्मिकता के संस्पर्श से जिसमें मानवीय कल्याण की भावना निहित है, समाजवादी चिंतन आज भी विश्वमानवता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है । इस क्रम अनुक्रम में भारतीय आर्यग्रन्थों एवं वाणियों का संवल लेना होगा ।”

वास्तव में यही यथार्थवाद का वास्तविक स्वरूप है जो भारतीय यथार्थवाद में देखने को मिलता हैं ।

हिन्दी के समाजशास्त्रीय कवि आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध ने चेतना के धरातल पर आध्यात्मिकता को काव्य, कला, एवं साहित्य के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया हैं उन्होंने अपनी पुस्तक ‘एक साहित्यिक की डायरी’ में मनोवैज्ञानिक यथार्थ,

समाजवादी यथार्थ के साथ-साथ इसके अतिरिक्त भी एक अन्य यथार्थ की उपस्थिति पर बल देते हैं। निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक यथार्थ के बाद मानव जीवन का अन्य यथार्थ सांस्कृतिक आध्यात्मिक यथार्थ भी होता है।¹

यथार्थ समय एवं समाज सापेक्ष होता है आज युग की आवश्यकता ऐसे ही यथार्थ की है 'रूपाभ' के सम्पादकीय में पंत जी लिखते हैं 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना मूल हिल गये हैं। अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर वास्तविकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की काव्यीक स्पष्टता पर नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'² रूपाभ (जुलाई 1938 1 अंक 1) यह धरती यथार्थ की धरती है, यह धरती भारतीय सभ्यता व संस्कृति की धरती हैं लेकिन केवल क्षुद्र एवं संकीर्ण यथार्थ चित्रण का वे विरोध करते हैं उनका मानना है कि यथार्थ का लक्ष्य जो कि पूर्ण मानव का प्रतिष्ठा है को प्राप्त करने के लिए जीवन के सम्पूर्ण यथार्थ को ग्रहण करना चाहिए न कि उसके एकांगी पक्ष को। एकांगी रहकर हम यथार्थ के पूर्ण स्वरूप को न तो समझ सकेंगे और न ही उसके लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

हिंदी में साहित्य में प्रेमचन्द के आगमन से यथार्थवाद काव्य से कहानी में आ गया। उपन्यासों भी उसका प्रभाव देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के समकालीन तथा उत्तरकालीन कथा साहित्यकारों ने अपने कथा साहित्य में यथार्थवाद का खूब प्रयोग किया जिससे भारत में भी यथार्थवाद के कई रूप उभर कर सामने आए जिसमें समाजवादी यथार्थवादी, आलोचनात्मक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, अति यथार्थवाद, प्रकृतवाद

1. डॉ० अजब सिंह : 'यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन' पृ० 63

2. परशुराम शुक्ल 'विरही' : आधुनिक हिंदी काव्य में यथार्थवाद पृ० 251

आदि अनेक प्रकार आते हैं किन्तु जैसे – जैसे यथार्थवाद का विकास होता गया यह अनुभव किया जाने लगा कि इनमें से कोई भी यथार्थवाद के वास्तविक लक्ष्य जो कि सत्य का प्रकटीकरण है को व्यक्त करने में असमर्थ हैं। क्योंकि जो कुछ सत्य मानकर प्रकट किया जाता रहा है वह वास्तविक एवं पूर्ण जीवन सत्य नहीं हैं। “यथार्थवादी रचनाकार एक रचनाकार तभी है, जब जब वह व्यापक सामाजिक जीवन से प्राप्त अनुभवों, स्थितियों तथा पात्रों के आधार पर, सत्य के प्रतिसत्य के सारभूत अंश के प्रति ईमानदार रहते हए, एक नई सृष्टि, एक नई रचना को जन्म दे। भारतीय वागन्मय में रचनाकार को प्रजापति का दर्जा दिया गया है, इसीलिए कि वह स्वयं अपनी कृति के रूप में एक नई सृष्टि करता है।” वह मात्र दृष्टा बनकर नहीं अपितु अपनी चैतन्य शक्ति का वाहक बनकर जीवन सत्य को प्रकट करे।

“इसीलिए भारतीय कला के परिप्रेक्ष्य में यथार्थ जीवन को संपूर्णता में ही देखा जाता है। जीवन की पूर्णता में आध्यात्मिकता भी आती है। इसलिए भारतीय संदर्भ में यथार्थ की आध्यात्मिक भूमिका की अपेक्षा होती है। इसके बिना भारतीय यथार्थ का स्वरूप खड़ा ही नहीं हो सकता। इसीलिए यथार्थवाद में आध्यात्मिकता की अपेक्षा है।”² जीवन का वास्तविक स्वरूप यही है अतः भारतीय यथार्थवाद के अध्यात्म पक्ष को भौतिक पक्ष में समाहित करके ही यथार्थवाद के पूर्ण एवं सार्थक स्वरूप को पाया जा सकता है।

निष्कर्ष—

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के यथार्थ सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रारम्भ से भिन्न ही रहे हैं। भारतीय दार्शनिक यथार्थ को जीवन के एकमात्र सत्य की प्राप्ति के रूप में देखते हैं वैदिक काल की प्रार्थनाएँ “जगत की यथार्थता और जीवन के लौकिक मूल्यों को स्वीकार

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 208
2. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 83

करती है. अधिकांश वैदिक यज्ञों का उद्देश्य भी लौकिक हितों की प्राप्ति है वे प्रायः कृषि, धन, सन्तान, स्वास्थ्य आदि की समृद्धि के लिए किए जाते हैं। कुछ यज्ञों का उद्देश्य स्वर्ग आदि परलोक की प्राप्ति भी है किन्तु इन परलोकों की कल्पना उस लोक के आधार पर ही की गई है।¹ वेदों ने जगत को भी यथार्थ माना क्योंकि जगत को सत्य मानकर ही इसके निर्माण करने वाले तक पहुँचा जा सकता है। संसार के इसी सत्य की खोज करते करते उपनिषदों ने ब्रह्म को सृष्टि के रचनाकार को ही सत्य माना।

समस्त भारतीय दर्शन में जीव जगत एवं ब्रह्म के विषय में भिन्न-भिन्न मान्यताएँ मिलती हैं किन्तु यथार्थ शब्द का प्रयोग इन तीनों के ही संदर्भ में किया है तथा जो भी नित्य है वही यथार्थ ऐसी मान्यता दार्शनिकों की रही है।

डॉ० राधाकृष्णन कहते हैं— “यह संसार कोई मूल या भ्रम नहीं है जिसे आत्मा द्वारा दूर किया जाना हो अपितु यह तो आत्मिक विकास का एक दृश्य है जिसके द्वारा भौतिक तत्त्व में से दिव्य चेतना आविर्भूत हो सकती है।

भारतीय साहित्य में आधुनिक काव्य जिस यथार्थ का प्रयोग मिलता है वह पूर्णतया पाश्चात्य संस्कृति एवं साहित्य से प्रभावित है।

पाश्चात्य दर्शन में यथार्थ वही है जिसे हम देखते हैं सुनते हैं छूते हैं अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव करते हैं। हेगेल ने लिखा है— “अस्तित्व आने आप में यथार्थ नहीं होता यथार्थ केवल वही है जो बोधगम्य है।”²

मार्क्स का कहना है— “केवल बोधगम्य वास्तविक जगत ही यथार्थ है जो साहित्य जानबूझकर बोधगम्यता को नकारता है उसमें यथार्थ की निर्णायक धार नहीं होती।”³ पश्चिमी विचारधारा इस दृश्यमान जगत को ही यथार्थ मानती है तथा इस बाह्य जगत से

1. डॉ० रामानन्द तिवारी का डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित पत्रिका ‘समालोचक’ पृ० 25 फरवरी 1959 में प्रकाशित लेख
2. “अनुवादक—रमेश उपाध्याय, कला की जरूरत पृ० 215
3. अस्ट फिशर : नेसेसिटी ऑफ आर्ट अनुवादक रमेश उपाध्याय (कला की जरूरत) पृ० 215

तथ्यों को ग्रहण कर साहित्य में उनका चित्रण करना ही यथार्थवाद है पश्चिम से प्रभावित होने के बाद भी अपनी एक विशेष पहचान लिए हुए हैं। पश्चिमी यथार्थवाद जहाँ अपने अंदर भौतिकवाद को समेटे हुए है वही भारतीय यथार्थवाद के अंदर अध्यात्म के तत्व भी समाहित है।

“भारतीय यथार्थवाद धर्म से भिन्न नहीं आध्यात्मिकता का विस्तार है जीवन का परमात्मा से मिलन ही वास्तविक यथार्थ तत्व है यही भारतीय यथार्थवाद का मूल स्वर है” पश्चिमी विचारधारा जहाँ शारीरिक दुःखों को दूर करने के लिए उद्योग करने पर बल देती है वही भारतीय विचारधारा ईश्वरवादी रही है ।

वर्तमान समय में साहित्यकारों ने दोनों विचारधाराओं के सामंजस्य से एक नवीन आयाम की खोज की है जिसे रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद के नाम से जाना जाता है।

यथार्थवाद के विविधचरण —

साहित्य में यथार्थवाद के विभिन्न रूपों को देखते हुए साहित्यकारों एवं आलोचकों ने उसे भिन्न-भिन्न नामों से परिभाषित किया है जिनमें से कुछ रूप इस प्रकार हैं—

यथार्थवाद का स्वरूप	प्रवर्तक
1. मार्क्सवादी का स्वरूप	कार्ल मार्क्स
2. फ्रॉयडियन यथार्थवाद	सिगमन फ्रॉयड
3. अन्तश्चेतनावादी यथार्थवाद	डी० एच० लारेंस
4. कुत्सित यथार्थवाद	पलावर्ट
5. दार्शनिक यथार्थवाद	डेकार्ट एवं लौक
6. आलोचनात्मक यथार्थवाद	मैक्सिम गोर्की

हिंदी कथा साहित्य में मार्क्सवादी समाजवादी यथार्थवाद के नाम से अधिक जाना जाता है। फ्रॉयडियन यथार्थवाद एवं अन्तश्चेतनावादी यथार्थवादी का एक नाम मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद भी है। इसी को आधुनिक सात्त्विक अति यथार्थवाद मानते हैं।

इस शोध प्रवृत्ति हम यथार्थवाद के उन्हीं चरणों की व्याख्या करेंगे जो अपना ठोस वस्तुगत अस्तित्व रखते हैं। ये चरण इस प्रकार हैं—

1. आलोचनात्मक यथार्थवाद
2. समाजवादी यथार्थवाद
3. अति यथार्थवाद
4. जादुई यथार्थवाद
5. रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद

आलोचनात्मक यथार्थवाद—

“आलोचनात्मक यथार्थवाद” यथार्थवाद का वह रूप है जो इन्द्रिय ग्राह्य बोध को आधार मानकर व्यक्ति और समाज की वास्तविकताओं का उद्घाटन और विश्लेषण सौन्दर्यशास्त्रीय अनुभवों के रूप में करता है वह जीवन की सच्चाइयों का तटस्थ अवलोकन भी करता है।¹

“आलोचनात्मक यथार्थवाद के पुरस्कर्ता बलजाक और स्तेन्दल हैं। किन्तु सोवियत लेखकों की सन् 1934 में हुई पहली काँग्रेस में मैक्सिम गोर्की ने इस शब्द का प्रयोग किया।”²

यह मनुष्य के जीवन एवं समाज को उसकी सत्यता, वस्तुपरकता एवं वास्तविकता के साथ देखने, विश्लेषित करने एवं चित्रित करने वाला यथार्थवाद है।

सामंतवाद के पतन के उपरान्त पूँजीवाद कुछ समय तक तो जनता पर प्रभाव बनाये रहा किन्तु धीरे-धीरे उसके स्वतंत्रता एवं समानता के दावे खोखले सिद्ध हुए जिसका

1. ~~उत्सव~~ आलोचनात्मक यथार्थवाद आर प्रेमचन्द पृष्ठ 6

2. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृष्ठ 41

जिसका संवेदनशील व्यक्तियों के हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा बाल्जाक की कृति 'लास्ट इल्यूजन' में उन्होंने पूँजीवाद की वास्तविकता को उजागर किया है।

अन्स्ट फिशर ने कहा "आलोचनात्मक यथार्थवाद पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ इसी अकेले अहं के रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति एक ऐसे विलक्षण अस्वीकार का प्रतिफल है जिसमें अभिजात तथा गँवारु या सामान्य (ऐरिस्थक्रेटिक एंड प्लेबियन) दोनों प्रकार की मानसिकता घुली मिली है।"¹

आलोचनात्मक यथार्थवाद का पुरस्कर्ता परिवेश एवं परिस्थितियों से समझौता न करते हुए पूरी गहराई एवं ईमानदारी से वस्तुगत यथार्थ का विश्लेषण करता है जो कुछ बुरा एवं घृणित हैं उसकी खुलकर आलोचना करता है एवं उसे धिक्कारता है तथा पीड़ित मनुष्यता के प्रति हमदर्दी रखता है। जीवन की वास्तविकता को उजागर करते समय एक सच्चे आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक के निजी विचार तिरोहित हो जाता है। अपने भावों एवं विचारों के अनुरूप वह असत्य एवं घृणित का पक्ष कभी ग्रहण नहीं करता बल्कि वास्तविक सत्य के प्रति उसकी दृष्टि गहरी होती है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद सतही यथार्थ से अधिक महत्व जीवन की गहराइयों में प्रवाहित होने वाले यथार्थ को प्रदान करता है।

डॉ० सत्यकाम के अनुसार "विश्लेषण यथार्थवाद की अपरिहार्य तात्त्विक विशेषता है उपन्यास में समाज का विश्लेषण कितना वैज्ञानिक है मानव सम्बन्धों का विश्लेषण कितनी गहराई के साथ किया गया है 'यथार्थवाद की मौलिक' पहचान है मानववादी आदर्शों और वास्तविकता के बीच के अन्तर तथा विसंगतियों के मूल कारणों की गहराई में प्रवेश करना अन्तर्विरोधों के सार का परीक्षण करना यथार्थवाद की अनिवार्य प्रकृति है।"²

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र: यथार्थवाद पृ० 44

2. डॉ० सत्यकाम : आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं प्रेमचन्द

जिस प्रकार पाश्चात्य साहित्य में बलजाक एवं स्तेन्दल को आलोचनात्मक यथार्थवाद का पुरस्कर्ता कहा जाता है बलजाक के यथार्थ चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि "उसने व्यक्ति जीवन, समाज जीवन और इतिहास को संश्लिष्टता में परखने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उसने अत्यन्त यथार्थवादी तरीके से जीवन के सही रूप को उसकी गतिशीलता और सम्पूर्णता में अभिव्यक्त किया है।"¹ बाल्जाक और स्तेन्दल के अतिरिक्त पुश्किन, लार्मोण्टोव, गोगोल, डिकेन्स एन्थनी ट्रोलोप, मैकरे, ब्रोंटे वहने, जार्ज इलियट, तोलस्तोय टॉमस हार्डी प्रमुख पुरस्कर्ता हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द जिस आदर्श-मुख यथार्थवाद की बात करते हैं वह काल्पनिक नहीं होता है बल्कि जीवन की विषम परिस्थितियों में से ही निकलकर आया हुआ समाधान होता है। "प्रेमचन्द का आदर्श-मुख यथार्थवाद उनके उपन्यासों और कहानियों में समाजवादी यथार्थवाद या कम से कम आलोचनात्मक यथार्थवाद के पर्याय के रूप में सामने आता है।"²

प्रेमचन्द के युग में व उससे पूर्व भारतेन्दु युग से ही विदेशी सत्ता का शासन होने के कारण भारत शोषण एवं दमन के चक्र में पिस रहा था। किसान, मजदूर व असहायों का शोषण करने में देशी 'पूँजीपति भी पीछे न थे। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन यथार्थ का सशक्त चित्र प्रस्तुत किया है। जीवन के महान एवं तुच्छ दोनों के चित्रण के समय प्रेमचन्द तटस्थ रहे हैं तथा उनकी दृष्टि आलोचनात्मक हो गयी है। प्रेमचन्द के सेवासदन, प्रेमाश्रम कायाकल्प तथा गोदान में उनके यथार्थवाद के प्रति आलोचनात्मक रुख को देखा जा सकता है। सामाजिक अन्यायों की जितनी तीखी आलोचना प्रेमचन्द ने की है उतनी अन्य किसी ने नहीं।

-
1. डॉ० सत्यकाम : आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं प्रेमचन्द पृ० 52
 2. उपरिवत् पृ० 59

यशपाल, राँगेय राघव, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव अमृतराय, जगदीश चन्द इत्यादि अन्य महत्वपूर्ण लेखक हैं जिनकी कृतियों में यह विचारधारा लाक्षित होती है ।

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि इस यथार्थवाद का अर्थ केवल विरूप, घृणित एवं नग्न का चित्रण करना ही है किन्तु यह सत्य नहीं है आलोचनात्मक यथार्थवादी कृतियों में इन सब विसंगतियों का चित्रण ही लेखक का उद्देश्य नहीं रहा है बल्कि इस गंदगी को कुरेदकर इसकी वास्तविकता से परिचित कराकर समाज को इनसे सजग रहने का सन्देश देना ही इनका लक्ष्य है । “जहाँ तक इन कुरूप, वीभत्स तथा घृणित अंशों के प्रति लेखकों के अपने दृष्टिकोण का प्रश्न है यथार्थवादी रचनाकारों ने उनके प्रति निर्मम आलोचना का ही रुख ग्रहण किया है आलोचनात्मक यथार्थवाद नाम की चरितार्थता ही यही है ।”

सत्य के प्रति अप्रतिहत निष्ठा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, समग्र आंकलन, वस्तुगत यथार्थ का मार्मिक विश्लेषण, अन्तर्भेदी दृष्टि, व्यवस्था जन्म विकृतियों का निर्मम उद्घाटन, चित्रण की समग्रता, उसका पारदर्शी स्वरूप, गहरी सामाजिक निष्ठा, तथा अकृत्रिम मानवीय संवेदना, यान्त्रिकता का तिरस्कार सजीव और सप्राण मानव चरित्र के अन्तर्गत टाइप की सृष्टि और उसे दुहरी भूमिका पर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साथ मूर्त करना महाकाव्यात्मक औदात्य — दृष्टिकोण तथा चित्रण, दोनों धरातलों पर, निष्क्रिय तटस्थता से हटकर युग जीवन की गतिविधियों में इनका सजग ओर सचेष्ट इनवाल्वमेन्ट कुछ ऐसी खास बातें हैं जो आलोचनात्मक यथार्थवाद को महनीयता प्रदान करती हैं । इसे यथार्थवादी कला की धरोहर सिद्ध करती है वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में भी आलोचनात्मक यथार्थवाद अपने युग को उसके अन्तः वाह्य परिवेश की अमानवीय समाज व्यवस्था को अच्छी तरह प्रस्तुत कर देना जीवन की वास्तविक की ईमानदारी जीवन्तता एवं प्राणवत्ता के साथ चित्रित कर देना

तथा अपने समय के मनुष्य की पीड़ा तथा उसके निजी और समाजिक जीवन को पूरे परिवेश के परिप्रेक्ष्य में इसका अपनी विशेषताएँ हैं ।”¹

समाजवादी यथार्थवाद—

“23 अप्रैल सन् 1932 के प्रस्ताव से रुसी लेखकों एवं कला की प्रगति के लिये एक नवीन मानदण्ड प्रस्तुत हुआ इसके पश्चात कलात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में “समाजवादी यथार्थवाद” को प्रमुख रूप से स्वीकृति मिली ।”²

मार्क्सवादी चेतना पर आधारित होने के कारण इसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विकासमूलक अवधारणा है श्री वाजपेयी के अनुसार “समाजवादी यथार्थवाद की मूल वस्तु है वर्ग संघर्ष ।..... इस यथार्थवाद में दो तत्व हैं जो वास्तव में गत्यात्मक जीवन के दो पक्ष हैं । एक है वह असह्य और नग्न वास्तविकता जो परिस्थिति बनकर हमें घेरे हुये है और दूसरा है एक स्वप्न जो साम्यवाद का साध्य है यह एक वास्तविक जीवन दृष्टि है जिसमें तात्कालिक यथार्थ और उसे गति और दिशा प्रदान करने वाला आकांक्षित भवितव्य दोनों का द्वन्द्वात्मक संयोग है । साथ ही इस दृष्टिकोण की भूमि भी पूर्णतया सामाजिक है ।”³

अतः यह स्पष्ट है कि समाजवादी यथार्थवाद परम्परागत, की अपेक्षा जीवन की गतिशीलता पर महत्व देता है । डॉ० शिवकुमार मिश्र के अनुसार “समाजवादी यथार्थवाद का आग्रह है कि लेखक वस्तुगत यथार्थ को उसकी संपूर्णता में उभारकर प्रस्तुत करें ।

विरोधी शक्तियों के बीच चलने वाले संघर्ष को जितनी ही विशदता सजीवता तथा तीव्रता के साथ वह चित्रित करेगा उस संघर्ष को जितने ही आयामों में वह देखेगा उसकी कला भी उतनी ही शक्ति सम्पन्न होगी ।”⁴ विकास की प्रक्रिया में नवीन एवं प्राचीन

-
- | | | |
|----|------------------------------|------------------------------------|
| 1. | डॉ० अजब सिंह : | यथार्थवाद पूनर्मूल्यांकन पृ०-33 |
| 2. | डॉ० त्रिभुवन सिंह : | हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० 29 |
| 3. | आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : | नया साहित्य नये प्रश्न पृ० 165 |
| 4. | डॉ० शिवकुमार मिश्र : | यथार्थवाद पृ० 53 |

के मध्य द्वंद्व होना स्वाभाविक है और परिवर्तन का सूचक है । वैज्ञानिक भौतिकवादी युग में समय समय पर होने वाले वर्ग संघर्षों से उस समय का काव्य प्रभावित रहा है । “समाजवादी यथार्थवाद जो वर्ग संघर्ष की भूमि पर काव्य की ऐतिहासिक प्रगति का आकलन करता है, काव्य सत्य को एक पृथक् वस्तु मानता है और कवि की कल्पना को उस सत्य का आवरण ठहराता है ।”¹ नन्द दुलारे वाजपेयी जी यथार्थवाद के सभी रूपों में सबसे स्वस्थ एवं विकासोन्मुख यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद को ही मानते हैं । “यह हमारे राष्ट्रीय अभ्युत्थान का एक अनिवार्य साधन है जिसके द्वारा हम अपने राष्ट्र में अधिकाधिक संतुलन और समानता ला सकते हैं ।”² समाजवादी यथार्थवाद के पुरस्कर्ता यह मानते हैं कि इस यथार्थवाद के द्वारा वे समाज एवं साहित्य को एक नयी जीवन दिशा प्रदान कर रहे हैं । वे जानते हैं कि अन्याय एवं अत्याचार का अन्त एक न एक दिन अवश्य होगा अतः उनके साहित्य में गहन आशावाद के स्वर सुनाई पड़ते हैं । समाजवादी यथार्थवाद के चित्रणकर्ता के लिये रॉल्फ फॉक्स लिखते हैं “उसे निरे वर्णन या आत्मगत विश्लेषण से ही नहीं, बल्कि परिवर्तन से, कार्य-कारण संबंध से, संकट और संघर्ष से सम्बद्ध रखना चाहिये ।”³

समाजवादी यथार्थवाद के चित्रणकर्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि कि वह सामाजिक परिवर्तनों के मूल में चलने वाले वर्ग संघर्ष को पूरी संपूर्णता में देखें तथा नये एवं पुराने दोनों विचारों को तटस्थ भाव से ग्रहण कर भविष्य का स्वरूप निर्धारित करें ।

“समाजवादी यथार्थवाद का लेखक चूँकि समाजवाद की वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न होता है अतः स्वभावतः वस्तुगत यथार्थ का निरीक्षण करते समय उसकी दृष्टि समाज

-
1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न पृ० 425
 2. वही पृ० 162
 3. रॉल्फ फॉक्स : द नॉवेल एण्ड द पीपुल पृ० 102

की प्रगतिशील शक्तियों का आर जाती है जो उसके द्वारा आकांक्षित और समझे गये भविष्य की वाहक है । यथार्थ का चित्रण करते हुये वास्तविकता को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करते हुये अपनी समाजवादी आख्या के अनुकूल वह इन प्रगतिशील शक्तियों का रूप भी उभारता है । और इस रूप के प्रति निष्ठा होने के कारण वह उन्हें विशेष आत्मीयता से मूर्त भी करता है ।¹

समाजवादी यथार्थवादी मनोविश्लेषण शास्त्र की उपलब्धियों को स्वीकार करने के बावजूद सामाजिक परिवर्तनों के मूल में मानवीय विचार एवं भावनाओं को नहीं मानता है । उनके चरित्र टाइप एवं व्यक्ति दोनों ही होते हैं "टाइप तथा व्यक्ति चरित्रों के बीच के कृत्रिम विभाजन का अन्त भी 'समाजवादी यथार्थवाद' की चरित्र सृष्टि का प्रतिपाद्य है ।"² नायक के रूप में अतिमानव या महामानव को इन्होंने पेश नहीं किया है अपितु इनके नायक साधारण जनसमुदाय के ही व्यक्ति हैं जो इच्छित समाज व्यवस्था की प्राप्ति के लिये संघर्षरत हैं । विरोधी परिस्थितियों का सामना करने उनका चरित्र उभरकर सामने आता है उनकी सफलता एवं असफलता पर पूरे जनसमूह की स्थिति निर्भर करती है । उदाहरण के लिये प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास में गोबर गौँव से पलायन कर जाता है उसमें परिस्थितियों को बदल देने की तीव्र इच्छा है किन्तु वह शहर जाकर दूसरे पूँजीपतियों के शोषण का शिकार हो जाता है । और उसकी स्थिति मजदूर की ही रहती है । किन्तु ऐसे चरित्र प्रेरणास्पद होते हैं तथा पाठकों के लिये सहज विश्वसनीय भी ऐसे पात्रों की चरित्र सृष्टि के लिये आवश्यक है कि लेखक स्वयं उस परिवेश में उतरे परिस्थितियों के बदलते क्रम में अपने अपनी भूमिका व स्थिति का अध्ययन करे आशा एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 55

2. उपरिवत् पृ० 58

प्रयास अथवा संघर्ष करके अपनी रचना में उनका चित्रण करें। इस प्रकार की कृति को सार्थक कहा जा सकता है।

समाजवादी यथार्थवाद, लेखकों को अभिव्यक्ति के माध्यम से छूट देने के साथ साथ शैली में नये-नये प्रयोग के लिये भी मुक्त रखता है। “कलात्मक परिष्कृति” के साथ विचारधारा की परिष्कृति समाजवादी यथार्थवाद की केन्द्रीय माँग है जो रक्त की तरह उसकी एक-एक शिरा में सारी जीवंतता के साथ निर्दोष रूप में प्रवाहित होनी चाहिए।¹ पाठक लेखक के मंतव्य को उस कृति के चरित्रों के माध्यम से ग्रहण करें। लेखक को अपनी बात प्रत्यक्ष रूप से न कहकर परिस्थितियों एवं घटनाओं में प्रदर्शित करनी चाहिए ताकि जब पाठक कृति का अध्ययन करें तो पात्रों की स्थिति एवं क्रिया-कलापों से स्वयं को प्रभावित अनुभव करें। समाजवादी यथार्थवाद की जन्मभूमि सोवियत रूस में अनेक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपने कृतित्व के माध्यम से समाज को जैसे नींद से जगा दिया, उसका स्वरूप परिवर्तित कर दिया, विकास की एक नई राह से उसको परिचित किया इसीलिए इन लेखकों को आज भी याद किया जाता है। इनमें प्रमुख हैं मैक्सिम गोर्की, तोलस्तोय, फादयेव, शोलोखोव निकोलाइ आदि।

“यथार्थवादी कौशल के द्वारा लेखक पाठक के हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और अपने वक्तव्य की सच्चाई के सम्बन्ध में आस्था उत्पन्न करता है। ये ही लक्ष्य नहीं हैं लक्ष्य है मनुष्य जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके मनुष्यता के वास्तविक लक्ष्य तक ले जाने का संकल्प, मनुष्य के दुःखों को अनुभव करा सकने वाली दृष्टि की प्रतिष्ठा और ऐसे दृढ़ चेता आदर्श चरित्रों की सृष्टि जो दीर्घकाल तक मनुष्यता को मार्ग दिखाते रहें।”²

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र: यथार्थवाद पृ० 61

2. हजारी प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क पृ० 130

समाजवादी यथार्थवाद को आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रकृतिवाद से भिन्न बताते हुए डॉ० शिवकुमार मिश्र कहते हैं—“समाजवादी यथार्थवाद यथार्थवादी चिंतन तथा यथार्थवादी कला की वह जीवंत धारणा है जो एक ओर उस प्रकृतिवाद से भिन्न है जो मनुष्य को मूलतः आदिम कृतियों से अनुशासित तथा परिचालित मानते हुए उसके अब तक के समूचे बौद्धिक और भावनात्मक विकास की अवमानना करता है उनकी एकदम एकांगी तस्वीर पेश करता है दूसरी ओर उस आलोचनात्मक यथार्थवाद से भी वह विशिष्ट है जो अपनी जीवंत कला, वस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण इनकी अमानवीय भूमिका के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रुख अपनाने एवं जन समान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद, समाजवादी यथार्थवाद की उस क्रान्तिकारी रचनात्मक प्रक्रिया जो वर्तमान के विकृत यथार्थ को बदलने का न केवल रास्ता सुझाती है उस परिवर्तन को मूर्त भी करती है।”¹

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत यशपाल (मनुष्य के रूप, झूठा सच) अमृतलाल नागर (बूँद और समुद्र) राँगेय राघव (सीधा—सादा रास्ता, हुजूर) भैरव प्रसाद गुप्त (मशाल, गंगा मैया) इत्यादि उपन्यासकारों को सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार कहा जा सकता है।

“समाजवादी यथार्थवादी कवि या लेखक समाज का चित्र जैसा है वैसा ही चित्रित नहीं करता है किन्तु उसकी संभावनाओं की ओर भी इंगित करता है। समाजवादी यथार्थवाद बीसवीं शताब्दी का नवीन चिंतन है, मानव कल्याण के लिए एक क्रान्तिकारी विकास है।”²

अति यथार्थवाद—

अति यथार्थवाद का जन्म अन्य बहुत से कला आन्दोलनों के समान सर्वप्रथम फ्रांस में हुआ था इसके आदि प्रवर्तक फ्रांस में आंद्रे ब्रेता और पाल एलुअर्ड थे। प्रथम विश्व

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 66

2. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 33

युद्ध के उपरांत सन् 1919 में उस आन्दोलन का जन्म हुआ। उस अभियोग का प्रमुख चार्ल्स वौदेलेयर था जिसने जीवन की विकृतियों में वास्तविकता एवं यथार्थ को खोजने का निर्देश दिया इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अपौलेनियर ने किया। जिसने अति यथार्थवाद का प्रयोग दृश्यमान वास्तविकता से परे किसी सत्ता के लिये किया था। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार—“अति यथार्थवाद एक प्रकार से मानव विचार धारा के क्षेत्र में व्यवस्था के प्रति क्रमबद्धता के प्रकार से मानव विचार धारा के क्षेत्र में व्यवस्था के प्रति क्रमबद्धता के प्रति विद्रोह करता है तथा उसके स्थान पर अव्यवस्था को प्रतिष्ठित करने के लिए आन्दोलन करता है जो कुछ प्राचीन है जो कुछ परम्परागत है तथा जो कुछ रूढ़ियों एवं व्यवस्थाओं में बँधा हुआ है। उन सबको आमूल नष्ट कर देना ही अति यथार्थवादी आन्दोलन का मुख्य ध्येय रहा है।”¹ कला के बौद्धिक पतन की अपेक्षा उसे काल्पनिक पक्ष ही रुचिकर है व्यक्ति के मनोभावों को चित्रण ही इसका लक्ष्य है। अचेतन मन की गहराइयों में जाकर उसकी स्वच्छंद अभिव्यक्ति करता है। अति यथार्थवाद एक विशुद्ध आत्मिक स्वतः क्रिया है। जिसके द्वारा विचारों के वास्तविक क्रम को मौखिक लिखित या अन्य किसी रूप में प्रकट किया जाता है विचारों को श्रुति लेखन जो बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त हो तथा अन्य सौंदर्यात्मक अथवा नीतिपरक पूर्वाग्रह से विलग हो।² महायुद्ध की विभीषिका को देखने के उपरांत लेखकों एवं साहित्यकारों का हृदय नग्न यथार्थ से उचट गया तथा अपनी व्यथा को शान्त करने के लिए उन्होंने स्वप्न जगत का निर्माण किया जो उसके अचेतन मन के द्वारा निर्मित किये गये थे। फ्रायड के अनुसार अचेतन की आकांक्षाओं एवं इच्छाओं की पूर्ति हेतु ही काव्य की सृष्टि होती है। अतः वाजपेयी जी कहते हैं कि “कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि काव्य और कला सृष्टि भी स्वप्न सृष्टि के समान होनी चाहिए। कलाकार चेतन मन के कार्य को स्थगित कर दे और उसका

1. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य कोष पृ० 11

2. शशि शर्मा : मुक्तिबोध की कविता में यथार्थ बोध पृ० 24

अचेतन अनायास जो भाव आर मानस छवियाँ ऊपर उभारे उन्हें उसी रूप में उन पर किसी नियम का अनुशासन स्थापित किए बिना अंकित करता जाए। कलाकृति का निर्माण इस प्रकार पूर्णतया स्वप्न प्रक्रिया के समतुल्य हो जायेगा और उसका बाह्य स्वरूप वैसा ही अनियमित, विश्रंखल और भायामय रहेगा जैसा स्वप्न में रहता है। अचेतन में बसने वाले अतीन्द्रिय यथार्थ की अभिव्यक्ति का यही उत्तम साधन है इसीलिए इस दृष्टिकोण, धारणा और रचनाविधि का नाम अति यथार्थवाद पड़ा।¹ इसी कारण ऐसी यथार्थवादी कृतियों का अर्थ समझना बहुत ही मुश्किल है ये कृतियाँ फ्रायड के स्वप्न प्रतीकों के आधार पर भी सही नहीं बैठती इन लेखकों की विचित्र सृष्टियों का अर्थ अतियथार्थवादी भी समझते हैं या नहीं इसमें भी संदेह है। “यह वाद मानव मन के अचेतन में दबी पड़ी कुण्ठित दमित वासनाओं का खुलकर वर्णन करता है अति यथार्थवादी साहित्य कृत्रिमता के आवरण को हटाकर समाज और मानव को उसके यथार्थ, कहीं-कहीं नग्न रूप में उद्घटित करता है यह मानव दुर्बलताओं के प्रति अरुचि न उत्पन्न कर रस ले लेकर उनका चित्रण करता है जिससे कहीं-कहीं वह वीभत्स और जुगुत्साकारक हो सकता है।”² मनुष्य की ऐसी इच्छायें जिनकी पूर्ति वह सामाजिक प्राणी होने के कारण सब के समक्ष किन्हीं कारणवश नहीं कर सकता तब वह अपने अचेतन में इनके करने या न करने के संघर्ष में उलझ जाता है। यह द्वन्द्व अन्तर्मन में निरन्तर चलता रहता है। “अतियथार्थवादी लेखक अपने अचेतन के विस्तार को कला एवं साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। मनुष्य अपनी जिन इच्छाओं को दबाने के कारण दुःखी रहता है उसका समाधान अति यथार्थवादी अपने प्रकार से करते हैं। साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जब समाज की मर्यादा एवं परम्परा की सीमाओं का अतिक्रमण करके अत्यन्त ही नग्न रूप धारण कर लेती है तो उसे अतियथार्थवाद कहते हैं।”³ वास्तव

-
1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न पृ० 114
 2. डॉ० नगेन्द्र द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य कोष पृ० 14
 3. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० 60

में यह सभ्यता के आवरण से मुक्त मानव स्थिति का समर्थक है । "इसके अनुसार सभ्यता के कारण ही मानव वास्तविक सुख से वंचित है इसी आवरण को हटाकर यथार्थ स्वरूप को सामने लाना ही इसका उद्देश्य है । यह एक विशुद्ध आत्मिक स्वतः क्रिया है जिसके द्वारा विचारों के वास्तविक क्रम को मौखिक, लिखित, या अन्य किसी रूप में प्रकट किया जाता है । विचारों का श्रुतिलेखन जो बुद्धि के नियन्त्रण से मुक्त हो तथा अन्य सौंदर्यात्मक अथवा नीतिपरक पूर्वाग्रह से विलग हो ।" इनकी कला अन्तर्गत से प्रेरित होती है तथा बुद्धि के नियन्त्रण से परे पूर्णतः स्वचालित होती है ।

"अपने मूल रूप में यह प्रकृतवाद के समीप और मनोविश्लेषण बाद से भिन्न है । प्रकृतिवादी भी मनुष्य को उसी प्रकार का एक विकसित जन्तु मानते हैं जैसे कि संसार के अन्य प्राणी । प्रकृतवादियों ने कुरूप एवं समाज के द्वारा निषिद्ध विषयों को अपनाया एवं उनका चित्रण किया उनके अनुसार "लेखक का कर्तव्य है कि वह किसी भी वस्तु का जब चित्रण करने बैठे तो उसका विश्वसनीय एवं ठीक ठीक चित्र उपस्थित कर दे भले ही वे कुरूप तथा जीवन के गन्दे चित्र क्यों न हो ।" अति यथार्थवादी भी यथार्थ चित्रण में किसी भी प्रकार का दुराव नहीं चाहता अन्तर केवल इतना ही है कि प्रकृतिवादी वस्तुजगत एवं भाव जगत दोनों के यथार्थ का पुरस्कर्ता है जबकि अति यथार्थवाद अचेतन मन की अवस्था को प्रकट करता है ।

"मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद मनुष्य के स्वाभाविक अवगुणों को चित्रित करके उनसे घृणा उत्पन्न करने का प्रयास करता है परन्तु अति यथार्थवाद के अन्दर गोपनीय एवं रहस्यपूर्ण स्थलों को चित्र द्वारा सामने लाकर मानव की जिज्ञासों को निर्मूल करने का प्रयत्न किया जाता है ।"³

-
1. डॉ० नगेन्द्र [REDACTED] पाश्चात्य काव्य शास्त्र सिद्धान्त और वाद पृ० 158
 2. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० 57
 3. वही पृ० 62

“हिन्दी साहित्य में अति यथार्थवादी प्रवृत्ति बहुत ही अल्प दिखाई देती है । समाज कल्याण एवं जन भावना से इसका कोई सम्बन्ध न होने के कारण यह प्रवृत्ति लोकप्रिय नहीं हुई । वाजपेयी जी के शब्दों में, ऐसी कला कभी जन-प्रिय नहीं हो सकती और प्रथम आवेग के पश्चात अति यथार्थवाद का क्रमशः ह्रास होता जा रहा है ।”¹

किन्तु लेखकों के विशेष वर्ग ने जो सभी प्रकार की परस्पराओं से मुक्त होना चाहते थे इसे विशेष प्रोत्साहन दिया । व्यक्ति के अन्तर्मन का चित्रण ही इसका उद्देश्य है रीड का कथन है — “व्यक्तित्व के अन्तर्विरोधों का समाहार कला में होता है, यह अतियथार्थवाद के प्रथम सिद्धान्त में से एक है ।”² व्यक्ति को अन्तर्विरोधों से मुक्ति मिलने के लिये आवश्यक है कि वह सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो । लेखन के क्षेत्र में भी यह लेखक को पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करने का पक्षधर है । इस सम्बन्ध में जार्ज ह्यूने कहते हैं “अतियथार्थवाद स्वभावतः अभिव्यक्ति की इस स्वतन्त्रता का पक्षपाती है और इसको अधिक करने का प्रयत्न करता है परन्तु इसके प्रयत्न विधान — सम्बन्धी सुधारों की ओर उन्मुख नहीं है । अतियथार्थवाद कविता की प्रयोगात्मक शक्ति पर अधिक बल देता है । यह लेखन के किसी भी रूप को तब तक मानता है जब तक कि वह लेखक की आत्म विवृत्ति में सहायक हो ।”³

जादुई यथार्थवाद—

यथार्थवाद का अगला चरण जादुई यथार्थवाद है । “हिन्दी में जादुई यथार्थवाद की चर्चा सन् 82 में कोलंबियाई लेखक ग्रेब्रियल गार्सिया मार्क्वेस के उपन्यास ‘वन हंड्रेड इयर्स ऑफ सूलिच्यूड’ को नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद शुरू हुई ।”⁴

-
- | | |
|-------------------------------|-------------------------------|
| 1. नन्द दुलारे वाजपेयी : | नया साहित्य नये प्रश्न पृ-115 |
| 2. संपादक शिवदान सिंह चौहान : | आलोचना पृ0 188 |
| 3. वही पृ0 188 | |
| 4. संपादक नन्द किशोर नवल : | कसौटी 5 पृ0 28 |

जादुई यथार्थवाद तीसरी दुनियाँ से प्रेरणा लेकर मिथक एवं फैंटेसी के माध्यम से यथार्थ को उपस्थित करता है । यद्यपि यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है । भारतीय साहित्य में परीकथा एवं अन्य पौराणिक कथाएँ इसका उदाहरण हैं इनमें जीवन एवं जगत से जुड़े किसी यथार्थ को फैंटेसी के माध्यम से परोसा जाता है । उपन्यासों के क्षेत्र में देवकीनन्दन खत्री की अत्यंत लोकप्रिय कृति चन्द्रकांता इसी श्रेणी का उपन्यास है । रामायण एवं माहभारत के काल से लेकर कृष्णा सोवती के 'ए लड़की' (उपन्यास) तक भारतीय साहित्य में जादुई यथार्थवाद की परम्परा मिलती है । जादुई यथार्थवाद की विशेषता है कि वह यथार्थ को उसके परिचित और दृश्यमान रूप से भिन्न फंतासी और मिथकीय संसार में घुलामिलकार प्रस्तुत करता है । साहित्य के सन्दर्भ में जब हम यथार्थ का प्रयोग करते हैं तो हमारा दृष्टिकोण बहुत सीमित होता है । वास्तव में यथार्थवाद एक पूरी तरह वैज्ञानिक प्रक्रिया है । जो विज्ञान सम्मत है वही यथार्थ है । 19वीं सदी से लेकर 21वीं सदी तक विज्ञान में बहुत प्रगति हुई है इसी के साथ यथार्थ में भी प्रगति हुई है 19वीं सदी का यथार्थवाद 21वीं सदी में जादुई यथार्थवाद बन गया है । यह अपने साथ वाह्य व अंतर्मन दोनों के लेकर चलता है अतः अधिक उपयोगी है । "लैटिन अमेरिकी जादुई यथार्थवाद की सारी शक्ति आदमी के भौतिक जगत और आत्मिक जगत दोनों के ही विस्मयों के द्वंद्वात्मक सह अस्तित्व को तलवार की धार पर चलने के सन्तुलन और रोमांच के साथ व्यक्त करने में निहित रही है । गोबर युग से लेकर रॉकेट युग इलेक्ट्रॉनिक युग तक के यथार्थ के संश्लिष्ट जीवन को व्यक्त करने की जिस शक्ति का परिचय 'मारक्वेज' की शैली ने दिया है वह शैली तीसरी दुनियाँ के सारे देशों के यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये कारगर हो सकती है ।' इस प्रकार के यथार्थवाद के लेखकों ने अनेक पृष्ठों की रचनाएँ निर्मित की हैं किन्तु अपनी रुचिकर

शैली के कारण वे पठनीय रही है । जादुई यथार्थवादी लेखक अतीत के पृष्ठों को उलटकर भविष्य की रूपरेखा का निर्माण करता है । “रचनाकार जब अपने सुदूर अतीत में घुसता है, इतिहास में झाँकता है तो उसे अपने आदिम भौतिक परिवेश की याद आने लगती है । मनुष्य के द्वारा इतिहास में किये गये कर्म की अनेक छवियाँ उभरने लगती है इतिहास में मनुष्य की चेतना का तरह – तरह से रूपान्तरण हुआ है वह कुतूहल की सृष्टि करने वाले मिथकों में खोने लगता है वह प्रतीकों में निहित अपने अतीत की गुह्यचिन्ताओं को सुलझाने लगता है ।”¹ यही कुतूहल जादुई यथार्थवाद का निर्माता है । “समय के सीधे विकास और वर्तुल प्रवाह के बीच की अन्तर्क्रिया का संज्ञान उस जादुई यथार्थवाद से ही मुमकिन है जो क्रमबद्ध और बिना किसी कम के काल प्रवाह के बीच नाना प्रकार के संयोजनों और टकराहटों को व्यक्त करता है वर्तमान और संभावनाओं से सम्पृक्त यथार्थ दृष्टि सिर्फ एक जटिल वर्तमान को उद्घाटित ही नहीं करती है । स्वयं ही उस जटिलता से निर्मित होती है तथा सच्चाई को देखने का एक नया नजरिया प्रदान करती है ।”² यह नवीन दृष्टिकोण ही जादुई यथार्थवाद है । “एक प्रकार की रोमांचकता तथा विधिता से परिपूर्ण होने के कारण जादुई यथार्थवादी उपन्यास पाठकों में लोकप्रिय हुये है । संप्रेषणीयता इनका महत्वपूर्ण गुण है ।

“संप्रेषण की चुनौतियों को स्वीकारने के कम में ही शायद हिन्दी कथाकार मार्कस ओर मोंतरोंसों के जादुई यथार्थवाद की शरण में जायें ।”³

रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद—

“यथार्थवाद का नवीनतम चरण रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद” है यद्यपि इस प्रकार के यथार्थ की चर्चा पूर्व में यत्र— तत्र मिलती है किन्तु इसका रूप कहीं भी स्पष्ट दिखाई नहीं दिया था इस प्रकार के यथार्थ की स्पष्ट रूप से उद्घोषणा प्रथम डॉ० अजब

-
- | | |
|---|-----------------------------------|
| 1. सम्पादक महावीर अग्रवाल, वीरेन्द्र मोहन : | सापेक्ष पृ० 19 मार्च 1984 |
| 2. संपादक राजेन्द्र यादव : | हंस पृ० 7 अगस्त सितम्बर 1997 |
| 3. संपादक शैलेन्द्र सागर : | कथाक्रम पृ० 50 जुलाई सितम्बर 2000 |

सिंह की पुस्तकों में मिलती है । उनकी आलोचनात्मक कृति “यथार्थवादः पुनर्मूल्यांकन” में रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद अपने पूर्व रूप में उपस्थित हुआ है । इसमें इस यथार्थवाद के सभी पक्षों को उद्घाटित किया गया है ।

यह यथार्थवाद अपने विशाल कलेवर में यथार्थ के सभी पक्षों को समाहित किये है । यह आज के युग की आवश्यकता है । “आज सारा संसार परिवर्तन की प्रक्रिया में है । इस वैचारिक संक्रान्ति के प्रवाह में हम वैश्विक धरातल पर आज जिस चिन्तन के द्वारा विश्वमानवता को एक नयी दिशा की ओर मोड़ सकते हैं वह भारतीय आध्यात्मिकता की महती आवश्यकता है और यही भारतीय आध्यात्मिकता विश्वमानवता के लिये मानक प्रतिमान के रूप में रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवादः आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना के रूप में समकालीन मानव जीवन के लिये एक नवीन मार्गदर्शन का आदर्श प्रतिमान बन सकता है ।”¹

यथार्थवाद का अभी तक जो रूप हमें हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता वह यथार्थवाद के खंडित स्वरूप को ही स्पष्ट करता है । सम्पूर्णता के साथ यह केवल रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद में ही मिलता है । इसे यह दृष्टि भारत प्रदान करता है । “जीवन दृष्टि भी है ओर उस जीवन दृष्टि को उसकी समग्रता में देखा, परखा और समझा जाना चाहिये । समकालीन समालोचको विचारकों एवं लेखकों की सबसे बड़ी कमजोरी यह मानी जाती है कि उन्होंने भारतीय अस्मिता को समग्रता में देखने समझने का प्रयासनहीं किया या कम किया है ।”²

आध्यात्मिकता को सर्वथा नकार देना, सर्वथा अनुचित है योगियों सिद्धों, नाथों की जो परंपरा है उसको नकारने का मतलब है कि हम अपने यहाँ की स्वस्थ परंपरा को

1. डॉ० अजब सिंह: यथार्थवादः पुनर्मूल्यांकन पृ० 67

2. वही पृ० 57

नकार रहे है ।.....

इसलिये आर्षचेतना की प्रस्तुति के लिये हमें यथार्थवाद की रचनात्मक क्रान्तिकारी चेतना – अतिच्छन्दस को लाना है।¹ यह दर्शन की भावभूमि से साहित्य में उतारा गया है क्योंकि साहित्य भी एक ज़ीवन दर्शन ही है । दर्शन और साहित्य को आपस में मिलाकर एक नए रूप में छायावादियों ने प्रस्तुत किया है । “छायावादी कवियों ने दार्शनिक आधारों को भी नव बोध के स्तर पर व्याख्यायित किया और विश्वबन्धुत्व तथा अखिल मानवता के कल्याणकारी पक्षों को अनादि अनन्त सत्ता से जोड़ा – भावबोध के स्तर पर नवीन शिल्प में।”² इससे यथार्थवाद के वर्तमान स्वरूप को समझने में सहायता प्राप्त हो सकी है । वास्तव में छायावादः स्वच्छंदतावाद ने ही इसे आधार भूमि प्रदान की है । इस आधार की भूमि पर ही यथार्थवाद का विशाल वृक्ष खड़ा है जिसकी विभिन्न शाखाओं के रूप में समाजवादी मानववादी, आलोचनात्मक, आध्यात्मिक इत्यादि शाखायें विकसित हैं । “यथार्थवादी – स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक अवधारणा एक अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा है ।” अतः इसे व्यापक रूप में ही देखा जाना उचित है इस रूप में यह रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद के रूप में देखा जा सकता है ।

अपने इन चरणों में विकास करता हुआ यथार्थवाद विभिन्न सन्दर्भों से होकर गुजरा है । आगामी अध्याय में हम इन्हीं विभिन्न क्रमिक सन्दर्भों से गुजरते हुये यथार्थवाद की विकास यात्रा को (यथार्थवाद से रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद तक) देखने का प्रयत्न करेंगे ।

-
1. डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ पृ० 109
 2. डॉ० अजब सिंह: यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 92

द्वितीय अध्याय : यथार्थवाद के बदलते संदर्भ

- (क) यथार्थवाद का भौतिक संदर्भ
- (ख) यथार्थवाद का सांस्कृतिक आध्यात्मिक संदर्भ
- (ग) यथार्थवाद के नये प्रतिमान रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद :
आध्यात्मिक – सांस्कृतिक चेतना – अतिमानस
अतिच्छन्दस व अमृताकला प्रेमकला

द्वितीय अध्याय

यथार्थवाद के बदलते संदर्भ

पिछले अध्याय में यथार्थवाद के विभिन्न चरणों का विवेचन करते हुए एक तथ्य यह सामने आता है कि साहित्य के साथ-साथ यथार्थ में परिवर्तन होता है। जिस प्रकार समाज स्थिर किन्तु परिवर्तनशील है उसी प्रकार यथार्थ परिवर्तनशील है। यथार्थ भी सदैव अस्तित्व में रहने के साथ-साथ निरन्तर गतिमान रहता है। जैसे-जैसे सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता है वैसे-वैसे ही यथार्थ में भी परिवर्तन आता है जिससे साहित्य का स्वरूप भी बदल जाता है जब एक ही प्रकार की जीवन दृष्टि रचनाकारों के मानस में स्थान बना लेती हैं तो बाद का जन्म होता है।

“वस्तुतः वास्तविक जीवन की अवधारणाओं और प्रवृत्तियों को बौद्धिक स्तर पर व्याख्यायित एवं नियोजित करने के प्रयत्न में ही कला जगत में वादों का जन्म होता है। प्रत्येक ‘वाद’ के अन्तर्गत समय-समय पर ऐसी जीवन दृष्टियाँ संगठित होती रहती हैं जिनसे सामाजिक उन्नति और हास दोनों के संयोग इकट्ठे होते रहते हैं।”

यथार्थवादी साहित्यकार केवल दृश्य का यथातथ्य चित्रण नहीं करता है अपितु अपने अनुभवों एवं अन्तर्विवेक के द्वारा उस बाह्य तथ्य को नए भावों तथा संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करता है। कविवर निराला की “वह तोड़ती पत्थर” तथा “भिक्षुक” नामक कविताओं में कवि ने बाह्य दृश्य को अपने हृदय की गहराई से अनुभव करके नई संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है इसीलिए ये कवितायें सच्ची यथार्थ वादी कृतियाँ जान पड़ती हैं। यथार्थवाद अपने प्रारम्भिक स्वरूप से लेकर अद्यतन अनेक राहों से होकर आया है। सामाजिक विकास के साथ-साथ इसका भी

विकास हुआ है। जिससे इसके स्वरूप में परिवर्तन आया। अपने आरम्भ के दौर में यह पूर्णतया विरोधी माना गया था।

“यथार्थवाद” कल्पना तथा यथार्थवादी कला को अपने प्रसार के लिए जिस प्रकार की जमीन की आवश्यकता थी वह उसे आगे चलकर तब मिली, जबकि युग की बदली हुई परिस्थितियों ने स्वतः स्वच्छंदतावादी कल्पना तथा सौंदर्य की दुनियाँ को पृष्ठ भूमि में फेंकते हुए एक नए युगारंभ का शंखनाद किया।¹ यथार्थवाद का आगमन हिन्दी साहित्य में पश्चिम के प्रभाव से हुआ अतः यथार्थ के साथ-साथ भौतिकता का प्रवेश स्वाभाविक था।² “वैसे भी समाज मनुष्य एवं चिंतन ये तीनों ही यथार्थवादी कृति के प्राण हैं। साहित्यकार इस भौतिक जगत की यथार्थता की प्रस्तुति अपनी रचना में करता है। साहित्य की यथार्थवादी धारा ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाती है। और यथार्थवाद विरोधी आत्मवादी धारा भावनावादी दृष्टिकोण।”² अतः यथार्थवाद को समझने के लिए भौतिकवादी और भावनावादी दार्शनिक प्रकृतियों की जानकारी आवश्यक है।³ साहित्य में यथार्थवाद की नींव रखने वाले हीन ने जगत के प्रति वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया। “तेन के अनुसार साहित्यकार का व्यक्तित्व तीन तत्वों से निर्मित होता है। ये तीनों तत्व हैं जाति, देश और काल इन तीनों के मिश्रण से एक प्रधान मानसिक वृत्ति का निर्माण होता है जिसके द्वारा विशेष प्रकार की साहित्यिक सृष्टि संभव होती है।”³ निश्चित ही यह विशिष्ट साहित्यिक सृष्टि, भौतिक यथार्थवादी सृष्टि है। 19 वीं शताब्दी में यथार्थवाद को प्रभावित किया मार्क्सवादी विचारों ने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के स्पष्ट चित्र तत्कालीन साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। मार्क्स ने स्पष्ट किया विकास के लिए द्वन्द्व का होना आवश्यक है।

-
- 1— डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 178
 2— “सम्पादक : नामवर सिंह : आलोचना पृ० 55 अक्टूबर-दिसम्बर 76
 3— डॉ० कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० 9

“विशिष्ट अर्थ पद्धति पर आधारित समाज जब बदल जाता है तब दर्शन साहित्य आदि सभी बदल जाते हैं। परिवर्तित समाज की नवीन दृष्टि साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करती है। साहित्य के माध्यम से वह शोषकों को संगठित कर उनकी तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करती हैं तथा उसके परिवर्तन के लिए क्रांति का आह्वान करती हैं।”

हिन्दी साहित्य में आरम्भिक दौर अर्थात् भारतेन्दु युग से ही यथार्थवाद ने इसी भूमिका का निर्वाह किया है। समाजशास्त्र तथा ऐतिहासिकता का समावेश भी यथार्थ की परिधि में हो गया। अपनी समकालीन समाजिक परिस्थितियों का चित्रण यथार्थवादी कवियों ने अपनी रचनाओं में किया।

“मिट्टी से भी मटमैले तन, अधफटे कुचले जीर्ण वसन

ज्यों मिट्टी के बने हुए थे गवई लड़के भूखेजन”²

इन पक्तियों में यथार्थ का सामाजिक बोध है। किन्तु यथार्थ भौतिकवाद की जड़ता का समर्थन नहीं करता है। और इसी चेतन को जब कवि मन ग्रहण करता है तो एक उत्कृष्ट काव्य अथवा साहित्य की सृष्टि होती है।

यथार्थवाद के भौतिक जीवन पर अधिक बल देने के कारण समाज में विशेषकर भारतीय समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ। डॉ० चंडी प्रसाद जोशी के अनुसार “19वीं शताब्दी विद्रोह का युग है मध्ययुगीन विचारधारा तथा सांस्कृतिक रूपों का खंडन किया गया और नई विचारधाराओं ने जन्म लिया। सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए विभिन्न क्रांतिकारी तत्वों की अपेक्षा होती है। जो सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित कर

1- डॉ० कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० 11

2- “श्री सुमित्रा नन्दन पंत : ग्राम्य - गाँव के लड़के पृ० 27

सकें। औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय भौतिकवादी सभ्यता, विश्वास मूलक दृष्टिकोण तथा धर्मिक आध्यात्मिक संस्कृति से संघर्ष हुआ इस संघर्ष ने नवीन विचारधारा को जन्म दिया।¹ यह नवीन विचारधारा इहलोकवादी थी। मानव ने इस संसार को सत्य माना तथा मानवजीवन अधिकाधिक सुखी बनाना इसका उद्देश्य हुआ भोगवादी संस्कृति को इससे बहुत बल मिला। मनुष्य में छिपी असीम शक्तियों का विकास कैसे हो ? तथा उसका उपयोग जनकल्याण के लिए कैसे हो यह भी यथार्थवादी कृतियों का विषय रहा है।² मनोविज्ञान ने मानव मन के सत्यों को स्पष्ट रूप से चित्रित करके मानव मन के यथार्थ को स्पष्ट किया अतः मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद उद्भूत हुआ। इसने मानव मन के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिससे विकास की नवीन सम्भावनायें सामने आईं। कोई भी लेखक अपनी रचना को अधिक प्रभावशाली तभी बना सकता है जब वह माननीय चेतना के प्रत्येक स्तर का ज्ञाता हो।³ सच्चे लेखक और कलाकार की कसौटी दोब्रोल्डोवो ने यह मानी है कि वह मानव हृदय तथा जीवन की गहराई में कितनी दूर तक प्रविष्ट होकर विचारों को जन्म दे सका है जो सपूर्ण मनुष्यता के लिय प्रेरक हो।ये लेखक मानवीय चेतना के उच्च स्तर के प्रतिनिधि होते हैं। ऐसे ही लेखकों ने साहित्य तथा मानव जीवन की समझ के लिये एक दृष्टि प्रदान की है। और यह दृष्टि यथार्थवादी है। यथार्थवाद के भौतिकवादी स्वरूप ने समाज से संकीर्णताओं एवं सामाजिक बुराइयों को दूर करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। अच्छे साहित्य का प्रयोजन भी यही होता है कि वह उपयोगितावादी हो। प्रसिद्ध यथार्थवादी लेखक 'हावर्ड' फास्ट यांत्रिक और रूखे वर्णन, अश्लील और अविचार पूर्ण किये गए चित्रण को यथार्थवाद नहीं मानता वह यथार्थवाद को प्रेम अंतरगता, संवेदनशीलता आदि काव्य

1— डॉ शिवकुमार मिश्र : यथार्थवादी पृ० 157

2— डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृष्ठ 108

के उदात्त तत्वों की सेविका कहता है । साहित्य का उद्देश्य युग भावना को निर्माणात्मक तत्वों के साथ प्रस्तुत करना है । यथार्थवाद के भौतिक जीवन एवं जगत के चित्रण ने देशभक्ति, राष्ट्रीयता समाज के नव निर्माण जैसे तत्वों को बल प्रदान किया ।¹

हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थवाद के जनक के रूप में प्रेमचन्द्र का नाम लिया जाता है । प्रेमचन्द्र से लेकर आज तक के कथाकारों ने इस बाह्य जगत के यथार्थ को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । यथार्थ को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने के प्रयास में कहीं-कहीं पर यह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण भी कर गया है । फलस्वरूप वह अपने वास्तविक उद्देश्य जो मानव को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने का है । में सफल नहीं हो सका है । यथार्थवाद का भौतिक पक्ष एक अर्थ में महत्वपूर्ण रहा है कि उसने विश्व में अनेक क्रांतियों को जन्म दिया तथा मार्क्सवादी चेतना (समाजवादी चेतना) आगे के विकास के लिए नींव की ईंट के रूप में प्रयुक्त हुई ।

समय के साथ-साथ विचारों में, दर्शन में, कला में तथा समाज में परिवर्तन होता है इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप साहित्य में भी परिवर्तन हुआ है । अबसमय आ गया है कि समाजवादी चेतना के साथ आध्यात्मिकता का भी सम्मिश्रण करके विश्वमानवता के कल्याण के लिये एक नवीन सृजन उपस्थित किया जाय क्योंकि आध्यात्मिकता में मानवीय कल्याण की भावना निहित होती है ।¹

यथार्थवाद का आध्यात्मिक संदर्भ —

यथार्थवाद आध्यात्मिक संदर्भ में प्राचीन भारतीय साहित्य में बहुतायत से देखने को मिलता है । किन्तु उसका स्वरूप व परिभाषाएँ भिन्न हैं । जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है भारतीय मानस में आध्यात्म अंदर तक बसा है उसे स्रोत हमारे प्राचीन ग्रन्थ है जिनके अनुसार यथार्थ वह है जो सदैव रहता है चिर स्थाई है । इस अर्थ में ईश्वर

को आत्म तत्व को ही यथार्थ माना गया वे सब वस्तुएँ जिनमें ईश्वर का अंश है वे भी यथार्थ है। इस रूप में आध्यात्मिक यथार्थ के रूप में तीन तत्वों को लिया गया। ईश्वर जीव एवं जगत। वास्तव में मनुष्य के जीवन के लिये ये तीनों ही तत्व आवश्यक हैं इनमें से किसी भी एक की उपेक्षा करने पर जीवन का लक्ष्य जो कि आनन्द एवं सन्तोष की प्राप्ति है, विस्मृत हो जायेगा।

“यदि हम कला में यथार्थवाद को वस्तुपरक रूप में प्राप्त यथार्थ की एक पहचान मानें तो यह निश्चित है कि हम उस यथार्थ को बाह्य जगत तक सीमित न करें जो हमारी चेतना में स्वतंत्र रूप से विद्यमान रहता है। हमारी चेतना में स्वतंत्र रूप से विद्यमान रहनेवाली चीजें तो वस्तुतः भौतिक तत्व ही हैं। लेकिन अपनी व्यापकता में आध्यात्मिक चेतना को भी समेटता है।” अतः यह आवश्यक है कि अपनी चेतना के सम्पूर्ण स्वरूप को लेकर मनुष्य अपने विकास की ओर अग्रसर हो। साहित्यकार जब किसी कृति का निर्माण करता है तो वह अपनी चेतना के व्यक्तिगत अनुभवों संवेगों तथा कल्पनाओं संभावनाओं का मिश्रण कर साहित्य का निर्माण करता है। भौतिक जीवन के संघर्षों एवं पीड़ाओं का चित्रण करने के साथ—2 वह मनुष्य को एक उत्कृष्ट जीवन के लिये भी प्रेरित करता है। अपने सतत विकास के क्रम में यथार्थवाद भौतिकवाद से उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ अध्यात्म तत्व की ओर अग्रसर हुआ है। इसी क्रम में यह मानव को क्रमशः नवमानव एवं अतिमानव की श्रेणियों में लाता है।

मानव एवं मानवीय संस्कृति के विकास में कला एवं साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ—साथ मार्गदर्शक भी है। इसीलिए आज के भौतिकवादी युग के दुष्परिणामों को देखते हुए यह आवश्यक है कि उसको आध्यात्मिकता का सहारा दिया जाय। भारतीय ग्रन्थों से प्रेरणा ग्रहण की जाय अपनी

भारतीय संस्कृति के जिस मूल स्वरूप को हम विस्मृत करते जा रहे हैं उसको एक नवीन वैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत करना आज की महती आवश्यकता है ।

“उपनिषदों ने उद्घोषित किया ‘एकोऽहम् द्वितीयोनास्ति’ निराकार अद्वैत का सिद्धांत सभी धर्म सभी विचारक कुछ सीमाओं तक मानते रहे, परंतु भौतिक बोधता के फलस्वरूप पदार्थ और शक्ति में अन्तर बना रहा है । द्वैत बना रहा परंतु विज्ञान ने प्रगति की। $E = MC^2$ का वैज्ञानिक सूत्र प्रतिपादित हुआ । सारे द्वैत मिट गये ‘एकोऽहम् द्वितीयोनास्ति’ सम्पूर्ण विश्व में स्थिर सिद्धान्त मान लिया गया ।’ हिंदू धर्म अनेक ऐसी कथाएँ हैं। जो मानव धर्म को सर्वश्रेष्ठ घोषित करती है । इन्हीं पौराणिक सत्यों को आधुनिकता के परिवेश में ढालना आज के साहित्यकार का कर्तव्य है । कोरे भौतिकवाद एवं कोरी धर्मान्धता दोनों ने ही मनुष्य के जीवन को जटिल बना दिया है । अपने विचारों एवं अपनी जीवन दृष्टि से उत्पन्न समस्याओं का समाधान भी मनुष्य को अपनी ही चेतना में तलाशना होगा मानव चेतना की विशिष्टताओं को दर्शाते हुए ऋग्वेद में कहा है कि “मरणधर्मा प्राणी ने इस (चेतना) शक्ति का अविज्ञान किया, यह शक्ति अपनी अनंत कामनाओं को अपने भीतर रखती है जिससे कि वह समस्त पदार्थों को धारण कर सके । वह समस्त अन्नों का आस्वादन लेती है और जीव के लिये घर बनाती है ।”¹ यह चेतना मनुष्य की असीमित शक्तियों का केन्द्र है यह एक सत् तत्त्व है अतः यथार्थ है । कलाकार जब अपनी चेतना को अनन्त विस्तार देता हुआ सम्पूर्ण सृष्टि में एक तत्त्व को अनुभवकरने लगता है तथा यथार्थवाद होने पर वह समूची मानवजाति के लिये कल्याणकारी मार्ग तलाश करता है ऐसे में वह जिस कृति का निर्माण करता है वह कालजयी होती है । ‘जयशंकर प्रसाद’ की प्रसिद्ध रचना “कामायनी” इसी का उदाहरण है । छायावादी युग

1— संपादक राजेन्द्र यादव : हंस पृ० 57 दिसम्बर 1999

2— संपादक — डॉ० प्रणवपाण्ड्या : अखण्ड ज्योति पृष्ठ 5 नवम्बर 2001

की रचना होने पर भी वर्तमान परिस्थितियों में तथा आगामी समय में भी कामायनी युग को अपना जीवंत सदेश देती रहेगी ।

आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय के सम्बन्ध में पंत जी ने चिदम्बरा की भूमिका में लिखा है । “युगवाणी और ग्राम्या में भी मेरा दृष्टिकोण मानव जीवन के सत्य के प्रति समन्वयात्मक ही रहा हैअपनी उत्तरकालीन रचनाओं में मैंने इस समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अतिक्रम कर और भी अधिक व्यापक क्षितिजों का उदघाटन किया है ।केवल आध्यात्मिकता निष्क्रियता को जन्म देती है और एकान्तिक भौतिकता मनुष्य को असंतोष एवं तज्जन्य मनः क्लान्ति की कुहेलिका में भावशून्य बना देती है ।”¹ इसी लिये पंत जी दोनों के समन्वय पर जोर देते हुए कहते हैं कि —

“भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिये मात्र सोपान

जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान”²

दोनों के मिश्रण से ही मानवता प्रगति कर सकती है ।

विज्ञान के अनेक साधनों से सम्पन्न होने पर भी मानव दुखों से त्रस्त है इसका कारण है कि हमने ज्ञान के साथ जीवन विवेक को ग्रहण नहीं किया केवल ज्ञान भ्रमों, संकट व दुख का कारण बनता है । हिन्दी के प्रख्यात आलोचक डॉ० अजबसिंह अपनी “यथार्थवादः पुनर्मूल्यांकन” नाम पुस्तक में कहते हैं कि “जीवन का विवेक ही जीवन की वास्तविकता है । जीवन विवेक ही मनुष्य को सुमार्ग की ओर ले जाता है ।”³ किसी भी वस्तु को जानने से अधिक महत्वपूर्ण है उसके उपयोग को अधिकांश मानवों के कल्याण के लिए उपयोगी बनाना है ।

“अब तक विज्ञान और आध्यात्म में जो विरोध रहा है, उसका परिणाम अशुभ

1— सुमित्रानन्दन पंत : चिदम्बरा की भूमिका से

2— सुमित्रानन्दन पंत : चिदम्बरा पृ० 73

3— डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन पृ० 2

है मनुष्य एक शरीर भी है और आत्मा भी अतः यह आवश्यक है कि इस अधूरेपन को वैज्ञानिक आध्यात्मवादके माध्यम से पूरा किया है ।¹ साहित्य के क्षेत्र में यही कार्य आध्यात्मिक यथार्थवाद से संभव है । अपने आध्यात्मिक संदर्भ में यथार्थवाद मनुष्य को किसी काल्पनिक लोक का आश्वासन नहीं देता किंतु वह केवल इस मूल्यविहीन, विद्रूपताओं से भरे समाज को ही सत्य मानने पर बल नहीं देता अपितु वह सत्य को आवरण से निकालकर उत्कृष्ट बनाने पर बल देता है । वर्तमान समय में आवश्यकता है कि जिस प्रकार पूँजीवादी चेतना से विकसित होकर हमने समाजवादी चेतना को प्राप्त किया है उसी प्रकार अब समाजवादी चेतना का विकास हो और मनुष्य आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करे । जीवन में विषमताओं का एकमात्र कारण यही है कि भौतिक तत्व के विकसित होने की तुलना में हमारी आध्यात्मिकता का विकास नहीं हो रहा है । जीवन के सत्य को जब मनुष्य अध्यात्म के सहारे जानने की कोशिश करेगा तब उसकी चेतना उसको अतिच्छन्दस की अवस्था में पहुँचा देगी । विवेक मानव को अतिच्छन्दस की भाव भूमि में ले जाता है । विवेक ही मानव को कर्मयोग विज्ञान की ओर उन्मुख करता है । इस कर्मयोग विज्ञान का थोड़ा सा भी साधन जन्म, मृत्यु एवं महाभय से रक्षा कर लेता है । गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि "हे अर्जुन ! इस कर्मयोग विज्ञान में निश्चयात्मिका बुद्धि एक होती है, किन्तु अस्थिर विचार वाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदों वाली और अनन्त होती है ।ऐसे मानव भटकाव की स्थिति में होते हैं यही भटकाव की स्थिति विवेकहीनता की स्थिति होती है"²

यथार्थवादी कवि मानस जगत में प्रवेश करके विभिन्न पक्षों को अपनी कृतियों में उद्घाटित करते हैं । इसके द्वारा वे यथार्थ और आदर्श दोनों को सम्मिलित करते हैं । कथा

1— 'सम्पादक डॉ० प्रणवपण्ड्या :

अखण्ड ज्योति पृ० 6

2— 'डॉ० अजब सिंह :

यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 3

साहित्य में यथार्थ और आदर्श को साथ-साथ अनेक लेखकों ने प्रस्तुत किया है । किन्तु अध्यात्म के साथ यथार्थ को काव्य में बहुत ही भावनात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है । जयशंकर प्रसाद (कामायनी) पंत (चिदम्बरा, लोकायतन) इत्यादि को इसके संदर्भ में देखा जा सकता है ।

मनुष्य जाति के विकास में एक आदर्श राज्य की स्थापना के प्रयास में मार्क्स और एंगेल्स ने अपने दर्शन के केन्द्र में मनुष्य को रखा किन्तु आध्यात्मिक चेतना के अभाव में यह अपने इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहा । प्रत्येक देश व काल का साहित्य अपने वांगमय में संस्कृति को समेटे रहता है । पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय युवा वर्ग को अपनी संस्कृति से विमुख कर दिया जिसके परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यों का निरन्तर पतन हो रहा है । हमारी संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति रही है जिसमें वसुधैव कुटुम्बकम् जैसी भावनाएँ एवं विचार सन्निहित हैं । आधुनिक दर्शन लेखकों एवं रचनाकारों को ऐसी कृतियाँ रचने की प्रेरणा दे रहा है जिससे मनुष्य की क्षीण होती जा रही आध्यात्मिक शक्ति को पुनः एकत्र किया जा सके तथा भारतीय संस्कृति जो विश्व की सर्वश्रेष्ठ एवं वैज्ञानिक संस्कृति है उसको पुनरुज्जीवित किया जा सके है । अरविन्द दर्शन, योगिराज श्री देवराहा बाबा का सर्वात्म दर्शन ऐसी दृष्टियाँ प्रदान करते हैं जिससे भारतीय लेखक विश्व के समक्ष अपनी सांस्कृतिक आध्यात्मिक पहचान को सम्पूर्ण यथार्थ के साथ प्रस्तुत कर सके । इसके लिये आवश्यक है कि कुछ ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जाय जिनमें समाज को बदलने के लिये क्रांति तथा रचनात्मकता के अंश विद्यमान हैं । ये चरित्र यथार्थ की भावभूमि पर ही गढ़े जाने चाहिए । अपनी दुर्बलताओं तथा कमजोरियों से संघर्ष करके विजय जाने वाले चरित्र ही नवीन युग के वाहक होंगे ।

यथार्थवाद के नये प्रतिमान —

वर्तमान समय में आतंक के शिकंजे में कसे विश्वसमुदाय की आवश्यकता ऐसे साहित्य की है जिसमें मानव कल्याण का सर्वात्म दर्शन हो । यथार्थवादी लेखकों ने तथा आलोचकों ने युग की इस महती आवश्यकता को अनुभूत किया और यथार्थवाद का एक नवीन प्रतिमान रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद के रूप में सम्मुख आया ।

रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद —

साहित्य में तथा समाज में कुछ भी अचानक नहीं होता अपितु विकास की एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी विचार हमारे सम्मुख आते हैं । रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद भी हमें भारतीय दर्शन में देखने को मिलता है । अध्यात्म तत्व से दूर जाने पर ही मनुष्य के जीवन में कष्ट एवं असंतोष व्याप्त हो जाता है । मनुष्य को एक आदर्श एवं सुखी जीवन का भरोसा दिलाने वाले मार्क्सवाद ने भी अपने समग्र रूप में आध्यात्मिकता की उपेक्षा नहीं की । “कम्युनिस्ट आदर्शों को एक सच्चे मानवीय आध्यात्मिक संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता । सोवियत यूनियन की कम्युनिस्ट पार्टी का सबसे बड़ा लक्ष्य है — व्यक्ति के अनवरत संतुलित विकास द्वारा एक सच्चे समृद्ध आध्यात्मिक संस्कृति की रचना आवश्यक है । पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य को आध्यात्मिक स्तर पर नष्ट करती है।”¹ मार्क्स यह कथन सिद्ध करता है मार्क्स मनुष्य की भौतिक प्रगति नहीं, अपितु उसके आध्यात्मिक विकास का भी पक्षधर था । लेनिन के एक कथन को व्यक्त करते हुए डॉ० अजब सिंह कहते हैं “मनुष्य को एक आदर्श चाहिए धर्म उसे एक आदर्श देता है लेकिन इस आदर्श को मनुष्य स्वभाव के अनुरूप लौकिक होना चाहिए अलौकिक नहीं ।”²

1— डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन पृ० 57

2— डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन पृ० 57

अध्यात्म तत्त्व मनुष्य से परे कोई अलग वस्तु नहीं है अपितु उसके ही अस्तित्व से जुड़ा तत्त्व है । अध्यात्म से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं है । वैज्ञानिक युग को चेतावनी देते हुए एक वैज्ञानिक एल्विन टाफलर ने भविष्यवाणी की “मशीनी युग अब समाप्ति की कगार पर है उसकी छवि अब हमें आकर्षित नहीं कर सकती । न ही यह हमारी संस्कृति से जोड़े रखकर उसके वास्तविक अर्थ को समझा सकती है । शीघ्र ही एक सांस्कृतिक क्रान्ति उठ खड़ी होगी, जो मनुष्य को वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर पर जीने का तरीका सिखाएगी ।”¹ यह सांस्कृतिक क्रान्ति आज के मानव को उसकी जड़ों से जोड़ने का कार्य करेगी जिससे वह एक नवीन रूप में पल्लवित हो सके । भौतिक जगत एवं शक्तियाँ तभी उपयोगी है जब मानव अपने स्वरूप को पहचान कर उसमें विकास के नये अवसरों की तलाश करें ।

“अणु—अणु में ईश्वर का विकास जानकर प्राणीमात्र को अपने समान समझना ही ज्ञान है । इस ज्ञान को व्यवहारिक रूप देना ही जीवन है । इसके विपरीत चलना ही मृत्यु है । मृत्यु से शरीर का नाश होता है, अज्ञान से चेतना नष्ट होती है, विवेक मृतक अवस्था में पड़ा रहता है ।”² विवेक के समाप्त होने पर मनुष्य अपना विकास नहीं कर सकता । विकास के लिये आवश्यक है कि मनुष्य सत्य से भागे नहीं यथार्थ को स्वीकार कर अपने अंदर मानवीय गुणों को जाग्रत करे क्योंकि मानवता की पूर्णता प्राप्त करने पर मनुष्य स्वयंमेव देवत्व का अधिकारी बन जाता है । आज के मनुष्य की आवश्यकता विध्वंसकारी शक्तियाँ नहीं हैं । अपितु रचनात्मक शक्तियाँ हैं । अतः उन्हीं रचनात्मक शक्तियों का विकास करना चाहिए ।

1— डॉ प्रणव पण्डया : अखण्ड ज्योति पृ० 32

2— डॉ० चमनलाल गौतम : विष्णु रहस्य पृ० 37

इन रचनात्मक शक्तियों के विकास के लिये भारतीय दर्शन के मूल तत्वों को समझना आवश्यक हैं । प्राचीन भारतीय संस्कृति के महापुरुषों के जीवन पर एक दृष्टि डालें तो उनके महान बनने का एक ही सूत्र पकड़ में आता है कि उन्होंने अपनी आत्मिक शक्तियों को जाग्रत करने का कार्य सर्वप्रथम किया । ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्त होकर यदि अपने अन्तर्मन में देखा जाय तो ईश्वर का अनुभव होता है । गीता में कहा गया है कि “विवेक ही वह दिव्य शक्ति है जो हमें वासनाओं के भयंकर जाल से मुक्त रखती है और सत्पथ प्रदर्शित करती है आत्मनिरीक्षण द्वारा हमारा विवेक स्पष्ट होता है अपनी दुर्बलताएँ साफ—साफ दृष्टिगोचर होती हैं उत्तेजना और आवेश में प्रायः हम उचित—अनुचित का विवेक नहीं कर पाते । इन्द्रिय संयोग या वासना तृप्ति में जो सुख अनुभव होता है वह क्षणिक है वह पहले अमृत सा प्रतीत होने पर भी परिणाम में प्रत्यक्ष विष का कार्य करता है ।”¹ अतः सांसारिक विघ्नों बाधाओं को दूर करने का एकमात्र उपाय है ईश—ध्यान । इसके लिए आर्ष ग्रन्थों में योग पर बल दिया गया है ।

“वस्तुतः योग से ही रचनात्मक क्रान्तिकारी चेतना के विकास के दरवाजे खुलते हैंआत्म साक्षात्कार सम्पूर्ण योग साधना की चरम परिणति है । समुचित शिक्षा — दर्शन के द्वारा ही काव्य जीवन में मानव को आत्म साक्षात्कार कराने में सक्षम होता है और मानवायु जीवन योग साधना के आत्मसाक्षात्कार के फलस्वरूप मानव जीवन की सार्थकता सिद्ध होती हैयोग का उद्देश्य इस धरती पर अतिमानस रचनात्मक चेतना : आध्यात्मिकता को उतारना है उसे यहाँ स्थापित करना है ।.....मनुष्य की चेतना का जो रूप आज विकसित है, उस चेतना का विस्तार उससे आगे और बहुत आगे भी होना है और इस प्रक्रिया में हमें योग दर्शन से संबल मिल सकता है ।”² वर्तमान साहित्य से यही अपेक्षा है कि मानव के विकास के संबंधित आयामों का

1— गीता (18/ 30,31,32) पृ0 306

2— डॉ अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ0 60

चित्रण करें । मनुष्य को उसके पूर्णत्व की श्रेणी तक पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि साहित्य में कुछ ऐसे पात्रों की सृष्टि की जाय जिन्होंने चेतना को क्रमशः उत्तरोत्तर विकास प्रदान करते हुए मानवत्व से देवत्व तक की यात्रा पूर्ण की हो । डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन मानव के विकास की प्रक्रिया में वैज्ञानिक मानव के पश्चात् धार्मिक मानव का विकास मानते हैं । मनुष्य जब तक तभी होगा, जब वह अपने अंदर आस्था एवं श्रद्धा के भाव जाग्रत करेगा "आज के इस भौतिकवादी कोलाहलमय युग में जब तक मानव आस्था एवं श्रद्धा से अपने को नहीं जोड़ेगा, तब तक जीवन में सुख-शान्ति नहीं मिल सकती । छायावादी नवछायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत ने 'लोकायतन' महाकाव्य में लिखा है :

आओ श्रद्धा के संग बैठे

युग मनुप्रसाद, पथ सहचर

यह प्रेम गोत्रजा जो अब

चलती शिखरों से भू पर

श्रद्धा अब मानवीय होकर शिखरों से भू पर चलने लगी है । अध्यात्म को भौतिकता से संयुक्त करके व्यावहारिक धरातल पर उसे जन-जीवन के लिए कल्याणकारी सिद्ध करता है ।" मनुष्य में श्रद्धा और आस्था का उदय होते ही समर्पण की भावना उसके मन में जागृत हो जाती है फलस्वरूप वह कल्याणकारी जीवन दर्शन की ओर उन्मुख हो जाता है ।

कलाकार या लेखक का कर्तव्य है कि इसी भाव को साहित्य में प्रेरणास्पद रूप में प्रस्तुत करे । किन्तु मुक्तिबोध कलाकृति में रचनाकार के अन्तर्दर्शन एवं बाह्य अनुरोध में सामंजस्य से उत्पन्न नवीन विचार धारा के चित्रण के बारे में कहते हैं कि

“कलाकृति में —कलाकार के कार्य में, यह मूल भावना बहुत सक्रिय होती है । वह किन्हीं विशेष जीवन तत्वों को अभिव्यक्ति महत्व प्रदान करती हुई उन्हें विशेष कोण से विशेष दृष्टिकोण से ही स्थापित करती है यह कोण यह दृष्टि क्या है — वह उस ज्ञानात्मक भावधारा का ही एक रूप है जिसे मैंने दार्शनिक विचारधारा कहा ।”¹ ये विशेषज्ञ जीवन तत्व और कुछ नहीं मानवी मूल्य हैं तथा विशेष दृष्टि यथार्थ को परखने की दृष्टि है कलाकार के लिए आवश्यक है कि वह बाह्य जगत से यथार्थ ग्रहण करके उसे अपने दर्शन व विचारों के साथ सामंजस्य कराते हुए सर्वप्रथम स्वयं को उच्च स्थिति में स्थापित करें जब कवि अथवा लेखक मानस के (चेतना के) ऊर्ध्वगामी पथ पर होगा तो उसकी रचना कल्याणकारी साहित्य सिद्ध होगी क्योंकि “कथा चाहे वह यथार्थवादी कला ही क्यों न हो एक आत्मपरक प्रयास है । यह उसकी विशेषता है बहुत बड़ी विशेषता । कला न केवल एक आत्मपरक प्रयास है वरन् उसकी अपनी एक सापेक्ष स्वतंत्रता है । वह व्यक्ति सापेक्ष है, जीवन सापेक्ष है, वर्ण— सापेक्ष है, युग सापेक्ष है । वह स्वतंत्र भी है । वह स्वतंत्र उस अर्थ में है कि जो भाव बीज कलाकार के अन्तःकरणः में उदित होकर उसके सारे संवेदनों और अनुभावों द्वारा परिपोषित होकर विस्तार ग्रहण करके उसके अन्तर्मन को आच्छादित करते हुए अपनी अभिव्यक्ति—लक्ष्य की ओर विकास यात्रा करता है, तो उस भाव—बीज की विकास यात्रा और उसकी अभिव्यक्ति अपने आप में विभिन्न और अनुकूल विपरीत तत्वों का एक गतिशील किन्तु संगतिबद्ध और सामंजस्यबद्ध रूप बन जाती है ।”² उसी सामंजस्यता पूर्ण विचारों की गहराइयों से जन्मे, जीवन यथार्थ को समझने वाले यथार्थ साहित्य की आवश्यकता है ।

1— गजानन माधव मुक्तिबोध : ‘नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ० 16

2— गजानन माधव मुक्तिबोध : ‘नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ० 19

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पन्न साम्यवादी विचारधारा ने यह यथार्थ साहित्य व समाज को दिया कि मनुष्य अपनी मेहनत और परिश्रम से इस संसार में सुख के सभी साधन जुटा सकता है । किन्तु जब भौतिक साधन सम्पन्न मनुष्य भी अशान्त और अस्थिर चित्त दिखने लगे तब एक नवीन जीवन यथार्थ उभर कर सामने आता है कि अध्यात्म के तत्व को साथ में लेकर चलने से ही इस अशान्ति से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । साहित्य मनुष्य के जीवन के किसी एक अंग के सहारे नहीं चलता अपितु वह समग्र जीवन का यथार्थ चित्रांकन करने का प्रयास करता है । अतः लेखकों का यह कर्तव्य है कि वह मानव जीवन के सभी अंगों को उनकी पूरी यथार्थता के साथ ग्रहण करे फिर चाहे वह भौतिक तत्व हो या अध्यात्म । जिस तत्व की उपेक्षा कर हम कष्ट पा रहे हैं उस आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना को आज पुनः जीवित करने की आवश्यकता है ।

“वस्तुतः आर्ष वाणियों का यह उद्घोष सत्य है कि मानव जीवन का सार आध्यात्मिकता ही है । श्रद्धा ही आध्यात्मिकता के द्वारा जीवन में सब कुछ सुख समृद्धि—शान्ति दे सकती हैभगवान को पाना ही मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य है। यही मानव जीवन की सार्थकता भी है । आज सारा संसार परिवर्तन की प्रक्रिया में है । इस वैचारिक संक्रान्ति के प्रवाह में हम वैश्विक धरातल पर आज जिस चिंतन के द्वारा विश्व मानवता को एक नयी दिशा की ओर मोड़ सकते हैं, वह भारतीय आध्यात्मिकता की महती आवश्यकता है और यही भारतीय आध्यात्मिकता विश्वमानवता के लिये मानक प्रतिमान के रूप में रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवादः आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना के रूप में समकालीन मानव जीवन के लिये एक नवीन मार्ग दर्शन का आदर्श प्रतिमान बन सकता है और इससे निश्चय ही विश्वमानवता को राहत मिल सकती है ।”

रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद में व्यक्त आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना — यथार्थवादी रचनाकार क्रांति का पक्षधर होता है वह क्रांति के माध्यम से समाज में बदलाव की माँग करता है । समाज में व्याप्त कुरूप और धिनौनी वास्तविकता के विरुद्ध यथार्थवादी लेखक आलोचनात्मक तथा रचनात्मक रुख रखता है तथा इनको दूर करने के उपायों की तलाश कर सामान्य मनुष्य को इन उपायों को अपनाने की प्रेरणा देता है जिससे उसका क्रांतिकारी रचनात्मक रुख सामने आता है । समाजवादी यथार्थवाद तथा आलोचनात्मक यथार्थवाद के पुरस्कर्ताओं ने ऐसा ही किया किन्तु वे मानव जीवन को उसकी पूर्णता में प्रस्तुत नहीं कर पाये । इन रचनाकारों के चरित्र ऐसे तो हैं जिन्होंने अपनी समकालीन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपने सामाजिक जीवन स्तर में सुधार किया किन्तु मनुष्य के जीवन का लक्ष्य भौतिक साधनों से सम्पन्न जीवन नहीं है । इस जीवन की प्राप्ति के बाद भी उसको शान्ति व संतोष प्राप्त नहीं होता है । इसलिए यथार्थवाद अपने समग्र रूप में आध्यात्मिक सांस्कृतिक यथार्थ को भी ग्रहण करता है । अपनी प्रगति तथा विकास के क्रम में मनुष्य की सामाजिक चेतना आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना की ओर उन्मुख होती हुई अतिमानस की अवस्था को ग्रहण करती है ।

“एक रचनात्मक पद्धति के रूप में यथार्थवाद का उद्भव मनुष्य के बौद्धिक विकास के एक खास दौर में हुआ जबकि मनुष्य ने संजीदगी से अनुभव करना प्रारंभ किया कि उसके लिये सामाजिक विकास की प्रकृति तथा दिशाओं का संज्ञान आवश्यक है कि मानवीय क्रियाएं तथा भावनाएँ अंधी वासना अथवा किन्हीं दैवी इशारों पर संचालित न होकर यथार्थ अथवा भौतिक कारणों पर नियमित होती है ।”¹ विकास की यही प्रक्रिया मनुष्य की चेतना को अध्यात्म व संस्कृति के धरातल पर पहुँचती है ।

“आज सारा संसार आध्यात्मिक क्रान्ति के लिये भौतिक वादी ऐहिक मानवीय चेतना को बदलने की जरूरत महसूस कर रहा है । हम आज इस संसार में शान्ति एवं सुख समृद्धि को रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवादी चेतना — आध्यात्मिक चेतना के द्वारा ही ला सकते हैं ।”¹ भौतिकवाद मनुष्य को क्षणिक सुख तो प्रदान कर सकता है किन्तु मानव जीवन का चरम लक्ष्य है आनन्द की प्राप्ति उसकी पूर्ति वह नहीं करा पाता है । इसके लिये आवश्यक है कि मनुष्य अपनी चेतना को जाग्रत करे तथा उसमें जो असीम संभावनाएं छिपी हुई है । उनका प्राकट्य करें । भोगवादी साधनों में लिप्त मनुष्य की चेतना उसके दुख का कारण ही बन सकती है । ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा ने कहा था — “आज का बुद्धिवादी मनुष्य चेतना में विश्वास अवश्य करता है परन्तु उसकी चेतना विषयग्रस्त इन्द्रियों की चेतना है चिन्मय इन्द्रियों की चेतना नहीं इसीलिए वह दुखी है प्राकृत मानव चेतना तो दिव्य चेतना का प्रतिबिम्ब हैं । सारा ब्रह्माण्ड उसी दिव्य चेतना से संचालित है इसलिए दिव्य चेतना के प्रति जो प्रेम होगा वह प्रकृत न होकर चिन्मय होगा । भगवत् प्रेम ही विश्व प्रेम है और वही परमानन्द है सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो भगवत् प्रेम ही वास्तविक प्रेम है ।”² अतः मनुष्य को अपनी चेतना की दिव्यता का साक्षात्कार करना चाहिए । डॉ० अजब सिंह भी मानते हैं कि यदि मनुष्य अपनी चेतना की आध्यात्मिक व बौद्धिक शक्ति में विश्वास रखता है तो वह विश्वमानवतावाद का वाहक बन सकता है ।

“सामान्य जनों के अपार आध्यात्मिक और बौद्धिक क्षमता में यदि हमारा विश्वास है, हमारी आस्था है, तो हम रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवादी चेतना जो

1— डॉ० अजब सिंह : चेतना शिक्षा एवं संस्कृति पृ० 67.

2— डॉ० अजब सिंह : चेतना शिक्षा एवं संस्कृति पृ० 82

सांस्कृतिक आध्यात्मिक चेतना से संपृक्त होकर विश्वमानवता की कल्याणी धारा को प्रवाहित करने में संबल प्रदान कर सकती है, क्योंकि खंडित वैचारिकता विश्व मानवता का संदेश देने में असमर्थ होती है ।”

तृतीय अध्याय

विज्ञान एवं मानववाद :-

- (क) विज्ञान एवं मानववाद
- (ख) वैज्ञानिक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में मानव नियति
- (ग) मानववाद एवं समाजवाद
- (घ) आधुनिक एवं अद्यतन समकालीन संदर्भों में मानववाद के विविध चरण—
 - 1. मानववाद
 - 2. नवमानववाद
 - 3. अतिमानववाद
- (ङ)
 - 1. वैज्ञानिक मानव
 - 2. आध्यात्मिक मानव
 - 3. दार्शनिक मानव

अपने व्यापक अर्थ में यथार्थवाद मानववाद को समाहित किये हुए हैं। वास्तव में मानववाद ही अपने सम्पूर्ण एवं वास्तविक अर्थ में यथार्थवाद है। विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के साथ-साथ मानववाद भी निरन्तर विकसित हुआ है।

विज्ञान एवं मानववाद :-

सृष्टि के प्रारंभ से ही मानव में प्रत्येक वस्तु को जानने की अभिलाषा एवं जिज्ञासा रही है। अपनी इसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप मनुष्य ने विज्ञान की उत्पत्ति की। मनुष्य के जीवन को अधिक उपयोगी एवं सुगम बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन विज्ञान बन गया। विज्ञान ने उपलब्ध तथ्यों के प्रकाश में सत्य की खोज की किन्तु नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण प्राचीन सिद्धान्त परिशोधित होते गए। किन्तु सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक “विज्ञान ने जितनी भी प्रगति की है। मानव को केन्द्र में रखकर की है विज्ञान एवं वैज्ञानिकों की चिन्तन धारा के केन्द्र में मानव ही विद्यमान है। विज्ञान की प्रगति ने मानव के चिन्तन क्रम में, जीवन की व्यवहार प्रणाली में, चेतना के गतिमान स्तरों में समाजों की व्यवस्था में राष्ट्रों की संचालित शक्ति में और विश्व भर की सांस्कृतिक गतिविधियों में एक परिवर्तन ला दिया। परिणामस्वरूप मानवतावादी विचारधारा को स्वीकृति मिली।”¹

विज्ञान ने मनुष्य के समक्ष प्रत्येक वस्तु की प्रामाणिकता परखने का गुण दिया। प्राचीन परम्पराएँ, विश्वास, एवं आस्थाएँ, वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रकाश में कमजोर पड़ते चले गए। मनुष्य अपने भौतिक जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गया तथा “धर्म एक निरर्थक वाग्जाल के द्वारा मनुष्य को फँसाने का एक साधन है।”² यह भावना बलवती होती गई।

1. सम्पादक शिवदान सिंह चौहान : आलोचना पृ० 25, अप्रैल 1966 ।

2. डॉ० सच्चिदानंद राय : हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना पृ० 90,

विज्ञान मनुष्य के भौतिक जीवन को आनन्द एवं सुख से परिपूर्ण करता है किन्तु दार्शनिकों एवं विद्वानों का मानना है कि अतिशय वैज्ञानिकता संसार के अस्तित्व के लिये घातक है ।

“यह ठीक है कि विज्ञान आगे बढ़ता हुआ प्रतीत होता है लेकिन वह मनुष्य को सुख या स्वातंत्र्य दे सकेगा इसका कोई संकेत नहीं मिलता । संभावना यह है कि हमारे वैज्ञानिक व्यवस्थापकों के हाथों नष्ट होने से यदि संसार बच गया तो भी इसे वे एक ऐसा स्थिर और भयानक स्वरूप तो अवश्य ही दे देंगे ।”¹ इसका कारण यह है कि वैज्ञानिकता को अपनाने के साथ मानव ने आध्यात्मिकता को विस्मृत कर दिया । 16 वीं सदी के बाद विज्ञान के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व प्रगति एवं विकास हुआ उसने मानव के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति ला दी । मनुष्य के अपने अस्तित्व एवं इस विश्व की संरचना को समझने में विज्ञान ने अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है । परिणामस्वरूप केवल साधारण मनुष्य ही नहीं अपितु “दार्शनिक एवं विद्वान भी विज्ञान के प्रामाणिकता के गुण के कारण उसकी ओर आकर्षित हुए ।”² उन्होंने इस वास्तविकता को स्वीकारा कि विज्ञान की उपेक्षा करके वे अपनी दृष्टि को जनता के समक्ष प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं । अतः उन्होंने अपनी दृष्टि को वैज्ञानिकता प्रदान की ।

“मध्यकालीन समाज में ईश्वरीय सत्ता और प्राकृतिक शक्तियों को इतना अधिक महत्व दिया जाता था कि मनुष्य की स्थिति नितान्त तुच्छ और गौण ही बनी रहती थी ।”³ विज्ञान ने इन धार्मिक विचारों एवं परम्पराओं के बन्धन से मनुष्य को मुक्त किया तथा उसे प्रकृति के अंग के रूप में स्वीकार किया तथा मनुष्य के ऊपर किसी अति प्राकृतिक तथा

-
1. संपादक बालकृष्ण राव : माध्यम पृ० 35 अगस्त 1967
 2. (विस्तार के लिये) वी.एस. नरवर्णे, आधुनिक भारतीय चिन्तन पृ० 16
 3. संपादक शिवदान सिंह चौहान : आलोचना पृ० 25 अप्रैल 1966

धार्मिक सत्ता का नियंत्रण नहीं माना फलस्वरूप अपने भाग्य का नियामक स्वयं मनुष्य को स्वीकार किया गया । मनुष्य के सर्वोच्च होने के विचार को सर्वाधिक महत्व वैज्ञानिक युग के प्रभाव से मिला ।

“मनुष्यों में सृजनात्मक क्रिया की स्वतंत्र शक्ति है और वही अपने भाग्य का विधाता है ।”¹ मानववाद इसकी उद्घोषणा करता है । मूलतः वैज्ञानिक निष्पत्तियों पर आधारित होने के कारण यह प्रामाणिक है इसी कारण व्यापक पैमाने पर इसे दार्शनिकों, साहित्यकारों, समाजशास्त्रियों, विचारकों तथा कलाकारों द्वारा अपनाया गया । यह मनुष्यों में अन्धविश्वास के स्थान पर विश्वास जाग्रत करता है तथा इस संसार के प्राणियों के सुख एवं विकास के लिये नवीन मान्यताओं एवं जीवनमूल्यों की स्थापना का प्रयास करता है ।

मानववाद धर्म की प्राचीन एवं रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रमाण में एक नवीन स्वरूप में व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित करता है । मानववाद को स्थापित करने में विज्ञान की उपलब्धियों का विशेष योगदान है । डार्विन का विकासवाद हो या, फ्रायड का मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान हो या रसायन विज्ञान इन सभी ने मानव के सम्पूर्ण स्वरूप को समझने एवं उसके विकसित होने की दिशा में एक योग दिया है । किन्तु अतिशय भौतिकता मनुष्य के जीवन का लक्ष्य नहीं है । “आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता एक ऐसा नैतिक दर्शन है जिसके पीछे किसी अतिमानव की सत्ता अथवा इस विश्व से परे की सीमा न हो उसे अध्यात्म, परलोक और सापेक्षवाद की भूल भुलैया से बचाने के लिये सीधा सादा मानवी रूप दिया जाना चाहिए ।”² जो मानववाद प्रदान करता है । अमृत लाल नागर के अनुसार “यह मानव धर्म विज्ञान के ठोस धरातल पर पनप कर विश्व-संस्कृति के रूप में अब प्रतिष्ठित

1. संपादक रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति हेमन्त 1890 तक
2. संपादक मोहन सिंह सेंगर : नया समाज पृ०-159

होकर ही रहेगा । आज के युग की यही मंशा है कि एक ऐसा दर्शन उभर कर सामने आये जो पूर्णतः प्रामाणिक एवं देश काल सम्बन्धी सीमाओं से परे हो ।

संसार के श्रेष्ठ मनीषियों ने घोषणा की है “मनुष्य एक है और इसीलिये मूल मानव धर्म भी एक ही है । यह इस युग की आवश्यकता नहीं है किन्तु युग का अनुभूत सत्य है ।”¹ इस सत्य की स्थापना मानववाद के व्यापक प्रसार के माध्यम से ही सम्भव है ।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में मानवनियति—

वैज्ञानिक अविष्कारों ने मानव के सुख के लिये जिन साधनों को निर्मित किया मनुष्य ने अपने भौतिक जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये उनका अधिकाधिक उपयोग किया । मानव पर धर्म का अंकुश कम होने के कारण नैतिकता, दयालुता, ईमानदारी, समानता जैसे गुण समाप्त प्राय होने लगे हैं । नवल किशोर के अनुसार “पश्चिम में मानवीय बुद्धि को धर्म बन्धनों से युक्त करने का कार्य सम्पन्न कर यह पुनर्जागरणकालीन मानव वाद शक्तिहीन हो गया विज्ञान के द्रुत विकास का ऐसा व्यावसायिक उपयोग हुआ कि मानवीय हित उपेक्षित हो गये । औद्योगिक क्रान्ति से जिस व्यावसायिकता की प्रतिष्ठा हुई उसने समस्त श्रेष्ठ मानवीय मर्यादाओं को समाप्त कर दिया ।”² वैज्ञानिक यह मानते हैं कि प्रत्येक विकास एवं परिवर्तन के पीछे कुछ निश्चित कारण होते हैं इस सृष्टि में प्रत्येक घटना कारण — कार्य श्रृंखला से बँधी हुई है । मनुष्य की उत्पत्ति एवं विकास कोई दैवीय संयोग नहीं है अपितु अन्य जीवधारियों का ही तरह मनुष्य का भी विकास क्रमशः हुआ है ।

-
1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कुटज पृ0103
 2. नवलकिशोर : मानववाद और साहित्य पृ0 13

सत्रहवीं अठारहवीं सदी में होने वाले वैज्ञानिक अविष्कारों ने मानव नियति को बदलने में महत्वपूर्ण योग दिया । वैज्ञानिकों का मानना है कि सृष्टि में कोई भी घटना या क्रिया संयोगवश नहीं होती बल्कि प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन के पीछे कारण कार्य श्रृंखला होती है और इस श्रृंखला के उचित अध्ययन के द्वारा मानव भविष्य की संभावना के विषय में पूर्व कथन कर सकता है। न्यूटन की मान्यता है कि सृष्टि यन्त्रों के समान है एवं गणित के जिन नियमों से हम मनुष्य कृत यन्त्रों को समझते हैं उन्हीं नियमों से सृष्टि की सारी प्रक्रियाएँ समझी जा सकती है ।¹ सृष्टि के सभी परिवर्तन एक निश्चित घटनाक्रम के अनुसार निर्देशित होते रहते हैं । विज्ञान इन्हीं कारणों की खोज करता है । विज्ञान की उपलब्धियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अन्य जीवनधारियों की तरह मनुष्य का भी विकास हुआ है किन्तु मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न रखने का कार्य मानव चेतना करती है मनुष्य ने अपनी चेतना एवं ज्ञान के आधार पर स्वयं को विकसित एवं श्रेष्ठ बनाया है । सृष्टि की सारी प्रक्रियाओं को विज्ञान के नियमों के अन्तर्गत समझा जा सकता है किन्तु परिवर्तन का कारण क्या है इस सम्बन्ध में विज्ञान भी मौन है ।

“परमाणुविषयक अनुसंधानों से यह तो ज्ञात हो गया कि द्रव्य का स्वरूप क्या है तथा यह किस प्रकार गति करता है किन्तु इस गति का कारण क्या है परमाणु विघटित क्यों होता है यही शेष उत्तर मनुष्य को अध्यात्म में प्राप्त होता है ।”² भौतिक जगत में व्याप्त वस्तुओं के स्वरूप के विषय में विज्ञान ठोस प्रमाण प्रस्तुत करता है तथा मनुष्य के विकास के विषय में उनके द्वारा की गई उद्घोषणायें स्वयं वैज्ञानिकों को असत्य प्रतीत होने लगी हैं ।

-
1. रामधारी सिंह दिनकर : धर्म नैतिकता और विज्ञान पृ० 42
 2. रामधारी सिंह दिनकर : धर्म नैतिकता और विज्ञान पृ० 54

“मनुष्य के अन्दर व्याप्त स्वतन्त्र संकल्प शक्ति ने नियतिवाद की प्रामाणिकता को प्रभावित किया है । वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं कि नियतिवाद का सिद्धान्त पूर्णतः प्रामाणिक नहीं है तथा धर्म की संभावनाओं में कुछ वास्तविकता है विज्ञान की मान्यता है कि आकाश क्षण-प्रतिक्षण फैलता जा रहा है किन्तु यह कहाँ फैलता है इसका वैज्ञानिकों के पास कोई प्रामाणिक उत्तर नहीं है, भारत में यूनिवर्स का पर्याय ब्रह्माण्ड कहा जाता है जिसमें ब्रह्म धातु का अर्थ है बढ़ना सम्भव भारत के ऋषि मुनियों को ब्रह्माण्ड के निरन्तर बढ़ते रहने का ज्ञान था ।” सभी वैज्ञानिक सिद्धान्त विकास की प्रक्रिया को तो स्पष्ट करते हैं किन्तु उसके भविष्य के विषय में कोई ठोस अनुमान नहीं कर पाते हैं।

यह सत्य है कि “जड़ पदार्थ से जीवन उत्पन्न होने के बाद विभिन्न प्रकार के पशुओं और जीव जन्तुओं के विकास की व्याख्या की जा सकती है।”² इसी क्रम में मनुष्य भी आता है। मनुष्य के अतीत की विकास प्रक्रिया के अध्ययन के द्वारा उसके भविष्य के विषय में पूर्वानुमान किया जा सकता है अतः मानव नियति निर्धारित है। किन्तु मनुष्य के अन्दर एक चेतना शक्ति विद्यमान है जो उसे यंत्र से भिन्न समझती हैं विज्ञान के नियम मनुष्य पर आंशिक रूप से ही लागू होते हैं।

“जब से इलेक्ट्रॉन की स्वेच्छाचारिता ने नियतिवाद को चुनौती दी तब से यह मानने का रास्ता खुल गया है कि केवल इलेक्ट्रॉन ही नहीं मनुष्य भी नियतिवाद का अपवाद है वह अपना प्रत्येक कार्य परिस्थितियों से चालित होकर नहीं करता बहुत बार निर्णय उसके अपने हाथ में होता है।”³

-
- | | | |
|----|----------------------|--------------------------------|
| 1. | रामधारी सिंह दिनकर : | धर्म नैतिकता और विज्ञान पृ० 61 |
| 2. | वी.एम. ताराकुण्डे : | नवमानववाद पृष्ठ 73 |
| 3. | रामधारी सिंह दिनकर : | धर्म नैतिकता और विज्ञान पृ० 70 |

मनुष्य के इसी निश्चय, दृढ़ संकल्प एवं लगन के परिणाम स्वरूप होने वाले आविष्कारों ने मानव के जीवन को एक नवीन रूप प्रदान किया है। उन्नीसवीं सदी में होने वाले आविष्कारों ने औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप मनुष्य के सामाजिक एवं वैचारिक जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए। वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रकाश में ही दार्शनिकों एवं विचारकों ने मानववादी विचारधारा का सूत्रपात किया। इस विचारधारा में मानव की इच्छा शक्ति एवं विवेक को विशेष महत्व दिया गया इसी के निरन्तर विकास से मनुष्य अतिमानव की श्रेणी तक पहुँचता है।

मानववाद ने मानव के व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए समाजवादी मूल्यों की स्थापना पर बल दिया।

मानववाद एवं समाजवाद -

मानववाद एक ऐसा दार्शनिक दृष्टिकोण है जो सम्पूर्ण मानवता के हित एवं कल्याण की बात करता है। "मानववाद सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का दर्शन प्रस्तुत करता है, मानववाद का अभिप्राय ही है मानव सम्बन्धी वाद-मानव हितों की वकालत करने वाली विचारधारा। मानववाद किसी देश या जाति के प्रति भेदभाव या दुर्भावना को नहीं बर्दाश्त करता वह विश्व-नागरिकता, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और मनुष्य की अनिवार्य बन्धुता का समर्थक है।" इस रूप में यह समाजवाद का पक्ष ग्रहण करता है। समाजवाद का उद्देश्य भी मानव जाति का कल्याण है।

वैज्ञानिक समाज की विचारधारा के जन्मदाता कार्ल मार्क्स का विचार है जब पूँजीवाद अपने चरम पर पहुँच जाता है तो मजदूर के प्रतिक्रिया स्वरूप पूँजीपति और मजदूर में संघर्ष

होता है जिसमें सर्वहारा वर्ग की विजय होती है तथा समाजवाद की स्थापना होती है।¹ जिसका लक्ष्य वर्गरहित समाज की स्थापना होती है। इस वर्गरहित समाज की स्थापना के पश्चात् सामाजिक विकास एवं परिवर्तन की क्रांतिकारी प्रक्रिया अचानक रुक नहीं जाती बल्कि यह मनुष्य के आत्मिक विकास की ओर उन्मुख हो जाती है। वास्तव में मार्क्सवादी दर्शन का मूल आधार उसका मानववादी दृष्टिकोण है। मार्क्सवादी दर्शन का केन्द्र बिन्दु मानव है यह मानव के समग्र विकास का पक्षधर है। यह प्रत्येक ऐसी व्यवस्था का विरोध करता है जिसमें मनुष्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक मूल्यों का पतन हो रहा हो। मार्क्स का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य मात्र की जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतन्त्रता था यह मानववाद के मूल आधार स्वतन्त्रता, समानता एवं विश्व बन्धुत्व का समर्थक है। मार्क्स का उद्देश्य एक ऐसे मानवीय समाज की स्थापना है जिसमें हर व्यक्ति की स्वतन्त्रता सबकी स्वतन्त्रता की शर्त बन जाती है।² जब मनुष्य को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी तथा वह अपने विवेक एवं ज्ञान के आधार पर अपने भौतिक अस्तित्व को अधिकाधिक सुखद बनाने का प्रयास करेगा तभी वह एक आदर्श समाज की स्थापना में सफल होगा।

मार्क्स समाजवादी मानववाद की स्थापना के प्रवर्तक थे। मार्क्स का मानना है जब पूँजीपतियों का शोषण व अत्याचार सर्वहारा एवं मजदूर वर्ग पर बढ़ जाता है तो उनमें विद्रोह के अंकुर फूटने लगते हैं तथा वर्ग संघर्ष आरम्भ होता है जिसकी परिणति समाजवाद की स्थापना में होती है।

“लेनिन ने लिखा था कि समाजवाद मानवता के इतिहास में पहली प्रणाली है जिसने लाखों, करोड़ों मेहनतकश लोगों को अपनी योग्यता और प्रतिभा का जो जनता के पास अपार

-
1. डॉ. शोभा शंकर : आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन पृ0132
 2. नवल किशोर : मानववाद और साहित्य पृ081

मात्रा में मौजूद थी पर जहाँ पूँजीवाद दबोचे हुए था और जिसे उसने पैरों तले रौंद दिया था परिचय देने का मौका मिला।¹

समाजवाद एवं मानववाद दोनों एक दूसरे को सहयोग प्रदान करते हैं। समाजवाद व्यक्तियों को प्रत्येक प्रकार की उन्नति प्राप्ति एवं विकास के अवसर प्रदान करता है। तथा मानववाद व्यक्ति मानव के विकास के माध्यम से समविष्ट मानव के कल्याण की बात करता है। मनुष्य के अन्दर जो अपार मात्रा में क्षमतायें एवं योग्यतायें समाहित हैं समाजवाद उनके उपयोग का अवसर प्रदान करता है।

“प्रत्येक को अपने विकास और उन्नति तथा जीवन निर्वाह के उपायों की प्राप्ति के लिए समान अवसर हो और प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल पाने का भी समान अवसर हो और समाज के शासन और व्यवस्था में भाग लेकर आत्मनिर्णय का समान अधिकार हो।”² मनुष्य अपने भाग्य का नियामक स्वयं हो। “इस संसार में अपने जीवन को अधिकाधिक सुखी बनाने के लिए मनुष्य को अपने ज्ञान व विवेक का सहारा लेना चाहिए। मानववादी कलादृष्टि जीवन की गहराइयों और मनुष्य की प्रकृतिगत विशेषताओं के उद्घाटन को बहुमान प्रदान करती है, पर उनकी आड़ में क्रूरता और पाशविकता के चित्रण के व्यावसायिक उपयोग की आलोचना करती हैं मानववाद मनुष्य की पाशविकता के चित्रण को मानवीय अस्तित्व के लिये एक भयावहता के रूप में ही स्वीकार्य मानता है। मानववाद चूँकि व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व को सामाजिक विसंगति का परिणाम मानता है, कला में भी व्यक्ति और समाज के अनिवार्य विरोधाभाव के दृष्टिकोण को अस्वीकार करता है। मानववाद हर चीज का औचित्य विधायक मनुष्य को ही मानता है।”³

-
1. आई.बर्खिन : समाजवाद के निर्माण की कहानी पृ० 37
 2. डॉ० सरोज गुप्ता : यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० 51
 3. डॉ० रामविलास शर्मा : मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य पृ० 136

मानववाद प्रत्येक प्रकार के शोषण एवं अत्याचार का विरोध करता है । 19वीं सदी में विज्ञान के क्षेत्र में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों ने आस्थाओं को ढिगाने के साथ-साथ सांस्कृतिक उपलब्धियों में भी असंतुलन स्थापित कर दिया इस वैज्ञानिक युग में मानववादी, एवं समाजवादी साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से प्राचीन परम्पराओं के अच्छे गुणों के साथ तर्क एवं प्रयोजन के साथ नवीन मूल्यों की स्थापना की । इस नवीन सृजन के लिये प्रेरणा का कार्य किया मार्क्सवाद ने "मार्क्स संसार को बदलने की बात कहते हैं, मानव जीवन को परिवर्तित करने की बात कहते हैं वह आत्मा को भौतिक जीवन के बन्धनों से मुक्त करके परमात्मा में लीन होने को नहीं कहते वह इस भौतिक जगत में ही वर्तमान मानव – जीवन को परिवर्तित करने की बात कहते हैं ।"¹ मनुष्य में परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की सामर्थ्य है अतः किसी भी प्रकार के दासत्व एवं परतन्त्रता का मानववाद विरोध करता है ।

हिन्दी साहित्य में अत्यंत प्राचीन काल से ही इस मानववादी समाजवादी विचार धारा का समर्थन हुआ है । भक्तिकालीन संत कवियों का सम्पूर्ण साहित्य मानववादी मूल्यों के आधार पर समाजवाद की स्थापना का स्तुत्य प्रयास रहा है । महात्मा कबीर से लेकर तुलसीदास तक सभी संत कवियों ने साधारण मनुष्यों के जीवन को गहराई से देखा तथा उनके साथ सहानुभूति रखते हुये एक आदर्श समाज की स्थापना के लिये प्रेरणा प्रदान की । वास्तव में समाजवादी व्यवस्था के आधार मानववादी मूल्य एवं मान्यतायें होती हैं । समाजवाद के निर्माण में मानववादी मूल्यों का विशेष योगदान है । मानववाद ही अपने सामूहिक रूप में समाजवाद है ।

1. डॉ० अजब सिंह : स्वच्छंदतावाद : छायावाद पृ० 21

वर्तमान समय में समाज जिस आर्थिक असमानता और पीड़ा-संत्रास के दौर से गुजर रहा है । ऐसे समय में मानववादी मूल्यों की स्थापना ही इस स्थिति से मुक्ति का एकमात्र उपाय है इसीलिये प्रसाद, निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामधारी सिंह दिनकर, श्री केदारनाथ अग्रवाल इत्यादि कवियों ने तथा प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र, डॉ० भगवतीशरण मिश्र तथा श्री शिव प्रसाद सिंह जैसे गद्यकारों ने अपने साहित्य में मानववादी मूल्यों से पोषित समाजवादी स्थापना पर बल दिया है ।

“समाजवाद की स्थापना के साथ ही व्यक्ति के स्वातंत्र्य का दौर शुरू हुआ समाजवाद जनता के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की बात करता है इस रूप में यह मानव के व्यक्तित्व के समस्त गुणों के विकास के लिये उचित वातावरण निर्मित करने का पक्षधर है । समाजवाद का अर्थ केवल ‘उत्पादन, वितरण एवं विनियम के साधनों का राष्ट्रीयकरण नहीं है । अपितु स्वातंत्र्य, समानता एवं बन्धुत्व जैसे मूल्यों की स्थापना भी समाजवाद है।”

एक और मानववादी मान्यतायें समाजवाद के प्रेरणा स्रोत हैं वहीं दूसरी ओर समाजवाद मानववाद को पूर्ण अवसिति होने के लिये उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है ।

मानववाद—

यह एक ऐसा विचारधारा का समर्थक है जिसमें मनुष्य ही सभी प्रकार के मूल्यों एवं मान्यताओं की कसौटी है “मानव की गरिमा की पुनर्स्थापना मानवीय प्रतिष्ठा एवं मानवीय हित के सर्वतोमुखी विकास तथा समाजिक जीवन हेतु अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की

धारणा के आधार पर विकसित विचारधारा को मानववाद का नाम दिया गया है।¹ मध्यकाल में धार्मिक मान्यताओं की अतिशयता के कारण मनुष्य को अत्यंत तुच्छ व हीन प्राणी माना जाता था तथा उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य किसी अलौकिक सत्ता की प्राप्ति का प्रयत्न करना भले ही इस भौतिक जीवन में इसके लिये उसे कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पड़ें। समाज में विभिन्न मनुष्यों की विभिन्न स्थितियों के लिये पूर्व जन्मों के कर्म को उत्तरदायी माना जाता था। मानव अपने ऊपर होने वाले प्रत्येक शोषण एवं अत्याचार को अपनी नियति मानकर स्वीकार करता था। इस सामाजिक बुराई एवं अत्याचार के प्रतिक्रिया स्वरूप 14वीं से 16वीं शताब्दी के बीच आधुनिक मानववाद का उद्भव हुआ इसके प्रमुख संस्थापकों में दाँते, पैट्रार्क, ब्रूनों, मातेन, कापर्निकस आदि विद्वान रहे हैं।

कॉलियर्स एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार “मानववाद एक ओर तो लम्बे समय से प्रचलित अंधविश्वासी दृष्टिकोण एवं अनुपयोगी सत्तावादी बौद्धिक तरीके को भंग करता है दूसरी ओर ग्रीक लैटिन के लेखकों के लिये एक प्रेरणा एवं निर्देशन के स्रोत के रूप में एक संक्रांति काल है।”²

किसी भी विचार को या क्रिया को केवल इसलिये स्वीकार कर लिया जाये क्योंकि वे परम्परा से होते चले आ रहे हैं ऐसी विचारधारा का मानववाद विरोध करता है यह प्रत्येक क्रिया एवं विचार, विज्ञान एवं तर्क के प्रकाश में देखने, परखने के पश्चात ही उसे ग्रहण करने पर बल देता है।

1. संपादक हरिकृष्ण रावत : समाजशास्त्र कोष पृष्ठ 72

2. "It represented on one hand a break with a long prevailing superstitious attitude and an authoritartion sterile intellectual method and on the other hand, a turning to Greek and Latin writers as a source of inspiration and guidance."

Editor : Bernond John stom Collier's Encyclopedia, Vol.12 (1987) Page 349.

“मानववाद एक साहित्यिक संस्कृति का द्योतक है और एक ऐसी चिन्तन प्रणाली का बोध कराता है जिसमें मानवी हितों तथा व्यापारों ओर मानव मस्तिष्क को अतिमानवीय तत्वों का निषेध कर महत्व दिया जाता है इसमें व्यक्ति तथा आलोचनात्मक मनोभंगी को प्राधान्य मिलता है और धार्मिक तथा आध्यात्मिक अनुषंग निरादृत बन जाते हैं लौकिकता सर्वतिशायी महत्व ग्रहण कर लेती है ।¹ यह मानता है कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है मनुष्य को अपने जीवन को अधिकाधिक सुखी बनाने का पूरा अधिकार है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकास के लिये उसे पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये ।

“मानववादी यह मानते हैं कि मनुष्य में जो पाशविक है और जो दिव्य है उन दोनों के मध्य में कुछ ऐसा है जो पूर्णतः मानवीय है और उसी को नैतिकता, कला सौन्दर्य बोध तथा अन्य आचार विचार का प्रतिमान मानना चाहिये ।”² यह मानव को उसके सभी गुण-दोषों के साथ ग्रहण करता है । मनुष्य के व्यवहार में व्याप्त कमियों के कारण वह उसकी उपेक्षा नहीं करता । मनुष्य की दुर्बलताओं का भी यह सम्मान करता है तथा मानता है कि मनुष्य अपने ज्ञान एवं विवेक के आधार पर अपने निजी सन्तोष एवं समाज कल्याण के लिये कर्म करने पर ही श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करता है । “पारलौकिक मूल्यों के स्थान पर इहलौकिक लक्ष्यों को प्रमुखता देने वाली इस विचारधारा का नाम ही मानववाद है ।”³ वर्तमान युग में विज्ञान की द्रुत गति से होने वाली प्रगति ने मनुष्य के हाथ में अनेक ऐसे शक्ति स्रोतों को थमा दिया है जिनसे अपने जीवन के विभिन्न अभावों को दूर करने के लिये मनुष्य प्रयासरत है । आज के मनुष्य के जीवन का श्रेष्ठतम लक्ष्य अपने भौतिक जीवन को

-
1. संपादक विनोद चन्द्र पाण्डेय : अतएव (पृ07) नवम्बर 96
 2. संपादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोष भाग-1 1985
 3. नवल किशोर : मानववाद और साहित्य पृ0 12

अधिकाधिक सुखी कर लेना है । और इस सुख की प्राप्ति के लिये उसे इस जगत से पलायन करने की आवश्यकता नहीं है । बल्कि आवश्यकता इस बात की है अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति को त्यागकर मानव समाज के कल्याण का विचार करें ।

“फ्रांसीसी दार्शनिक जॉक मारिता के अनुसार “मानववाद मनुष्य को सत्यरूप में मानव बनाने के लिये तथैव लौकिक संसार और इतिहास में अधिकाधिक समृद्ध बनाने के लिये उसे सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त करने का प्रयत्न करता है ।” यह मनुष्य के अंदर एक ऐसी चेतना जाग्रत करने का पक्षधर है जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक सत्य को पहचान सके पुनर्जागरणकाल के दौर में इस विचार को पर्याप्त बल मिला ।

महाभारत के काल में ही वेदव्यास ने घोषणा करते हुए कहा था कि “मैं तुमसे एक रहस्य की बात कहता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं है ।” इसी सिद्धान्त पर आज का मानववाद विकसित हुआ है । यह स्पष्ट है कि मानववाद की जड़ें बहुत गहरे अतीत में देखने पर भारतीय प्राचीन साहित्य में हमें इसका प्रारम्भिक स्वरूप दिखाई देता है । उपनिषदों में जहाँ मनुष्य के निर्माण का प्रसंग वर्णित है वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि ‘मनुष्य देह तो देवों के लिये भी दुर्लभ हैं । भारतीय ऋषि मनुष्य की गरिमा एवं महत्व को समझते हैं । अतः उन्होंने मनुष्य को परमात्मा का ही एक अंश स्वीकार किया ।

“आर्य काल से ही भारतीय चेतना स्पंदनशील रही है और वह काल प्रवाह में आध्यात्मिकता एवं आयुष्मिकता की परिधि को अतिक्रान्त कर लौकिक प्रेयस की भूमियों से

विचरण करती धार्मिक रूढ़ियों को तोड़ती मानववाद के अंचल में मानव-मर्यादा की स्थापना करती उसी मर्यादा के परिपोष में अद्वैत के निष्क्रिय ब्रह्म को मनुष्य रूप में धरती पर उतारती तथा उन्हें मानव सुलभ सुख दुखों को उपभोग कराती हुई अंततः राजनैतिक यथार्थ से आँखें मिलाती हुई भारतीय जाति को अनेक चढ़ावों उतारों में जीवित रखती हुई आधुनिक राष्ट्र की गरिमा से समन्वित करती रही है।¹ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भक्तिकालीन रामकाव्य परम्परा एवं कृष्ण काव्य परम्परा में प्रतिपादित होता है। तुलसी के राम स्वयं ब्रह्म होते हुए भी मानवीय दुर्बलताओं तथा आशंकाओं से ग्रसित है। तुलसी ने राम की भक्ति मानववादी स्वरूप में ही की है।

यह मानववादी चेतना जो प्राचीन साहित्य में संयुक्त रूप में दृष्टिगोचर होती है मध्यकाल तक समाप्त प्रायः हो गयी थी। भक्तिकालीन मानववाद का स्वरूप कुछ भिन्न था यह धार्मिक अधिक था कुछ रचनाओं को छोड़कर अन्य सभी में उस परम सत्ता के सम्मुख मनुष्य को अत्यन्त निरीह एवं असहाय प्रदर्शित किया गया। इसीलिये आधुनिक काल में “मानववाद प्राचीनता के प्रत्यावर्तन के रूप में उस विकास और शक्ति के स्रोत को प्राप्त करना चाहता है जो प्राचीनकाल में तो विद्यमान था पर मध्यकाल में अदृश्य हो गया था।”²

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में रचित साहित्य में हमें मानव की पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयास स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ रहे हैं। छायावादी काव्य साहित्य में कामायनी, युगवाणी, युगपथ इत्यादि काव्य संग्रह मानववादी मूल्यों से ओतप्रोत हैं। यह मानववाद अपने अंदर समस्त मानवीय मूल्यों जैसे मानवता, देश, प्रेम, विश्वबन्धुत्व, सर्वधर्म समभाव एवं विश्वशान्ति को संगठित किये हैं। यद्यपि “छायावादी कवियों ने आध्यात्मिकता को मुख्य संबल माना पर उसके साथ भौतिकता का सुंदर मेल बिठाना भी वे न भूले इस समन्वय के परिणामस्वरूप

1. सम्पादक विनोद चन्द्र पाण्डेय : अतएव पृ० 11 नवम्बर 86

2. डॉ० सच्चिदानंद राय : हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना पृ० 62

एक नवीन धर्म का जन्म हुआ मानव धर्म ।¹

“विश्वास असद् सद् का विवेक

दृढ़ श्रद्धा सत्य प्रेम अक्षय

मानव का मानव पर प्रत्यय

परिचय मानवता का विकास”

(आधुनिक कवि — मानव पृ० 70)

गद्य साहित्य में मानववादी चेतना का उन्मेष प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है । “प्रेमचन्द का दायित्व बोध समाजधर्मी इसी धर्म में है कि वे भारत के मानव की जड़ों की तलाश में लगे रहे और उन्होंने उसके संघर्ष को चित्रित करने की चेष्टा की ।”² प्रेमचन्द जी ने अपने अधिकांश उपन्यासों में सामान्य मनुष्य के जीवन संघर्ष को चित्रित किया है ।

डॉ० भगवतीशरण मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में मानववाद की प्रतिष्ठा की है । उनके उपन्यासों के पात्र मानवीय अस्तित्व की गरिमा से ओत प्रोत है । मानववाद मनुष्य के इस जगत में अस्तित्व बनाये रखने के लिये ऐसे मूल्यों का समर्थन करता है जो समाज एवं व्यक्ति के लिये कल्याणकारी हों ।

मानववाद एक निरन्तर विकासशील विचारधारा है पुनर्जागरणकाल ने आधुनिक मानववाद को और अधिक समृद्ध एवं सम्पन्न किया है । इसने उसे धार्मिक बन्धनों से मुक्ति दिलाकर विश्वास एवं आस्था के स्थान पर विज्ञान एवं तर्क को प्रतिष्ठित किया । तथा इस

1. डॉ० अम्बान पाण्डेय : छायावादी काव्य में लोकमंगल की भावना पृ० 5
2. सम्पादक दयाकृष्ण विजय : मधुमती पृ० 3 जनवरी 1978

प्रकार यह आगे नवमानववाद के रूप में विकसित हुआ ।

किसी भी प्रकार के परिवर्तन अथवा विकास के लिये विचारों में क्रांति होना आवश्यक है । मानववाद विचारों एवं तर्क का समर्थन करता है । यह ईश्वर के विरुद्ध मानव का विद्रोह है इस रूप में यह विश्वास के स्थान पर तर्क एवं विचार का समर्थक है ।

मानववादी साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से एक ओर मनुष्य को उसके भौतिक जीवन से सम्बद्ध करते हैं तथा उसके समस्त गुणों एवं अवगुणों के साथ उसे स्वीकार करते हैं । दूसरी ओर भौतिक जगत की परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर वे उनके विरुद्ध अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये मानव को संघर्ष की प्रेरणा देते हैं ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही भारत में स्वतंत्रता की इच्छा तीव्र होनी आरम्भ हो गयी जिसका प्रभाव साहित्य में यह हुआ कि मनुष्य प्रत्येक प्रकार की स्वतंत्रता को चाहने लगा तथा इस स्वतंत्रता के लिये उसने संघर्ष को अपनाया और यहीं से मानववाद विकसित होकर नवमानववाद में परिणित हुआ ।

नवमानववाद —

नवमानववाद के प्रवर्तक इरविंग वैबिट और पॉल ई मूर हैं । “इसका प्रमुख सिद्धान्त है “आन्तरिक अवरोध और प्रमुख मूल्य है संचय एवं सामंजस्य ।इस नवमानववाद का लक्ष्य रखा गया है प्राचीन संस्कृति और अति प्राकृत सत्ता को अस्वीकारते हुए धर्म के अच्छे तत्वों का संश्लेषण।” धर्म के अच्छे तत्वों के संश्लेषण के रूप में यह मानवता विश्वबन्धुत्व, समभाव इत्यादि का प्रबल समर्थन करता है । अपने जीवन में इन लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिये ही मानववाद नवमानववाद में परिणित होता है ।

मनुष्य के जीवन का सबसे अधिक आवश्यक एवं आधारभूत मूल्य स्वतन्त्रता है । अन्य सभी मानव मूल्य इसी से विकसित हैं । इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि अपने जीवन के लिये संघर्ष करने के साथ ही मनुष्य ने अपनी स्वतन्त्रता के लिये भी संघर्ष किया है । उसके लिये स्वतन्त्रता का अर्थ व्यापक है जिसमें विचारों की स्वतन्त्रता, व्यवहार की स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है । नवमानववाद व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता को उसके लिये आवश्यक समझता है । किन्तु यदि यह स्वतन्त्रता दूसरे व्यक्ति की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करती है तो इस पर नियन्त्रण आवश्यक है । स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष को एक स्पष्ट एवं कल्याणकारी स्वरूप प्रदान करने का कार्य तर्क और बुद्धि का है ।

“स्वतन्त्रता की खोज और सत्य का अनुसंधान मानव प्रगति की मौलिक आकांक्षा है । स्वतन्त्रता की खोज उन्नत चेतना और भावना के आधार पर प्राणी के अस्तित्व के संघर्ष के क्रम में आती है ।”¹ अपने तर्क एवं विवेक के आधार पर मानव अपने स्वभाव एवं परिस्थितियों पर नियन्त्रण रखता है यदि सामाजिक परिस्थितियाँ व्यक्ति के विकास में बाधक हैं तो वह उन्हें बदलने के लिये सामाजिक क्रान्ति का पक्षधर है । नवमानववाद के प्रवर्तक एम.एन.राय के अनुसार मार्क्सवादी दर्शन का रचनात्मक स्वरूप ही नवमानववाद है । उनके अनुसार — “यदि मार्क्सवाद की भूलों का परिहार कर दिया जाय एवं विकसित वैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में व्याख्या की जाय तो मार्क्सवाद के रचनात्मक तत्व एक अधिक सर्वतोमुखी दर्शन से सुसंगत दिखाई देते ह । जिसे समग्र मानववाद अथवा नवमानववाद का नाम दिया जा सकता है ।”² यह मार्क्सवाद की तरह आर्थिक नियतिवाद का पक्षधर नहीं है । यह मनुष्य की इच्छा को सबसे शक्तिशाली तत्व मानता है अपनी इच्छा शक्ति एवं ज्ञान के आधार पर

1. बी.एम. ताराकुण्डे : नवमानववाद पृ० 99
2. वही प्राक्कथन से

मनुष्य अपने भाग्य को बदल सकता है । वह किसी भी सामाजिक व्यवस्था में स्थापित एक यंत्र मात्र नहीं है । उसका अपना समाज से पृथक् एक स्वतंत्र अस्तित्व है और उसकी अपने अस्तित्व की श्रेष्ठता ही समाज की श्रेष्ठता को निर्धारित करती है । व्यक्ति की स्वतंत्रता केवल प्रजातंत्र एवं लोकतंत्र में ही सुरक्षित है मानववाद इसीलिये प्रजातंत्र का समर्थन करता है । इस प्रजातंत्र के माध्यम से जिस नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होगी “उसकी संस्कृति ज्ञान के सार्वदेशिक प्रसार और न्यूनतम नियंत्रण तथा अधिकतम अवसर प्रदान करने तथा वैज्ञानिक और सृजनात्मक प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देने पर आश्रित होगी ।” एम.एन. राय मनुष्य के अंदर छिपी बौद्धिक चेतना को जाग्रत करने के पक्षधर थे तथा इस चेतना के जाग्रत होने पर एक आदर्श राज्य की स्थापना के आकांक्षी थे । इस वाद के द्वारा एक नवीन विश्वव्याप्त मानव जाति का उदय होगा इस विश्वास को लेकर उन्होंने कहा था “स्वतंत्र नर नारियों का एक विश्व कुल सम्भव है । यह एक आध्यात्मिक कुल होगा जो पूँजीवाद फासिस्त, कम्युनिस्त, या अन्य किसी प्रकार के राष्ट्रीय राज्यों से, जो विश्व-मानववाद के प्रभाव में धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेंगे, सीमित नहीं होगा ।”²

राय द्वारा प्रतिपादित इस नवमानववादी दर्शन ने हिन्दी साहित्य को विशेष प्रभावित नहीं किया कुछ प्रगतिवादी कवियों की रचनाओं में इसका प्रभाव अवश्य देखने को मिलता है ।

मनुष्य के जीवन की यथार्थ परिस्थितियों एवं उसे विरुद्ध संघर्ष करते मानव का चित्रण इस युग के कवियों का मुख्य विषय रहा है । समाजवादी यथार्थवाद अपने आन्तरिक स्वरूप नवमानव का ही चित्रण करता है ।

“समाजवादी यथार्थवादी चेतना के फलस्वरूप साहित्य में नये मानव का रूप

-
1. बी.एम. ताराकुण्डे : नवमानववाद पृ० 220
 2. नवलकिशोर : मानववाद और साहित्य पृ० 50

“अतिमानववाद को अपनी विचारधारा में सर्वप्रथम स्थान देने वाले नीत्से हैं। उसने ईश्वर की सत्ता को पूरी तरह नकार दिया तथा घोषणा करते हुए कहा कि अपने संकल्प की दृढ़ता द्वारा व्यक्ति अतिमानव बन सकता है और अतिमानव मानवी सभ्यता व संस्कृति को अपने साहस एवं सामर्थ्य से उन्नति एवं प्रगति की ओर ले जायेगा।”¹ नीत्से का मानना है ‘सृष्टि के आरम्भ से जिस प्रकार मनुष्य में निरन्तर विकास होता आया है’ उसी प्रकार उसकी इस वर्तमान अवस्था से विकसित होकर उसे अतिमानव की श्रेणी में आना है। जिस प्रकार से बन्दर का विकसित रूप महामानव है। शरीर से मनुष्य होते हुए भी अधिकांश मानवों में पशुता लक्षित होती है।”² अपनी वर्तमान अवस्था को प्राप्त करने के लिए भी मनुष्य ने अनेकों संघर्ष किए हैं संघर्ष की इस प्रक्रिया को निरन्तर बनाये रखते हुए उसे और आगे विकास करना है “क्योंकि इस सृष्टि का लक्ष्य नीत्से के अनुसार अति मानव ही है। तथा अपना आदर्श वह स्वयं है उसके समक्ष ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है।”³ वर्तमान मनुष्य मानव और अतिमानव के मध्य एक श्रृंखला मात्र है। जो मानव को अतिमानव से जोड़ती है।

“जो व्यक्ति ईश्वर से अधिक से अधिक समान हो इकबाल उसे ही अतिमानव कहते हैं। और धरती पर वे उसी का राज्य भी चाहते हैं।”⁴ इनके विचार से अतिमानव एक ही होगा किन्तु इसके विपरीत भारतीय दार्शनिक एवं विद्वान अरविन्द का मानना है कि अतिमानव एक नहीं होगा। समूची मानव जाति के समग्र विकास की कल्पना तभी सम्भव है जब समूची मानव जाति अपनी चेतना को अतिमानस के स्तर पर ले आये क्योंकि ऐसा मनुष्य चिन्तन में किसी प्रकार की गलती या त्रुटि नहीं करेगा उसका ज्ञान तर्क एवं विज्ञान पर आधारित प्रत्यक्ष ज्ञान होगा जिससे किसी भी भूल की संभावना नहीं रह जायेगी। सब

-
1. डॉ० अजित कुमार सिन्हा : विज्ञान का दर्शन पृ० 17
 2. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ० 611
 3. संपादक डॉ० श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना : समकालीन भारतीय दर्शन पृ० 153
 4. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ० 625

प्रकार से मानव इस जगत के कल्याण का ही विचार करेगा । ऐसा करने पर ही नये युग की रचना आरंभ होगी अरविन्द कहते हैं कि “व्यक्तियों में सर्वथा नवीन चेतना का संचार करो उसके अस्तित्व के समग्र रूप को बदलो जिससे पृथ्वी पर नये जीवन का समारंभ हो सके ।”¹ और यह नवीन चेतना अतिमानवीय चेतना है जो मस्तिष्क की उच्च कोटि की अवस्था है । इस अवस्था में आने पर व्यक्ति को सभी प्रकार की संकीर्णताओं एवं क्षुद्रताओं से मुक्ति मिल जाती है तथा वह स्वयं को किसी विशालकाय का एक अंश समझने लगता है ।

“हम जब भी ऊँची मानसिक स्थिति में होते हैं, हमें लगता है मानो हम अपने से किसी बड़ी सत्ता के सम्पर्क में आ गये हों मानो यह सत्ता ही सबसे बड़ी वास्तविकता हो ।”² यह परम सत्ता ही अपने को इस जगत में स्थूल रूप में प्रकृति एवं जीवन के रूप में प्रकट करती है जब यह जीवन विकास करता हुआ सूक्ष्म की दोबारा प्राप्ति करता है तो यह विकास की प्रक्रिया अतिमानसिक होती है ।

प्रख्यात दार्शनिक अरविन्द की मान्यता है कि परमचेतना अर्थात् अतिच्छन्दस का पदार्थ के रूप में आरोहण होता है । और इस स्थूल के चरम विकास की चेतनावादी प्रक्रिया भारतीय चिन्तन एवं साधना पर आधारित है । भारतीय चिन्तन में सदैव से आत्म एवं बाह्य दोनों तत्त्व समाहित रहे हैं । भारतीय चिन्तन से सदैव से व्यक्ति के आत्म तत्त्व को सबल बनाने पर बल दिया है । जब आत्म और भौतिक दोनों तत्त्व एक दूसरे को सहयोग देते हैं तो मनुष्य का जीव अपनी सम्पूर्णता से आलोकित हो उठता है ।”³

-
1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ० 620
 2. वही पृ० 664
 3. संपादक सुभाष सेतिया . आजकल पृ० 7 सितम्बर 1999

सृष्टि के प्रारंभ से ही विकास की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। मनुष्य का चिन्तन आरंभ होने के साथ ही उसके शारीरिक विकास के स्थान पर मानसिक विकास की प्रक्रिया आरंभ हो गयी। “मानव ज्योंही अपनी पाशविक वृत्तियों से स्वाभाविक गति के साथ ऊर्ध्वलोक की ओर अग्रसर होगा तो उसकी यह यात्रा उसे महामानव बना देगी। आन्तरिक परिष्कार के क्षण मानव को आन्तर्बाह्य दोनों रूप में महामानवत्व प्रदान करते हैं।” मनुष्य का चिंतन जैसे-जैसे संकीर्णता के दायरे को पार करके विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करता जायेगा वैसे-वैसे ही वह मानव के स्तर से ऊर्ध्वमुखी होता हुआ अतिमानवीय स्थिति को प्राप्त कर लेगा ऐसी स्थिति में ही उसे वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होगी।

वर्तमान समय में विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए जिस वस्तु की सर्वाधिक आवश्यकता है वह यही है कि मनुष्य जाति प्रत्येक प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर अपने विवेक पर आधारित एक ऐसा दर्शन विकसित करे जिसे अपनाकर उत्कृष्ट मानव मूल्यों को स्थापित किया जा सके। इसके लिये आवश्यक है कि अतिमानवों की एक श्रृंखला विकसित की जाय एक या दो मानवों के अतिमानव की श्रेणी में आने से समाज में परिवर्तन नहीं हो सकता है। इसलिये अरविन्द समूची मानव जाति की अतिमानव की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। जब व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सत्ता को त्यागकर उसका समायोजन समष्टिगत सत्ता में कर देता है आन्तरिक और बाह्य दोनों का एकीकरण कर देता है। तब उसकी चेतना अतिमानव की ओर अग्रसर हो जाती है। इस प्रकार के अतिमानव एक नहीं होंगे अनेक हो सकते हैं किन्तु सभी की प्रकृति एक समान होगी। उनके जीवन में किसी प्रकार की समस्या नहीं होगी क्योंकि विकसित चेतना के द्वारा अज्ञान नष्ट हो जायेगा और समस्याओं की उत्पत्ति अज्ञान से होती है।

वर्तमान समय में अनेक प्रकार सुविधाओं से युक्त जीवन होने पर भी मनुष्य कष्ट और पीड़ा से दुख भोग रहा है। अपने अस्तित्व एवं सार्थक्य के प्रति उसके मन में अभी भी संदेह है ऐसे मनुष्य अपनी चेतना को क्रमिक विकास के सोपानों पर अग्रसर करते हुए इस असंतोष एवं कष्ट से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य दिव्य जीवन है। उसके अन्तर्मन में स्थित दिव्यता की खोज ही उसका प्रथम कर्म होना चाहिये।

“आत्मस्वरूप हो जाना ही एकमात्र करणीय वस्तु है : परन्तु हमारा सच्चा आत्मस्वरूप वह है जो हमारे अन्दर है और यह उच्चतम सत्ता जो कि हमारी सच्ची और दिव्य सत्ता है अपने आपको प्रकट करे और सक्रिय हो जाय इसके लिये यह शर्त है कि हम अपने शरीर, प्राण तथा मन की बाह्य सत्ता का अतिक्रमण करें। हम अन्तर में विकसित होकर और अन्तर में निवास करके ही इसे पा सकते हैं। और यह हो जाने पर वहाँ से आध्यात्मिक अथवा दिव्य मन, प्राण शरीर का सर्जन और इन साधनों द्वारा एक ऐसे जगत का सर्जन जो दिव्य जीवन यापन के लिये सच्चा परिवेश होगा। यही अन्तिम लक्ष्य है। जिसे प्रकृति की शक्ति ने हमारे सामने रखा है।” मनुष्य का जन्म अपनी आत्मा को विश्वात्मा में सम्मिलित करने के लिये हुआ है।

जीवन एवं जगत के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य के विकास के क्षेत्र भी भिन्न भिन्न हैं मनुष्य की चेतना जब विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्ध्वगति से संचरण करती है। तो उस क्षेत्र में उसे विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त होती है।

मनुष्य ने इस सृष्टि के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों एवं वस्तुओं के यथार्थ को जानने के लिए अपनी चेतना शक्ति का उपयोग किया है यथार्थ को परखने के लिए कुछ ने विज्ञान

1. श्री अरविन्द : द लाइफ डिवाइन
अनुवादक — श्यामसुन्दर कुशुवाला दिव्य जीवन पृ० 468

का, कुछ ने अध्यात्म का और कुछ ने दर्शन का सहारा लिया है। इस यथार्थ एवं जीवन सत्य को परखने के क्रम में मनुष्य ने अपने ज्ञान एवं चेतना का उपयोग किया इस ज्ञान के विकसित होने के साथ ही मनुष्य का भी विकास हुआ है। श्री अरविन्द के अनुसार “दिव्य सत् का आध्यात्मिक, सद्वस्तु का जड़ की प्रतीयमान निश्चेतना में संचरण क्रम विकास का आरम्भ बिन्दु है।” इसमें मनुष्य की चेतना अपने वास्तविक स्वरूप को खोजती हुई अधिकाधिक सम्पूर्ण सत्य को जानने का प्रयास करती है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य अपने को इस विश्व के साथ एकाकार कर लेना है। इसके लिये आवश्यक है कि वह अपने परिवेश एवं अपने आस-पास की प्रकृति पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करे। इसी क्रम में सत्रहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक युग में क्रांति हुई। मानववाद के अस्तित्व में आने के बाद से ही अपने कष्टों एवं दुखों से मुक्ति पाने के लिये मनुष्य निरन्तर संघर्ष करता रहा है।

विज्ञान मनुष्यों को प्रकृति एवं स्वयं के रहस्यों को समझने के रूप में मुख्य साधन माना गया। इस वैज्ञानिक युग में मनुष्य प्रत्येक क्रिया के कारणों की खोज करने लगा उसने सिद्ध किया कि सृष्टि में कुछ भी स्वयं नहीं होता है। प्रत्येक क्रिया के होने का कारण होता है।

वैज्ञानिक मानव —

वैज्ञानिक मानव पूर्ण रूप से भौतिकवादी है वह किसी प्रकार की अतिप्राकृत एवं अलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं करता है। सृष्टि में प्रत्येक वस्तु कारण स्वरूप विकसित हुई है। जीवन एवं जगत को भौतिकवादी दृष्टिकोण से परखने वाला वैज्ञानिक मानव है।

अपने जिज्ञासु व्यवहार के कारण मनुष्य इस जगत के अज्ञात रहस्यों की

व अपने जीवन सत्य की खोज में निरंतर रहा है। भारतीय चिंतन एवं पाश्चात्य चिंतन में अंतर केवल इतना ही है “जहाँ पश्चिम ने प्रकृति की शक्तियों का उद्घाटन करने और अंशतः उन पर विजय पाने की अपूर्व क्षमता दिखायी है वहाँ भारत का विशेष योग आत्मा के सत्यों पर बल देने में रहा है।”¹

“उन्नीसवीं शताब्दी में होने वाले वैज्ञानिक अविष्कारों ने भौतिक जगत के सत्य को अधिक स्पष्ट रूप में जगत् के सामने रखकर अपनी ओर आकर्षित किया। परिणामस्वरूप मनुष्य की बुद्धि प्रत्येक कार्य के होने के लिए तर्क व का प्रमाण की आकांक्षी हो गई वैज्ञानिक अविष्कारों के प्रकाश में मनुष्य ने यह जाना कि यह संसार भ्रम अथवा असत्य नहीं है। जगत को समझने के लिये विज्ञान ने एक नवीन दृष्टि प्रदान की।”²

मार्क्स ने अपने दर्शन में भौतिक जगत को ही प्रधानता दी है तथा प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन की एक श्रृंखला उपलब्ध करायी। “भौतिक जगत में प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन के लिए द्वन्द्व होना आवश्यक है प्राचीन और वर्तमान में होने वाले द्वन्द्व के फलस्वरूप ही नवीन का विकास होता है यही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एक ऐसा विज्ञान है जो दर्शन के भौतिक जगत के विकास को अधिशासित करने वाले सामान्य द्वन्द्वात्मक नियमों का उद्घाटन करता है तथा इस जगत का संज्ञान प्राप्त करने और उसका क्रान्तिकारी काया पलट करने का उपाय बताता है।”³ जो मानव इस प्रकार के परिवर्तन का पक्षधर है वही वैज्ञानिक मानव है।

आध्यात्मिक मानव —

अपने विकास क्रम में मानव वैज्ञानिक से अध्यात्म की ओर उन्मुख होगा।

-
1. वी.एस. नरवणे : आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन पृ० 107
 2. वी.एस. नरवणे : आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन पृ० 71
 3. डॉ० शोभा शंकर : आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन पृ० 71

अरविन्द के अनुसार “समस्त भूतों के हित में रत रहना दूसरों के हर्ष और शोक को अपना ही बना लेना, विमुक्त और सिद्ध आध्यात्मिक मानव का लक्षण कहा गया है।”¹ यह मानव सभी व्यक्तियों के अंदर उसी परमतत्त्व की अनुभूति करेगा अपने तथा पराये के मध्य कोई अन्तर नहीं रहेगा ।

आज हमारा संसार जिस अतिशय भौतिकतावादी परिस्थितियों से होकर गुजर रहा है उसी का परिणाम है कि मनुष्य को जीवन में अनेक सुख सुविधायें प्राप्त होने के बाद भी मानसिक शान्ति नहीं है। “हम ऐसे संसार में जी रहे हैं जिसमें विषाद सर्वव्यापी है परम्पराएँ, संयम और स्थापित कानून और व्यवस्था आश्चर्यजनक रूप से शिथिल हो गए हैं । सारा वातावरण संतुष्ट अनिश्चितता और भविष्य के अत्यधिक भय से भरा है।”² ऐसी स्थिति में मनुष्य को जीवन से पलायन नहीं करना है अपितु अपनी संकुचित एवं सुस्त चेतना को जागृत कर असीम आत्मा अस्तित्व और परम आनन्द की प्राप्ति के लिये प्रयास करना है । इस संसार में रहकर ही हमें आध्यात्मिक मुक्ति को पाने का प्रयास करना है। “शंकराचार्य की दृष्टि में सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया का लक्ष्य आध्यात्मिक अनुभव ही है।”³ मनुष्य के जीवन का लक्ष्य अपने विराट में जाकर मिल जाना तथा यही उसका एकमात्र उद्देश्य है।

रामधारी सिंह दिनकर इस पृथ्वी पर आध्यात्मिक मानव के अविर्भाव को एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानते हैं उसके आगमन से उच्च कोटि के मानव मूल्यों का विकास होगा आज का मनुष्य बौद्धिक है वह केवल तर्क एवं प्रमाणों के आधार पर सत्यता प्रमाणित करता है। किन्तु आध्यात्मिक मनुष्य मन की आँखों का प्रयोग करेगा।

-
1. अरविन्द : द लाइफ डिवाइन अनुवादक श्याम सुन्दर झुनझुनवाला दिव्य जीवन पृ० 412
 2. डॉ० राधाकृष्णन : धर्म और समाज पृ० 6
 3. डॉ० राधाकृष्णन : धर्म और समाज पृ० 119

“आध्यात्मिक मनुष्य का अविभाव विश्व का अगला सौभाग्य है। यही आध्यात्मिक आदर्श हमारे भीतर रचनात्मक शक्तियों का रक्षण करेगा निष्प्राण बुद्धि से हमें रक्षा और त्राण देगा तथा हमारी वासनाओं को रचनात्मक रूप देकर मन आचरण और आत्मा से हमें एक बनाकर विश्व बधुत्व को संभव बनायेगा।”¹ अतिशय वैज्ञानिकता के कारण जीवन के जिन नैतिक मूल्यों का नाश हो गया है। आध्यात्मिक मानव द्वारा उनकी पुनर्स्थापना होगी।

डॉ० राधाकृष्णन ‘मानव के विकास क्रम के उच्चक्रम को जिसे अरविन्द अतिमानव कहते हैं राधाकृष्णन के दृष्टिकोण से वही आध्यात्मिक मानव है।’²

मनुष्य की चेतना जब विकास के स्तरों पर आरोहण करती हुई आध्यात्म के क्षेत्र में संचरण करती है तब वह समस्त बाह्य भेदों को विस्मृत कर समस्त चेतन प्राणियों में एक ही सत्ता की अनुभूति करती है। यही सर्वात्म भाव एवं एकात्मकता आध्यात्मिक मानव की उपलब्धि है।

यह सत्य है कि वैज्ञानिक मानव ने जीवन एवं जगत को समझने के लिए एक दृष्टि प्रदान की है किन्तु केवल भौतिकवादी होना मानव का लक्ष्य नहीं है मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल है इसलिये वह समस्त भौतिक सुविधाओं को प्राप्त करने के बावजूद संतुष्ट एवं सुखी नहीं है मनुष्य की आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जिनकी सांसारिक आवश्यकताओं की ।

आध्यात्मिक मानव का लक्ष्य यही होगा।

-
1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ० 661
 2. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ. 662

दार्शनिक मानव —

दार्शनिक मानव वह है जिसमें विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों तत्वों का संयोग होगा।
ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा ने कहा कि मनुष्य को उसके दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए इन
दोनों तत्वों का संगम आवश्यक है।

“आज इस दर्शन की सबसे अधिक आवश्यकता है क्योंकि विश्व भौतिक ताप से संतृप्त हो
रहा है विज्ञान की उपलब्धियाँ उस ताप को शमन करने में असमर्थ और अशक्य हो चुकी हैं
विज्ञान को अध्यात्म का तेज चाहिए और अध्यात्म को विज्ञान का अधिष्ठान इसलिए अध्यात्म
उपेक्षणीय नहीं है और विज्ञान तिरस्करणीय नहीं है अध्यात्म सार्वभौम सत्ता है। और विज्ञान
युग धर्म है।”

दोनों का सामंजस्य ही मानव को सत्य की पहचान कराता है। दार्शनिक मानव
ऐसा मानव होगा जिसमें विज्ञान व धर्म, भौतिकता व आध्यात्मिकता दोनों के तत्वों का उचित
सामंजस्य होगा। वह विश्व को एक नया दर्शन, एक नवीन रूप प्रदान करने में समर्थ होगा
वह विश्वमानवता वाद का वाहक होगा।

चतुर्थ अध्याय

डॉ० भगवती शरण मिश्र

का

‘व्यक्तित्व’ एवं ‘कृतित्व’

**डॉ० भगवती शरण मिश्र से उनके दिल्ली स्थित
निवास स्थान पर दिनांक 09-01-2002 को
कीर्ति राणा के साथ वार्ता**



डॉ० भगवतीशरण मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

किसी भी प्रकार के व्यक्तित्व का उसके साहित्य के मूल्यांकन में कितना प्रभाव पड़ता है इस विषय में दो मत हैं स्वच्छन्दतावादी विचारधारा के अनुसार साहित्य व्यक्तित्व का प्रकाशन है यदि रचनाकार का व्यक्तिगत जीवन से हम परिचित हों तो हमें साहित्य अनुशीलन में सुविधा रहेगी । दूसरी विचारधारा आधुनिक चिन्तकों की है उनके विचार से रचनाकार जितना तटस्थ रहता है अपनी कृति को अपने व्यक्तिगत जीवन से जितना अलग रखता है उसकी कृति उतनी ही महान होती है।

किन्तु यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कृति में रचनाकार चाहे जितना भी तटस्थ क्यों न रहे उसके जीवन का, उसके व्यक्तित्व का कुछ न कुछ अंश साहित्य में आ ही जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रचना रचनाकार से प्रभावित अवश्य होती है। अतः किसी भी कृति के मूल्यांकन एवं विश्लेषण के समय रचनाकार के व्यक्तित्व के विषय में जानना उसे ध्यान में रखना आवश्यक है।

डॉ० भगवतीशरण मिश्र के कृतित्व पर विचार करने से पूर्व हम उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालेंगे।

डॉ० मिश्र देखने में सीधे, सरल, शान्त एवं गम्भीर मुद्रा वाले व्यक्ति हैं किन्तु व्यवहार में उतने ही मृदु एवं विनोदप्रिय हैं। हिन्दी के इस प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं साहित्यकार का जन्म बिहार प्रान्त के जिला रोहतास के एक गाँव में 27 मार्च, 1939 को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री गजानन मिश्र है जो संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। परिवार में प्रारम्भ से ही संस्कृत का प्रभाव होने के कारण आपको हिन्दी व संस्कृत में प्रारम्भ से रुचि थी।

आई.ए.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करने से ही आपके प्रशासनिक जीवन का आरम्भ हुआ।

आप सर्वप्रथम अनुमंडल पदाधिकारी दरभंगा के पद पर आसीन हुए। इसके बाद दरभंगा में ही अतिरिक्त जिलाधिकारी, शिवहर में जिलाधिकारी एवं समाहर्ता पटना में संयुक्त विकास आयुक्त, बिहार तथा बिहार में ही अपर सचिव (खाद्य एवं आपूर्ति) के पद पर कार्यरत रहे।

हिन्दी एवं साहित्य सम्बन्धी स्वतंत्र रूप से धारित कुछ सरकारी पदों पर भी डॉ० मिश्र आसीन हुए। ये पद इस प्रकार हैं —

- (1) निदेशक, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी
- (2) निदेशक, वयस्क शिक्षा संसाधन केन्द्र
- (3) निदेशक, मैथिली अकादमी
- (4) संयुक्त निदेशक (राजभाषा) रेल मंत्रालय, नई दिल्ली 1981-85
- (5) निदेशक राजभाषा विभाग, बिहार सरकार 1985-1990 तक

पिताजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके मिश्र जी प्रशासनिक सेवा में तो आ गए किन्तु हिन्दी साहित्य के प्रति उनकी जो रुचि थी उससे विमुख न हो सके। उनके अंदर का लेखक जो वर्षों तक चुप था वह प्रत्यक्ष होने के लिए व्याकुल हो उठा और मिश्र जी ने अपनी व्यस्ततम जीवनचर्या के बावजूद साहित्य की रचना में अपना योगदान देना आरम्भ कर दिया।

हिन्दी की अनेक विधाओं में आपने साहित्य रचना की है किन्तु उपन्यास तथा कहानी आपकी प्रिय विधा रहे हैं। उत्कृष्ट साहित्य सेवा के लिए आपको अनेक पुरस्कार भी प्रदान किए गये हैं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का उपन्यास के क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'प्रेमचन्द पुरस्कार' दो बार प्रदान किया गया है। प्रथम बार 'पुरुषोत्तम' पर तथा दूसरी बार 'पीताम्बरा' पर। इनकी कृति 'पीताम्बरा' को हिन्दी की सौ श्रेष्ठ पुस्तकों में भी स्थान प्राप्त है।

राष्ट्रीय बाल विकास परिषद और मानव संसाधन विभाग, भारत सरकार के सम्मिलित तत्वावधान में श्रेष्ठ बाल साहित्यकार का पुरस्कार प्रदान किया गया। आपके एक और उपन्यास 'पवनपुत्र' को अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मानस संगम, कानपुर द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मानस सम्मेलन में प्राप्त किया गया।

12 मार्च, सन् 2000 को हिन्दी, उर्दू सहित्य अकादमी की ओर से पच्चीस हजार का सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1 लाख रु० का पुरस्कार बिहार सरकार के द्वारा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इनके योगदान के लिए प्रदान किया गया। द्वितीय विश्व सम्मेलन में मॉरिशस में सन् 1976 में आप भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य होकर गये थे।

अपने साहित्यिक जीवन में मिश्र जी पूर्णतया भारतीयता को समर्पित रहे हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों का प्रतिबिम्ब हम इनकी रचनाओं में देख सकते हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रति मिश्र जी की निष्ठा इतनी अटूट है कि एक साक्षात्कार के दौरान जब मैंने उनसे पूछा कि आज के विद्वानों का यह मानना है कि हमारी प्राचीन संस्कृति व सभ्यता को यदि नये परिवेश में प्रस्तुत किया जाय तो यह आज की पीढ़ी के लिये अधिक प्रभावशाली होगा तो उन्होंने कहा कि नया स्वरूप तो हम प्रदान कर ही नहीं सकते वेदों के मन्त्रों को आप नया रूप कैसे प्रदान कर सकते हैं। गीता के कर्म योग को आप कैसे नया स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। हम इतना तो कर सकते हैं कि समय के साथ साथ इनमें जो विकृति आ गई है उसे दूर सके किन्तु ये हमारे लिये लाभदायक तभी हैं जब हम इन्हें इनके मूल स्वरूप में ग्रहण करेंगे।¹

1. दिनांक 9.01.2002 को नई दिल्ली स्थित डॉ० मिश्र के निवास स्थान पर एक भेंट वार्ता।

भारतीय संस्कृति के प्रति इनकी आस्था इतनी अटूट है कि अपने उपन्यासों का विषय पौराणिक एवं सांस्कृतिक रखने के साथ – साथ आपने प्रत्यक्ष रूप से भी उपन्यासों में संस्कृति सम्बन्धी अपने विचारों को प्रकट किया है भारतीय संस्कृति के प्रतीक रहे तीर्थ स्थानों का उल्लेख जहाँ कहीं भी मैं वहाँ उन्होंने उस स्थान के महत्व को बताने से लेकर उससे सम्बन्धित अन्य दन्त कथाओं तक का उल्लेख किया है । मिश्र जी की यह शैली उनके संस्कृति प्रेमी होने की परिचायक है । अग्नि – पुरुष नामक उपन्यास में वैद्यनाथ तीर्थ के बारे में बताते हुये आपने न केवल उसके स्थान के बारे में अपितु उससे सम्बन्धित पौराणिक विधाय आख्यायिका का भी वर्णन किया है । भारत एवं भारतीयता के प्रति उनका प्रेम उनके उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।¹

मिश्र जी उपन्यासों के लिये विषय न तो अपने आसपास के वातावरण से ग्रहण करते हैं ओर न ही आले पर रखी पुस्तकों से सामग्री ग्रहण करते हैं ।² आपने स्वयं स्पष्ट किया है कि उपन्यास लेखन के लिये स्वयं स्थान-स्थान पर भ्रमण कर सामग्री का संचय कर तब उपन्यास लेखन का कार्य आरम्भ किया । आपकी यह प्रकृति मौलिकता एवं नवीनता की परिचायक है ।

डॉ० मिश्र के व्यवितत्व की एक और विशेषता उनका कर्मवादी होना है । गीता के कर्मधोग में आपका पूर्ण विश्वास है किन्तु साथ ही साथ नियतिवादी भी है । मनुष्य के जीवन में कुछ घटनाएँ उसकी नियति अथवा भाग्य द्वारा पूर्वनिर्धारित होती है ।

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र: अग्नि पुरुष पृ०-190
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: पावक पृ० IV

भारतीय संस्कारों से परिपूर्ण वातावरण में पालन पोषण होने के कारण मिश्र जी के व्यक्तित्व में भारतीयता के प्रति आस्था स्वाभाविक रूप से अंकुरित हो गई ।

मिश्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा गाँव की प्राथमिक पाठशाला में हुई थी । एस0डी0 जैन कॉलेज से आपने इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की । उन दिनों आज की अपेक्षा विवाह कम उम्र में हो जाते थे । 16 वर्ष की अल्पायु में मिश्र जी का विवाह कौशल्या मिश्र के साथ हो गया ।

विवाहोपरान्त एच0डी0 जैन महाविद्यालय से बी0ए0 करने के बाद सन् 1959 में पटना विश्वविद्यालय से आपने अर्थशास्त्र में एम0ए0 की डिग्री भी प्राप्त की । डिग्री प्राप्त करते ही 1960 से 62 तक एच0 डी0 जैन कॉलेज आरा में व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुये । दो वर्ष कुशलतापूर्वक शिक्षण कार्य करने के उपरान्त स्नातकोत्तर व्याख्याता के पद पर रॉचो विश्वविद्यालय रॉची में 1 वर्ष तक अध्यापन किया ।

अध्यापन कार्य में मिश्र जी इतने कुशल व प्रवीण थे कि अन्य महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के छात्र इनको सुनने के लिये आते थे । कक्षा में विद्यार्थी, सदैव वास्तविक संख्या से दुगुने तिगुने रहते थे । विद्यार्थियों की यह संख्या प्रमाणित करती थी कि मिश्र जी का अध्यापन कितना प्रभावशाली था ।

अध्यापन में अत्यधिक रुचि होने बावजूद मिश्र जी को पिताजी के कहने पर अध्यापन छोड़ना पड़ा । पं० गजानन मिश्र का सपना था कि पुत्र बड़ा होकर हाकिम बने सो एक दिन उन्होंने मिश्र जी को बुलाकर कहा कि अध्यापक बनोगें तो जिन्दगी भर अपने लिये कुछ नहीं कर पाओगे और यदि हाकिम नहीं बने तो घर से निकाल दूँगा मिश्र जी पर इस

फटकार का सकारात्मक प्रभाव पड़ा और उन्होंने आई० ए० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

प्रशासनिक पद पर अनेक वर्षों तक रहने के साथ-साथ डॉ० मिश्र लेखन से, विशेष रूप से हिन्दी लेखन से जुड़े रहे ।

उनका मानना है कि "समय एक सड़क की तरह है और हम उस पर चल रहे हैं कोई भी भवन या इमारत आने पर आप कह उठते हैं कि अमुक इमारत आ गई जबकि वास्तविकता यह है कि वह तो वहाँ पहले से थी इसी प्रकार जीवन में सब कुछ पूर्वनिर्धारित है जब समय आता है तो उसे प्राप्त करने का संयोग हो जाता है किन्तु प्राप्ति तभी होती है जब व्यक्ति कर्म करता है । मनुष्य को ईश्वर ने जो दो हाथ दिये हैं वह इसीलिये ताकि वह अपने भविष्य को उज्ज्वल कर सके । भूखें मनुष्य को फलों से लदा हुआ वृक्ष मिल जाना भाग्य है किन्तु पेड़ से फल तोड़कर खाना उसका कर्म है ।" अपनी कृतियों में भी उन्होंने इसी कर्म योग के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है ।

"कर्म के बिना भाग्य पंगु है । पेड़ पर लगा फल भाग्य है वह वहीं पर सड़ जाएगा या धरती पर गिरकर किसी काम का नहीं रहेगा अगर हाथ बढाकर उसे तोड़ नहीं लो । इतना तो तुम्हें करना ही पड़ेगा, इसी कर्म से विमुख होने से भाग्य भी विवश हो जाता है । कुछ नहीं दे पाता वह तुम्हें ।"²

डॉ० मिश्र ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में ऐसे 'चरित्रों' की सृष्टि की है जो भारतीय मूल्यों की स्थापना में सहायक हों । वर्तमान समय में पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव के परिणाम स्वरूप भारतीयता अपनी अस्मिता व पहचान खोती जा रही है जो मूल्य व परम्पराएँ हमारी आधार हैं है उनको विस्मृत करते जा रहे भारतीय जनमानस के

1. डॉ० मिश्र से दिनांक 14.4.2000 को साक्षात्कार ।
2. डॉ० भगवती शरण मिश्र: गोविन्द गाथा पृ० 42

सम्मुख उनकी पूरी सजीवता के साथ प्रस्तुत करना इनका लक्ष्य रहा है ।

इस सम्बन्ध में डॉ० मिश्र यह कहते हैं कि मैंने यह अनुभव किया कि वर्तमान समाज में मूल्यों का पतन हो रहा है । अपने गुरुजनों, माता-पिता व महापुरुषों के प्रति आस्था कम हो रही है। शिक्षा एक व्यवसाय हो गयी है व माता-पिता, घर के एक बेकार फर्नीचर की तरह हो गए हैं जिनको किसी भी समय उठाकर फेंका जा सकता है। इसलिए उत्कृष्ट मूल्यों की स्थापना के लिए, उदात्त मूल्यों की स्थापना के लिए श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना के लिए मैंने ऐतिहासिक व पौराणिक ऐसे पात्रों को लिया जिनका जीवन मूल्यों के निर्वाह में व्यतीत हुआ और इन पात्रों या चरित्रों के माध्यम से मैंने आज की युवा पीढ़ी को मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए भी प्रेरित किया।”

मानवीय जीवन की अनेक समस्याओं तथा यथार्थ परिस्थितियों का उदघाटन मिश्र जी ने अपनी कृतियों में समय-2 पर किया है आपके चिन्तन के विषय सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक आदि रहे हैं। विभिन्न दिशाओं की इन धाराओं का समन्वय हमें आपके साहित्य में मिलता है। मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित किसी पक्ष को शायद ही आपने छोड़ा हो। यह आपकी सूक्ष्म दृष्टि व बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचायक है। जीवन एवं जगत से जुड़े एक-एक पक्ष को अपने तार्किक शैली में अपने मन्तव्य की प्रस्तुति करते हुए पाठक की जिज्ञासा का समाधान करते हुए प्रस्तुत किया है।”

एक सच्चे साहित्यकार की परिभाषा देते हुए जैनेन्द्र कहते हैं “मेरी दृष्टि में सच्चा साहित्यकार वही हो सकता है जिसने पूर्ण जीवन का अनुभव किया है।” मिश्र जी ऐसे ही साहित्यकार हैं जिनके साहित्य में हमें पूर्ण जीवन की झलक मिलती है । डॉ०

भगवती शरण मिश्र एक लेखक, कथाकार एवं निबन्धकार के रूप में हिन्दी साहित्य में स्थापित हैं। आप केवल साहित्यकार की नहीं, कुशल प्रशासनिक, अध्यात्मज्ञाता एवं सहज – सरल मिलनसार व्यक्तित्व के स्वामी हैं इसलिये स्वाभाविक है कि उनसे बातचीत रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं आनन्ददायक होगी। बुआयामी व्यक्तित्व सम्पन्न मिश्र जी की बातचीत में एकरसता की जगह वैविध्य रस-रंग और जीवन के अनछुए प्रसंग की मिठास है।¹

प्रश्नों के उत्तर देते समय डॉ० मिश्र की अभिव्यक्ति पूर्णतया निष्पक्ष एवं बेबाक होती है। प्रश्न कितना ही अटपटा और टेढ़ा क्यों न हो मिश्र जी से उत्तर सीधा, सरल एवं निर्भीक मिलता है। “इनके निर्भीक कथन एवं हाजिर जवाबी से कभी-कभी प्रश्नकर्ता भी हतप्रभ रह जाता है।”²

अपनी कृतियों में चमत्कारों का बहिष्कार करते हुए भी कुछेक स्थलों पर चमत्कारों का वर्णन भी किया है इसी से सम्बन्धित एक प्रश्न का उत्तर देते हुए वह कहते हैं— “हम आधुनिक पाठक की मानसिकता के भय से उन्हें नकारने का जो प्रयास करें, पर ऐसा कर हम सत्य के साथ न्याय नहीं करते। मैं कहूँगा कि चमत्कारों को मानना अंधविश्वास नहीं है अपितु उनको पूर्णतया नकारना अज्ञान और अनुभव हीनता का द्योतक है।”³

इससे मिश्र जी के व्यक्तित्व का धार्मिक व आध्यात्मिक पक्ष प्रकट होता है। वे मानते हैं धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में ऐसे चमत्कार संभव हैं। इसे वे अपनी साहसहीनता भी मानते हैं कि उन्होंने ऐसे चमत्कारों के लिए अपनी तर्कसंगत व्याख्या दी है।⁴ किन्तु इसके पीछे उद्देश्य था कि कृति को अधिक से अधिक यथार्थपरक बनाना उसे दैवीय नहीं बल्कि मानवीय बनाना।

-
1. संपादक – आशुतोष कुमार सिंह : डॉ० भगवतीशरण मिश्र के साक्षात्कार
 2. वही पृ० 6
 3. वही पृ० 20
 4. वही पृ० 70

डॉ० मिश्र न तो “स्वान्तः सुखायः” लिखते हैं और न ही कला के लिये अपितु आप एक जागरूक साहित्यकार हैं जो समाज के परिवर्तन की क्रांति के लिये लिखते हैं। “निरंतर गिरते मानव मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिये मैंने इन चरित्रों का चयन किया अपने लेखन का विषय बनाया, ताकि हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा हो सके। हमारी नयी पीढ़ी दिग्भ्रमित है। ऊँच नीच, गरीबी, अमीरी एवं राजनीतिक कारणों से जो समाज का विघटन हो रहा है उन पर भी सामाजिक उपन्यास लिखे हैं मैंने।”¹

डॉ० मिश्र जी के व्यक्तित्व के विषय में उनसे साक्षात्कार करने वाली नीलम पांडेय लिखती हैं कि “एक कुशल प्रशासक के रूप में अपने दायित्वों को सजग निर्वाह, सतत सृजनशील लेखन के प्रति सच्ची प्रतिबद्धता, एक बड़े परिवार के मुखिया के रूप में चहुँ ओर स्नेह बरसाती, वात्सल्य रस, छलकाती आँखें और पारलौकिक दैवीय शक्तियों की प्रेरणा अनुकंपा में अटूट आस्था — इन चारों को मिला दीजिए तो एक नाम बनता है — डॉ० भगवती शरण मिश्र।”²

आज के युग की आवश्यकता को परखते हुए मिश्र जी ने अपने उपन्यासों को उद्देश्यपूर्ण बनाया है। आपकी रचनाओं में उपन्यास विद्या सर्वाधिक प्रभावशाली रही है आपके द्वारा रचित उपन्यास, साहित्य व समाज के बीच एक सुदृढ़ सम्बन्ध कायम करते हैं। उपन्यास में तो वैसे भी हमें सामाजिक जीवन एवं मूल्यों के दर्शन होते हैं।

“साहित्य और समाज के सम्बन्धों की एक सुष्ठ और नियमित परम्परा है और दोनों ही एक दूसरे के मानदण्डों, मूल्यों और विशिष्टताओं से प्रभाव ग्रहण करते हैं। अस्तु यह कहा जा सकता है कि सामाजिक मूल्यों की सजीव अभिव्यक्ति उपन्यास विद्या में

1. संपादक — आशुतोष कुमार सिंह : डॉ० भगवतीशरण मिश्र के साक्षात्कार पृ० 80

2. वही पृ० 95

उपलब्ध होती है । और चूंकि राजनीति, अर्थनीति और सांस्कृतिक चेतना से निरपेक्ष विद्या उपन्यास नहीं हैं । इसलिए यानुरूप राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों की अभिव्यजना उपन्यासों में उपलब्ध होती है ।”

इस रूप में आपके उपन्यासों में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आध्यात्मिक चेतना आद्योपान्त दिखाई देती है ।

एक उपन्यासकार के रूप में आप यथार्थ जीवन बोध को स्वीकारते हैं तथा अपनी कृतियों में आन्तरिक ईमानदारी के साथ उसका प्रस्तुतीकरण करते हैं । अपने जीवन दर्शन को उपन्यास की मूल कथा के साथ संस्कार देते हुए चलना तथा उसके साथ-साथ पाठकों को भी प्रेरणा देना आपके उपन्यासों की तथा आपके शिल्प की विशेषता है ।

मिश्र जी के व्यक्तित्व की विविधता को उनकी कृतियों में भी देखा जा सकता है । हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, भोजपुरी तथा मैथिली भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण आपकी कृतियों में भारत की विविधता में एकता वाली संस्कृति के दर्शन होते हैं । सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोने का सार्थक प्रयास आपकी कृतियों में दिखाई देता है ।

आपके साहित्यिक योगदान को जानने के लिये कृतियों पर एक दृष्टि आवश्यक है ।

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	विद्या	प्रकाशन	वर्ष
1.	तैरता हुआ ताज	कहानी संग्रह	राज पंकाशन पटना	1964
2.	सोनार धारा	कहानी संग्रह	वही	1966

1. डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना
(पृ० 194) प्रथम संस्करण जुलाई 1976

3.	शीशे का शैतान	कविता संग्रह	राज प्रकाश पटना	1966
4.	रंग इन्द्रधनुष क	कविता संग्रह	बिहार ग्रंथ कुटीर	1967
5.	मुझे शिकायत है	ललित निबन्ध	राज प्रकाश पटना	1967
6.	एहसासों की एक शाम कहानी संग्रह		राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली	1969
7.	मूर्ख बंजारा	सामान्य	राजपाल एंड संस नई दिल्ली	1969
8.	मि० मुखर्जी मजिस्ट्रेट बने	हास्य व्यंग्य	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली	1969
9.	बाल सेना	उपन्यास	राजपाल एंड संस नई दिल्ली	1970
10.	हाथी का गुरुतित्तर	बाल साहित्य	बाल भारती लखनऊ	1971
11.	कुदाल पंडित	बाल साहित्य	बाल भारती, लखनऊ	1972
12.	नाग नाचे झूम-झूम	बाल साहित्य	बाल भारती, लखनऊ	1973
13.	नागों के देश में	बाल साहित्य	बिहार ग्रंथ कुटीर	1978
14.	एकला चलो रे	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1981
15.	शापित लोग	कहानी संग्रह	किताब घर, दिल्ली	1981
16.	जिलाधीश की वापसी	कहानी संग्रह	कला प्रकाशन, नई दिल्ली	1981
17.	सूरज के आने तक	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1982
18.	ज्ञानभरी कहानियां	बाल साहित्य	विद्या प्रकाश नई दिल्ली	1982

19.	गंगा-गंगा कितना पानी ललित निबन्ध	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	1982
20.	बंधक आत्माएँ	तांत्रिक एवं आध्यात्मिक प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली	1982
21.	नदी नहीं गुजरती	उपन्यास राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1983
22.	तीसरा कमरा	उपन्यास किताब घर नई दिल्ली	1983
23.	मौसम कालीन कहानियाँ कहानी संग्रह	पराग प्रकाशन नई दिल्ली	1983
24.	प्रेरक कहानियाँ	बाल साहित्य विद्या प्रकाशन नई दिल्ली	1983
25.	ऊँचाईयो का शिखर	कहानी संग्रह पराग प्रकाशन नई दिल्ली	1984
26.	राह के पत्थर	कहानी संग्रह पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली	1984
27.	वलिदान की बकरी	प्रौढ़ साहित्य राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1984
28.	काला अक्षर	प्रौढ़ साहित्य राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1984
29.	पहला सूरज	उपन्यास राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1985
30.	काँच के गुड्डे	कहानी संग्रह वैशाली प्रकाशन, नई दिल्ली	1985
31.	पवनपुत्र	उपन्यास राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1986
32.	चुकने का दर्द	कहानी संग्रह अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली	1986
33.	परियों के देश में	बाल साहित्य राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1987
34.	आदर्श भाई लक्ष्मण	बाल साहित्य ज्ञान प्रकाशन पटना	1987
35.	कवयो वदन्ति	संस्कृत आधारित निबन्ध बिहार ग्रन्थ कुटीर पटना	1987

36.	रामानुज लक्ष्मण	बाल साहित्य	ज्ञान प्रकाशन पटना	1988
37.	बाल महाभारत	बाल साहित्य	बिहार ग्रन्थ कुटीर पटना	1988
38.	बाल रामायण	बाल साहित्य	बिहार ग्रन्थ कुटीर पटना	1988
39.	बाल सप्तशती	बाल साहित्य	साहनी प्रकाशन पटना	1988
40.	बिहार के तीर्थ भाग-1 सामान्य		राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1988
41.	बिहार के तीर्थ भाग-2 सामान्य		राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1988
42.	रामदूत हनुमान	सामान्य	कुराल प्रकाशन पटना	1988
43.	आम के आम	प्रौढ़ साहित्य	किताब घर नई दिल्ली	1989
	गुठलियों के दाम			
44.	हमारे होनहार	प्रौढ़ साहित्य	किताब घर नई दिल्ली	1989
45.	चोरनी बंदरिया	प्रौढ़ साहित्य	किताब घर नई दिल्ली	1989
46.	शिरडी के साँई	खण्ड काव्य	कुराल प्रकाशन पटना	1989
47.	एक और अहल्या	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1990
48.	पुरुषोत्तम	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1990
49.	धरती का सपना	बाल साहित्य	प्रकाश विभाग पटियाला हा0दिल्ली	1990
50.	यदा यदा हि धर्मस्य	निबन्ध संग्रह	प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली	1991
51.	वृक्ष का चिन्तन	पर्यावरण साहित्य	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1991
52.	पीताम्बरा	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1993

53.	लक्ष्मण रेखा	उपन्यास	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	1993
54.	का के लागू पांव	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1993
55.	गोविन्द गाथा	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1996
56.	प्रथम पुरुष	उपन्यास	प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली	1996
57.	देख कबीरा रोया	उपन्यास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	1997
58.	शान्ति दूत	उपन्यास	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	1998
59.	अथ मुख्यमंत्री कथा	उपन्यास	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	1999
60.	मामा भांजा भाग-1	बाल कहानियाँ	आत्माराम एंड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली	2001
61.	मामा भांजा भाग-2	बाल कहानियाँ	आत्माराम एंड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली	2001
62.	पावक	उपन्यास	आत्माराम एंड संस दिल्ली	2002
63.	अग्निपुरुष	उपन्यास	आत्माराम एंड संस दिल्ली	2002

अंग्रेजी भाषा में लेखन —

1.	लोकल टैक्सेशन इन डेवलपिंग इकॉनमी	न्यू लाईट पब्लिकेशन नई दिल्ली	1973
2.	इन डिफेंस ऑफ ननसेन्सर्स पर्सनल एसेज	रिगल बिल्डिंग नई दिल्ली	1984
3.	द गीता ऑल रीडर्स रिजॉल्यूड	प्रकाशाधीन	

संपादक के रूप में कार्यानुभव -

सरकारी प्रकाशः

- | | | |
|----|---------------------|---------------|
| 1. | अकादमी पत्रिका | मासिक |
| 2. | वयस्क शिक्षा समाचार | दैनिक बुलेटिन |
| 3. | राजभाषा पत्रिका | मासिक |

गैर सरकारी प्रकाशन

1. आख्यायिनी मासिक (पॉच अंकों में ही अपार लोकप्रियता)
2. पं० रघुनाथ का अभिनन्दन संपादन 1987 आर्यसमिति पटना
3. खुले किताब के पन्ने संपादन आत्माराम एंड सन्स नई दिल्ली 1999

अंग्रेजी लेखन -

अनेक वर्षों तक "दी इंडियन नेशन" के रविदासरीय कॉलम

'इन लाइटर वेन' में नियमित लेखन

पत्र पत्रिकाओं में हिन्दी लेखन

मैट्रिकुलेशन स्तर से ही मिश्र जी ने विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में निबंध, कहानियाँ एवं संस्मरण आदि लिखे हैं उन पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार हैं ।

1. धर्मयुग
2. सारिका
3. कादम्बिनी

4. नवनीत
5. पराग
6. नन्दन
7. इंडिया टुडे
8. वागर्थआदि ।

कृतियों का अनुवाद –

मिश्र जी की कृतियाँ इतनी लोकप्रिय हैं कि उनका अनुवाद दूसरी भाषाओं में भी हुआ है –

1. बंगला में “एक और अहल्या” का अनुवाद
2. तमिल भाषा में “पहला सूरज” का अनुवाद
3. अंग्रेजी भाषा में “प्रथम पुरुष” और “पुरुषोत्तम” का अनुवाद
4. एक उर्दू पत्रिका में “पवनपुत्र” का धारावाहिक प्रकाशन
5. पंजाबी भाषा में कई कहानियाँ अनूदित और प्रकाशित हुई हैं ।

विशेष –

पेन्टा मीडिया चेन्नई से इन्टरनेट पर “शान्ति दूत” (उपन्यास) को धारावाहिक के रूप में प्रकाशित किया गया है ।

विदेश यात्रा

छटवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर मॉरिशस में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के रूप में विदेश यात्रा की ।

डॉ० मिश्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं । साहित्य जगत में आपके द्वारा किया गया योगदान प्रशंसनीय है । साहित्य जगत आपके उत्कृष्ट 'कार्य' के लिये सदैव आपका ऋणी रहेगा ।

डॉ० मिश्र की कृतियों पर शोध —

डॉ० भगवतीशरण मिश्र पर अनेक विश्वविद्यालयों से विद्यार्थियों ने एम.फिल व पी. एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है । इन विश्वविद्यालयों में प्रमुख हैं —

1. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
2. जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
3. पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला
4. मराठवाडा विश्वविद्यालय
5. तमिलनाडु के कई विश्वविद्यालय
6. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
7. पटना विश्वविद्यालय, पटना
8. मुम्बई के कई विश्वविद्यालय

डॉ० मिश्र की पुस्तकें कई विश्वविद्यालयों द्वारा बी०ए० एवमं एम०ए० के पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गयी हैं एक यथार्थवादी साहित्यकार के रूप में पुराने और नये के मध्य निरन्तर विस्तृत होती दूरी को मानवीय जीवन दर्शन के द्वारा समाप्त करने का प्रयास आपके द्वारा किया गया है । मनुष्य के विकास के लिए सांस्कृतिक बोध को उसके विवेक को मूल आधार मानकर सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना को यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया गया है । आपकी यही विशेषता आपको श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में देश के कुछ एक स्थापित लेखकों की अगली पंक्ति में प्रतिष्ठित करती हैं ।

पंचम् अध्याय

डॉ० भगवती शरण मिश्र के उपन्यास सहित्य का
आलोचनात्मक विश्लेषण

- (1) नदी नहीं मुड़ती
- (2) पहला सूरज
- (3) पवन पुत्र
- (4) प्रथम पुरुष
- (5) पुरुषोत्तम
- (6) पातांबरा
- (7) का के लांगू पांव
- (8) गोविन्द गाथा
- (9) शांतिदूत
- (10) देख कबीरा रोया
- (11) अथ मुख्यमंत्री कथा
- (12) पावक
- (13) अग्नि पुरुष

हिन्दी कथा साहित्य पाश्चात्य कथा साहित्य से अपने प्रारंभ से ही प्रभावित रहा है। यह भी सत्य है कि उपन्यासकारों ने अपनी कृति के लिए यथार्थ को आधार के रूप में प्रयोग किया है। “हिन्दी साहित्य में ही नहीं समूचे भारतीय साहित्य तथा कला-जगत में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश के लिए बीसवीं शताब्दी में उभरने वाली नई राष्ट्रीय चेतना तथा मार्क्सवादी समाजवादी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है।” तत्कालीन उपन्यास भारतीय नवजागरण से प्रभावित दिखाई देते हैं। समय के साथ-2 यूरोपीय कथा साहित्य के साथ-2 कथा साहित्य में भी परिवर्तन होता आया है भारतीय उपन्यासकारों में हम भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की स्पष्ट गूँज देख सकते हैं। अज्ञेय अपने विषय में स्वयं लिखते हुए कहते हैं – “किन्तु मैं बदलना चाहूँ तो क्या संभव है। न सांस्कृतिक परम्परा न संवेदना ही चाहने भर से पाली जा सकती है, न संकल्प मात्र में दोनों में से किसी को छोड़ा जा सकता है। बिना रचनाशील व्यक्तित्व के पंगु किए उनके संबंध में भारत भूषण अग्रवाल की टिप्पणी है – पश्चिम की ज्ञान राशि और आधुनिक दृष्टि से संपन्न होकर भी उन्होंने भारतीय संस्कृति के स्थायी आधार नहीं बिसराए हैं।” यही स्थिति श्री लाल शुक्ल और फणीश्वरनाथ रेणु की भी है इनकी वस्तु संवेदना तो पूरी तरह भारतीय जीवन-यथार्थ की गहरी अनुभूति पर आधृत है।² उपन्यास का ढाँचा वही रहा किन्तु उसकी आत्मा में, उसमें व्यक्त जीवन यथार्थ समय के साथ-2 परिवर्तित होता रहा है। मनुष्य के जीवन में निरन्तर परिवर्तनशील यथार्थ को चित्रित कर भविष्य की संभावनाओं को सामने लाना ही उपन्यासकार का मुख्य कर्तव्य है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार उपन्यास का अर्थ है वह कृति जिसको पढ़कर लगे कि वह हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है। “न्यू इंगलिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहा गया है वृहत् आकार का गद्य आख्यान या वृत्तांत जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद, पृ० 161

2. नंद किशोर नवल : कसौटी, पृ० 13

प्रतिनिधित्व दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है।¹ इस रूप में उपन्यास जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता है सामाजिक यथार्थ के प्रस्तुतीकरण से लेकर रचनात्मक यथार्थवाद तक उपन्यास ने अपने अन्दर अनेक प्रकार के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। यथार्थ के इस प्रस्तुतीकरण के क्रम में उपन्यास साहित्य ने मानव जीवन के अनेक पक्षों का अंकन बहुत खूबसूरती से किया है। प्रेमचन्द का विचार है कि “ साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गयी हो जिसकी प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाईयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हो।”² इस रूप में उपन्यास साहित्य में जीवन के यथार्थ को रचनाकारों के विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है तथा प्राचीनता को वर्तमान के साथ लेकर भविष्य की संभावनाओं का चित्र प्रस्तुत किया है। डॉ० भगवती शरण मिश्र ने अपने उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि भारतीय साहित्यकारों ने यथार्थ को अपनी दृष्टि से देखा व भारतीय संस्कृति, भारतीय मूल्यों व परम्पराओं को ध्यान में रखकर परोसा।

मिश्र जी, ने भी अपने उपन्यासों में भारतीय अस्मिता को बरकरार रखा है। उनके उपन्यास साहित्य के आलोचनात्मक विश्लेषण में हम यथार्थवाद को उसके समग्र रूप में मानववाद, अतिमानववाद, सांस्कृतिक चेतना, रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद में देखेंगे।

नदी नहीं मुड़ती

हिन्दी के प्रख्यात कथा शिल्पी डॉ० भगवती शरण मिश्र की प्रथम औपन्यासिक कृति ‘नदी नहीं मुड़ती’ एक सामाजिक उपन्यास है। एक महत्वाकांक्षी स्त्री के जीवन के यथार्थ पक्ष

-
1. सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोष,
 2. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ० 9

को उद्घाटित करने वाली कथा को इसमें प्रस्तुत किया गया है। इस कथा के माध्यम से कवि ने आध्यात्मिकता, धर्म, सदाचार, भौतिकता जैसे बिंदुओं पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

उपन्यास की कथा का विकास फ्लैश बैक में होता है। उपन्यास की नायिका सुषमा, प्रो० सागर चौधरी से चार-पांच वर्ष पश्चात पुनः मिलती हैं और उनसे मिलकर उसे अपने जीवन की वास्तविकता का ज्ञान होता है। वह प्रो० चौधरी को उससे विवाह के लिए आग्रह करती है किन्तु प्रो० चौधरी के मना करने पर वह अपने होस्टल में लौटकर अतीत की यादों में खो जाती है।

दरभंगा जिले के सीतामढ़ी के पास एक छोटे से गाँव में सुषमा का बचपन बीता था। प्रारम्भिक शिक्षा के नाम पर सुषमा ने अमरकोश और सारस्वत चंद्रिका ही पढ़ा। मधुर कंठ होने के साथ-2 मधुवनी पेटिंग्स में भी वह कुशल थी। युवा होते-2 सुषमा के रूप और गुणों की प्रशंसा सर्वत्र फैल गई जिसे सुनकर विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आए जिसमें से एक बूढ़े श्रोती पंडित थे। सुषमा उन्हें मार पीट कर भगा देती है। इसके बाद सुषमा की माँ, अरुणा अनचाहे अतिथियों से बचने के लिए सुषमा को उसके फुफेरे भाई के पास दरभंगा भेज देती है। अपनी भाभी की मदद से सुषमा स्नातक हो जाती है। उसके स्नातक होते ही अरुणा को उसकी शादी की चिन्ता होने लगती है वह अपने मुँहबोले भाई मुरारी पंडित को सुषमा को वापस लाने भेज देती हैं।

मुरारी पंडित के साथ सुषमा एक दिन मलेच्छमर्दिनी के मंदिर जाती है जहाँ उसकी मुलाकात प्रो० सागर चौधरी से होती है। प्रो० सागर धर्म, सदाचार, पूजापाठ इत्यादि विषयों पर सुषमा से वार्तालाप करते हैं। सुषमा कर्मकाण्ड, धर्म व पूजापाठ में विश्वास नहीं करती वह प्रो० सागर चौधरी से केवल सदाचार अपनाने के अपने निश्चय के बारे में बताती है। मंदिर में मुख्यमंत्री को देखकर सुषमा मन ही मन मुख्यमंत्री बनने की कामना करती है। प्रो०

सागर चौधरी से उसकी मुलाकात अक्सर मंदिर में होने लगी प्रोफेसर धर्म और कर्म दोनों को मनुष्य के लिए आवश्यक बताते किन्तु सुषमा कहती कि व्यक्ति अपने बाहुबल से सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

एक दिन मुरारी पंडित सुषमा को उनके दरभंगा आने के प्रयोजन के विषय में बताते हैं तो सुषमा विवाह से इंकार कर देती है। सुषमा के भाई का जूनियर वकील नीरज भी मन ही मन सुषमा से विवाह की इच्छा रखता है। सुषमा की भाभी सुषमा से इस संबंध में जब बात करती है तो सुषमा नाराज हो जाती है। वह अपने भाई का घर छोड़कर गाँव जाने लगती हैं। चलते समय मलेच्छमर्दिनी के मंदिर में से प्रो० चौधरी उसे अपने घर ले जाते हैं और वह गाँव जाने का विचार त्यागकर वहीं रुक जाती है प्रोफेसर व उनकी माँ सुषमा को अपनी पुत्र वधू बनाना चाहते हैं। सुषमा प्रोफेसर के प्रति आकर्षित है। जब वह प्रोफेसर से अपने मन की बात कहती है तो प्रोफेसर सुषमा से विवाह के लिए इंकार कर देते हैं। इस पर सुषमा उनका घर त्यागकर राजनीति में प्रवेश का निर्णय ले लेती है। प्रो० चौधरी उसे समझाते हैं कि राजनीति की राह फिसलन भरी है किन्तु सुषमा एक ही शर्त पर वापस लौटने की बात कहती है वह हैं प्रो० चौधरी से विवाह।

पाँच वर्षों तक राजनीति के क्षेत्र में सुषमा का खूब मानसिक व शारीरिक शोषण हुआ। अपने-अपने स्वार्थ के लिए राजनीतिज्ञों ने सुषमा को सब्जबाग उसके रूप और गुणों का लान उठाया। सुषमा की महत्वाकांक्षाओं का महल कब टूट कर बिखर गया उसे पता भी न चला। इतनी शक्ति भी अब उसमें नहीं थी कि वह पुनः नवसृजित कर सके एक सहारे की तलाश में वह प्रो० चौधरी से मिलती है किन्तु प्रोफेसर कहते हैं कि वह इतना आगे बढ़ चुकी है कि उसका लौटना नामुमकिन है क्योंकि नदी नहीं मुड़ती। इसी के साथ उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

मिश्र जी के उपन्यास 'नदी नहीं मुड़ती' कथा जितनी संक्षिप्त है उतनी ही उद्देश्यपरक एवं यथार्थवादी है। सामाजिक जीवन की अनेक विसंगतियों को इस उपन्यास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। सुषमा से विवाह के लिए उसके पिता से भी बड़े श्रोती पंडित आते हैं। श्रोती पंडित अनेक विवाह कर सकते थे तथा अपनी नई ससुराल में वह केवल 1 या 2 वर्ष ही रहते थे तथा फिर विवाह करने के लिए घर से निकल पड़ते थे। इस कुप्रथा के परिणाम भी कथाकार स्पष्ट करता हुआ कहता है "इस अनमेल और बाल-विवाह के कारण ही मिथिला में उन दिनों विधवाओं, खासकर बाल-विधवाओं की संख्या काफी होती. इस प्रथा के पीछे अंधविश्वास के साथ-2 गरीबी का हाथ कम नहीं था।"¹

आज की युवा पीढ़ी धर्म एवं ईश्वर पर विश्वास नहीं रखती सुषमा भी ऐसी ही पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली नायिका है। प्रो० सागर चौधरी के माध्यम से लेखक समाज को धर्म एवं कर्म के समन्वय से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। गीता का आधार लेते हुए वह कहते हैं कि "केवल कर्म ही नहीं देता। गीता से बड़ा कर्मयोग का ग्रन्थ क्या होगा? वह भी कहा है कि कर्म ही तक तुम्हारा अधिकार बनता है फल किन्हीं और हाथों में है। तो सच्चा अध्यवसायी तो वही है जो कर्म भी करे और फल जिन हाथों में है, उनकी भी चिन्ता कर ले।"² किन्तु सुषमा इस बात को नहीं स्वीकारती।

प्रचीन भारत के वैभव के नष्ट होने का कारण भी लेखक ने सच्ची धार्मिक भावना, आस्था एवं श्रद्धा का अभाव बताया है। कथा का जो मूल उद्देश्य है लेखक ने उसको बड़ी ही कुशलता से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। मिश्र जी केवल भौतिकवाद के पक्षधर नहीं हैं उनका प्रयास है कि मनुष्य सांस्कृतिक अध्यात्मिक चेतना को ग्रहण करे क्योंकि वही उसकी सफलता की कुंजी है। अरविंद भी मानते हैं कि अब हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : नदी नहीं मुड़ती, पृ० 31
2. वही पृ० 59

की जो विशाल प्रस्थापना करनी है उसमें आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक एकता की एक महत्तर बाह्य अभिव्यक्ति निश्चय ही एक प्रमुख उद्देश्य होगी।शेष मनुष्य जाति के साथ एक ऐसी समस्वरता व एकता जिसमें हमारी आध्यात्मिक और भौतिक स्वाधीनता सुरक्षित रहेगी।¹

रचनाकार की यह विशेषता है कि धर्म एवं कर्म आस्था एवं पुरुषार्थ पर उन्होंने प्र० सागर एवं सुषमा के मध्य जो लम्बा वार्तालाप है वह बोझिल नहीं है उसमें नवीनता एवं रोचकता का समावेश है।

उपन्यास सामाजिक है किन्तु इसके सभी पात्र काल्पनिक होते हुए भी अपने आसपास के जीवन से जुड़े यथार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। अपनी कलाकृति से संबंधित उद्देश्य को पाठकों के समक्ष पूरी जीवंतता व प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक है कि लेखक उपदेश देता हुआ प्रतीत न हो अपितु ऐसे पात्रों का सृजन करे जो उसके उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक हों।

“यथार्थवादी लेखक का काम उपदेश झाड़ना नहीं है बल्कि जीवन का एक वास्तविक और भरा पूरा चित्र प्रस्तुत करता है। उसे हाड़ और माँस के स्त्री-पुरुषों का सृजन करना चाहिए कठपुतलियों का नहीं (लेखक के) विचार पात्रों की आवाज में ही प्रकट होने चाहिए इससे उस पात्र का निजी व्यक्तित्व भी उभरता है और लेखक को अपनी बात कहने का अवसर मिल जाता है।”²

इस रूप में ‘नदी नहीं मुड़ती’ उपन्यास के पात्र लेखक के विचारों को प्रभावशाली रूप से पाठकों तक पहुँचाते हैं। उपन्यास का नायक प्र० सागर चौधरी लेखक का ही प्रतिबिम्ब

-
1. श्री अरविन्द : भारतीय संस्कृति के आधार, पृ० 50
 2. संपादक महावीर अग्रवाल : सापेक्ष पृ० 18 मार्च 84

दिखाई देता है। नायिका सुषमा भारत की उस पथभ्रष्ट पीढ़ी की प्रतिनिधि है जो सफलता के लिए शार्टकट की तलाश में रहती है।

उपन्यास के अन्य पात्र भी सामान्य हैं तथा कथानक के विकास में सहायक हुए हैं। कथाकार ने चरित्रों का चित्रण यथार्थ की भूमि पर ही किया है "आजकल चरित्र-चित्रण की सबसे उत्कृष्ट कला यह है कि अपने पात्रों को प्राण शक्ति से सम्पन्न करके लेखक उनको जीवन की रंग स्थली में सुख-दुख से आँख मिचौनी करने के लिए छोड़ दे।"¹

'नदी नहीं मुड़ती' के पात्र भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं सुषमा के चरित्र में कथानक के विकास के साथ-2 कब परिवर्तन हो जाता है इसका भान ही नहीं होता एक स्थान पर वह कहती है - "मुझे अपने आप में विश्वास है और जब तक मेरा आत्मविश्वास जीवित है कोई मेरा शोषण नहीं कर सकता।"² यही सुषमा जब अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने के लिए सदाचार त्याग कर देती है तब प्रो० चौधरी के समझाने पर वह कहती है कि इच्छा की पूर्ति के लिए यदि अपने उसूलों को ताक पर रखना पड़े तो उसमें कोई बुराई नहीं है।

"तो इसका मतलब तुमने अब तक के अपने उसूलों को ताक पर रख दिया?"

"रख दिया कुछ देर के लिए।"³

उपन्यास के अन्य गौण पात्र जैसे पंडित मुरारी, अरुणा सुषमा का भाई व भाभी, नीरज श्रोती पंडित इत्यादि सभी पात्रों में स्वाभाविकता है।

उपन्यास के संवाद एवं कथोपकथन कथा के विकास में सहायक होने के साथ-2 पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करने में समर्थ हैं। सुषमा, प्रो० चौधरी व मुरारी पंडित के वार्तालाप

-
1. प्रतापपाल शर्मा : प्रसाद के उपन्यास, पृ० 146
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : नदी नहीं मुड़ती पृ० 110
 3. वही पृ० 172

सुषमा के नास्तिक व प्रो० चौधरी की आस्तिकता को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं। कुछ स्थानों पर संवाद कुछ विस्तार पा गये हैं कि उनका विषय दर्शन, धर्म, अध्यात्म जैसे बिन्दु रहे हैं संवाद इतने रोचक हैं कि एक ही बिन्दु पर दो तीन पृष्ठों तक के कथोपकथन में बोझिलता तथा नीरसता प्रतीत नहीं होती। सुषमा के चरित्र की प्रखरता को स्पष्ट करने वाले इस संवाद को देखिये—

“यही सुषमा है ?” प्रोफेसर सागर चौधरी ने आश्चर्य से पूछा

“हैं।”

“हैं। पर तुम लगती नहीं हो वैसी उग्र रुपा।”

“तुम तो सरस्वती के विग्रह की तरह सौम्य—शान्त दीखती हो।”

उपन्यास के पात्र स्वाभाविक एवं व्यावहारिक कथन कहते हैं प्रभावशाली होने के साथ—2 संवाद वातावरण की सृष्टि में भी सहायक हैं।

“मन को नहीं बँधो तो मन तुम्हें भटकायेगा ही। दिवा स्वप्नों की मरीचिका के पीछे भागता, मरू भूमि का मृग बन आया। तुम्हारा मन फिर तुम्हें कहीं का न छोड़ेगा। भटका—भटकाकर वह समाप्त ही कर देगा तुम्हें, लुभावने सपनों की सुनहली रेत में।”

इस प्रकार मिश्र जी, उपन्यास “नदी नहीं मुड़ती” के संवाद उपन्यास के उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

अपने सभी उपन्यासों में मिश्र जी, ने भारतीय समाज और संस्कृति को पूरी भारतीयता के साथ चित्रित किया है ‘नदी नहीं मुड़ती’ उपन्यास भारतीय जीवन के विविध रंगों

को उनकी पूरी चित्रात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है। ग्रामीण अंचल का एक दृश्य देखिये।

“बचपन बीता जा गाँव के पास की अमराई में आम और बरगद के पेड़ों पर झूला झूलते, बगल में बहती पतली नदी की शोख चंचल लहरों से खिलवाड़ करते दरभंगा जिले का एक छोटा सा गाँव।”¹

ग्रामीण वातावरण का यथार्थ चित्र मिश्र जी ने उपन्यास में किया है। बैलगाड़ी के कीचड़ में धँसने के दृश्य का यथार्थ वर्णन करते हुए वे कहते हैं।

“घुटने और जाँघ भर पानी में उतर कर कभी वह बैलों की पूँछ मरोड़ अपने कंठ से लगाकर धत्-2 की परिचित आवाज निकालता तो कभी कमर से झुककर गाड़ी के पहियों में हाथ लगा बैलों को सहयोग करता।”²

कथा के अनुसार वातावरण का चित्रण होने से उपन्यास में स्वाभाविकता एवं संजीवता आ गई है। “उपन्यास मावन जीवन की व्यापक अनुभूतियों को यथार्थ द्वारा मुखर करता है। इसीलिए साधारणतया उसमें न तो काव्य ही घनीभूत होती है और न कहानी की गतिशीलता; न नाटक का रसमय नाट्य होता है और न निबन्धों की सी शिथिलता। परन्तु इन सबका सम्यक आविष्कार उसमें अवश्य उपस्थित रहता है इन सबके बावजूद उसमें सरसता, रोचकता एवं भावुकता को प्रकट करने का काम शैली करती है। वस्तुतः शैली पर ही उपन्यास की अत्यधिक सफलता निर्भर करती है।”³ मिश्र जी का उपन्यास ‘नदी नहीं मुड़ती’ जो कि पूर्व दीप्ति शैली (फलैश बैक) में लिखा गया है प्रभावी उपन्यास है। इस शैली का प्रयोग करके उपन्यासकार ने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

जीवन को उपयुक्त दर्शन व दिशा प्रदान करने के लिए तथा अपने उद्देश्य को

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : नदी नहीं मुड़ती पृ० 14
2. वही पृ० 16
3. डॉ० दंगल झाल्टे : उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान पृ० 82

पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए विश्लेषणात्मक शैली का भी प्रयोग है।

विश्लेषणात्मक शैली का एक उदाहरण देखिए —

“दरअसल सदाचार ही धर्म है — आचार प्रवरो धर्म :। अगर तुम मात्र सदाचार पर अड़ी रहो तो तुम पूरी तरह धार्मिक हो। पर कठिनाई यह है कि यह सदाचार अकेले नहीं सधता इस पूजा-पाठ और आराधना के सम्बल की आवश्यकता पड़ती ही है। केवल सदाचारी विचलित हो सकता है। भटक सकता है। आराधना उसे बल देती है। अन्तरिक्ष की सूक्ष्म शक्तियाँ आराधक के मार्ग को निष्कण्टक करती है।”¹

वास्तव में किसी भी उपन्यास की सफलता बहुत कुछ उसकी शैली पर निर्भर करती है। इस रूप में नदी नहीं मुड़ती को एक सफल उपन्यास कहा जा सकता है।

जिस उद्देश्य को लेकर लेखक ने इस रचना का निर्माण किया उसे पूर्ण करने में लेखक सफल रहा है। पुस्तक के पिछले पृष्ठ पर जैसा कि लेखक ने स्वयं कहा है “नदी नहीं मुड़ती” कहानी है एक अहंकार प्रिय नारी की जिसका अहम् उसे आकांक्षा की अन्धी गलियों में भटका मारता है जिसकी तथाकथित प्रतिभा उसकी लालसा को हवा दे उसके जीवन को अनजानी आँधियों के हवाले कर देती है।

पर ‘नदी नहीं मुड़ती’ मात्र कहानी अन्धकार कहानी नहीं अन्धकारग्रस्त आधुनिक जीवन को अध्यात्म और आस्था का आलोक संदेश है— विघटनशील जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना का सहज प्रयास।”²

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : नदी नहीं मुड़ती पृ० 80
 2. दली पृ० भाग

समाज से जिस तेजी से श्रद्धा, आस्था, विश्वास जैसे मानवीय मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं उससे मनुष्य के जीवन में एक अभाव एक अतृप्ति आ गई है। जिन आधारों को लेकर महापुरुषों ने अपने चरित्रों का निर्माण किया है उन्हीं आधारों को आज की पीढ़ी ने अंधविश्वास एवं आडम्बर कहकर ध्वस्त कर दिया है मनुष्य के जीवन का जो वास्तविक सत्य है चरम सुख व आनन्द उसको आज की पीढ़ी ने भुला दिया है इस यथार्थवादी कृति के माध्यम से उपन्यासकार ने मनुष्य के जीवन वास्तविक सत्य को उसके सम्मुख रखने का सराहनीय प्रयास किया है।

पहला सूरज :-

डॉ० भगवतीशरण मिश्र की यह औपन्यासिक कृति एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें मराठा वीर छत्रपति शिवाजी को केन्द्र में रखकर कथा का निर्माण हुआ है। एक महामानव का निर्माण किस प्रकार होता है इस तथ्य को बहुत ही कुशलता से उपन्यास में चित्रित किया गया है। लेखक के शब्दों में “यह इतिहास नहीं ऐतिहासिक उपन्यास है। यथार्थ के बहुत समीप रखने के प्रयास के बावजूद कल्पना से इसे सर्वथा काटा भी नहीं जा सका है। कल्पना की पुट रोचकता ओर कथा-प्रवाह की दृष्टि से आवश्यक हो गई है। अपनी ओर से इतना ही कि यथार्थ को यथासाध्य अच्छूता रखने का प्रयास किया गया है और प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़ने-मोड़ने का कोई प्रयास नहीं हुआ है।”¹ इस प्रकार यह उपन्यास यथासंभव यथार्थपरक है। उपन्यास की कथा शिवाजी के दादा मालो जी से प्रारम्भ होती है जो राज्य में अकाल पड़ जाने पर देवी से जल वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं देवी प्रसन्न होती है जलाशय निर्माण के लिए आदेश प्रदान करने के साथ ही जल वर्षण का आश्वासन भी देती हैं इसके पश्चात भगवान शिव मालों जी के स्वप्न में आकर उनके पौत्र

के रूप में अपने अंश के रूप में प्रकट होने की बात कहते हैं। इस रहस्य को अपनी पत्नी को बता मालोजी संसार से कूच कर जाते हैं। मालोजी के पुत्र शाहजी अपने पिता के समान ही वीर एवं धार्मिक होते हैं। बीजापुर की मुगल सेना अहमदनगर पर शाह जी को सबक सिखाने के उद्देश्य से आक्रमण कर देती है मंदिरों में लूट-पाट होती है मूर्तियाँ तोड़ी जाती है। जब शाहजी इस सबको बताने अपनी माता के पास आते हैं तो माता उनके पुत्र के रूप में शिव के अंश के जन्म लेने की बात बताकर धिर निद्रा में सो जाती है।

कुछ समय पश्चात शाहजी की पत्नी जीजाबाई शिवनेर के दुर्ग में बालक को जन्म देती हैं। मराठा सरदार दादाजी कोंडदेव इस सूचना से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। नवजात के पिता शाहजी के पास सूचना भिजाई जाती है किन्तु शाहजी नहीं आते हैं दादा कोंडदेव शाहजी के न आने से चिन्तित होते हैं उसी समय मालोजी के अंग्रेज मित्र फादर स्मिथ दादा कोंडदेव को यह सूचना देते हैं कि शाह जी ने दूसरा विवाह कर लिया है और अब वे नहीं आयेंगे। दादा इस बात को स्वीकार नहीं करते किन्तु एक घुड़सवार द्वारा लाए गये शाहजी के पत्र से उन्हें इस बात की पुष्टि हो जाती है। दादा कोंडदेव इस बात को जीजाबाई को नहीं बताते हैं दूसरी ओर जीजाबाई अपने पुत्र के भविष्य को लेकर रंगीन कल्पनाएँ करने लगती हैं। सर्वप्रथम बालक शिवा को लेकर जीजाबाई अपनी कुलदेवी तुलजा भवानी के मंदिर में जा आशीर्वाद लेती हैं। जीजाबाई के संस्कारों एवं दादा कोंडदेव के प्रशिक्षण में बढ़ते हुए शिवा एक वीर, पराक्रमी योद्धा बन जाते हैं मुगलों के साथ अनेक छोटे-बड़े युद्ध उन्होंने किए जिनमें उन्हें विजय ही प्राप्त हुई एक बार धोखे से अफज़ल खां उन्हें मारना चाहता था तो अपनी चतुराई से शिवाजी ने उसी का काम तमाम कर दिया। औरंगजेब के दरबारी मिर्जा

राजा जयसिंह जो शिवाजी के मित्र थे के कहने पर शिवाजी आगरा औरंगजेब से मिलने चले जाते हैं वहाँ उन्हें धाखे से बंदी बना लिया जाता है किन्तु फल की टोकरियों में बैठकर शिवाजी अपने पुत्र के साथ बच आते हैं। वापस आकर वे पुनः राज्य संगठित करते हैं तथा माता के कहने पर अपना राज्याभिषेक कराकर छत्रपति शिवाजी बन जाते हैं। सम्पूर्ण दक्षिण में उनका एकछत्र राज्य स्थापित हो जाता है।

पचास—इक्यावन वर्ष की अवस्था में शिवाजी रोगग्रस्त हो जाते हैं। उनको फादर स्मिथ की कही बात याद आ जाती है कि अपने पिता की तरह दो शादी न करना क्योंकि शिवाजी की पत्नी सोयराबाई द्वारा शिवाजी को विष दिया गया था जिसकी वजह से उनकी मृत्यु सम्मुख खड़ी थी उन्हें अपनी भूल का आभास होता है और इसी के साथ इस वीर की आँखें सदा सर्वदा के लिए बन्द हो जाती है। इसके साथ ही उपन्यास 'पहला सूरज' का अन्त होता है। उपन्यास की कथा में शिवाजी के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु पर्यन्त सभी घटनाओं का चित्रण किया है। लेखक की दृष्टि काल्पनिक कम यथार्थवादी अधिक रही है। यद्यपि बिना कल्पना के कथा साहित्य की रचना नहीं हो सकती है किन्तु यहाँ, तथ्य यथार्थ हैं केवल चित्रण में काल्पनिकता का सहारा लिया गया है लेखक ने अनेक प्रचीन एवं आधुनिक पुस्तकों से सामग्री एकत्र कर इस ऐतिहासिक उपन्यास का सर्जन किया है। "इस ग्रंथ के निर्माण में मैंने आधुनिक इतिहासकारों की पुस्तकों और उनकी अत्याधुनिक खोजों का जो सहारा लिया है सो लिया है पुरातन स्रोतों का भी भरपूर प्रयोग किया गया है।" कथानक में गति है प्रवहमानता है तथा पाठक को पूरी तरह बाँधे रखने का गुण भी है। कथानक में इतनी विविधता है कि पाठक को अनेक रसों का आस्वादन पढ़ते समय होता है। कथानक उपन्यास का आधार होता है जिस पर लेखक अपनी कल्पना शक्ति से इमारत खड़ी करता है इस रूप

में 'पहला सूरज' का आधार अत्यन्त सशक्त है।

उपन्यास के पात्रों में नायक हैं छत्रपति शिवाजी जिनके चरित्र में वीरता, साहस धैर्य के साथ धर्मपरायणता भी देखने को मिलती है। अपनी इस विशेषता के बारे में स्वयं शिवाजी कहते हैं " मैं केवल वेदों की रक्षा में ही नहीं, कुरान की सुरक्षा में भी विश्वास रखता हूँ। राम ही नहीं रहीम को भी मानता हूँ। मेरे लिए तो हिन्दुओं की चोटी जितनी प्रिय है उतनी ही, मुसलमानों की दाढ़ी भी "1 अपनी पत्नियों के अतिरिक्त शिवाजी सभी को माँ के सदृश ही समझते थे। एक बार उनकी फौज का एक नया सिपाही एक अत्यन्त रूपवती मुस्लिम लड़की को शिवाजी के सेवा में लाया। शिवाजी ने जब उस मुस्लिम लड़की को देखा तो उन्हें उसमें साक्षात् भवानी माँ प्रतीत हुई। लड़की जब शिवाजी के मुख से माँ का सम्बोधन पा उनके पैर छूने के लिए बढ़ी तो वे बोले – "मुझे स्वयं तुम्हारे चरणों में पड़ अपने इस नौकर की गुस्ताखी के लिए माफी मांगनी चाहिए। तुम भवानी हो मेरी माँ। माँ बच्चों के पैर नहीं छूती। बच्चे ही उसके पैरों में गिरते हैं। हाँ तुम जरा भी चिन्ता न करो तुम्हारी सुरक्षा का भार अब मेरे ऊपर है।"2

शिवाजी यद्यपि पुस्तकीय ज्ञान से वंचित रहे किन्तु अपनी माता द्वारा मौखिक रूप से प्राचीन भारतीय साहित्य की कथाओं के श्रवण से उन्हें अपने समृद्ध साहित्य का भी थोड़ा बहुत ज्ञान हो गया था। उनकी इस चारित्रिक विशेषता को स्पष्ट करते हुए गागा भट्ट कहते हैं ".....जिस तरह वीरता में आप अद्वितीय हैं उसी तरह विद्वता और ज्ञान में भी आप किसी से पीछे नहीं हैं। यह मणि कांचन संयोग दुर्लभ है राजन! धन्य है यह भारत भूमि जिसने आपके सदृश मानव रत्न को जन्म दिया।"3

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 172

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 162

3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 267

उपन्यास के सभी पात्रों में प्रमुख हैं शिवाजी की माता जीजाबाई, जीजाबाई के ही प्रयासों का यह परिणाम था कि बालक शिवा छत्रपति शिवाजी बना। पति के द्वारा पत्निक्त होने पर भी शिवा का पालन-पोषण उन्होंने बड़े धैर्य एवं साहस के साथ किया। शिवाजी के सदाचरण के पीछे उनकी माँ द्वारा दिए गए संस्कार ही हैं। “बुरा कर्म बुरा ही होता है। असत्य-भाषण, चोरी, छल, धोखा-धड़ी आदि बुरे कर्म हैं। इनका सहारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी नहीं लिया जा सकता मैं चाहूँगी मेरा शिवा भी ऐसा ही करे अच्छे कर्म हैं-पुरुषार्थ, परोपकार, सत्य-भाषण, पूजा-उपासना, यज्ञ-जाप, माता-पिता की सेवा।”¹ इन्हीं सब को शिवाजी के चरित्र में देखा जा सकता है।

पति के द्वारा त्यागने की खबर सुनकर भी जीजाबाई का आत्मविश्वास नहीं खोया वह पूरे साहस के साथ कहती हैं “.....जीजा साधारण मिट्टी की नहीं बनी दादा साहब और फिर उसे भय किस बात का जब उसकी सहायिका स्वयं भवानी है। जीजा माता और पिता दोनों का दायित्व निर्वाह करेगी दादा साहब अच्छा है महाराज का मन कहीं और उलझ गया, अपने बच्चे को जीजा अब पूरी तरह अपने सपने के साँचे में ढालने को स्वतंत्र है। जय भवानी।”²

अन्य प्रमुख पात्रों में दादा कोंडदेव, अफजल खां, मालोजी, फादर शाइस्ता खाँ, औरंगजेब, मिर्जा राजा जय सिंह आदि सम्मिलित हैं अन्य पात्रों में रोशन आरा, सईबाई, सोयराबाई पुतलीबाई, सम्भाजी, अरुन्धती, जुवेदा, मोगा भट्ट, भूषण, कृष्ण कान्त इत्यादि शामिल हैं।

सभी पात्रों का चरित्रांकन उनकी ऐतिहासिकता को ध्यान में रखकर किया है। पात्रों का चरित्रचित्रण प्रत्यक्ष रूप से भी हुआ है और अप्रत्यक्ष रूप से भी हुआ है। अंग्रेज फादर स्मिथ

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 95

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 79

समर्थ गुरु रामदास के विषय में कहता है "..... अभी जिंदा में सबसे अच्छा है रामदास। बोलते समर्थरामदास बहुत अच्छा करता। गाँव-गाँव रेसलर्स पैदा करता — पहलवान। हाँ पहलवान बनाता। ब्रेव बनाता हनुमानजी की पूजा करता। लोगों को जोड़ता। उसके साथ तुम लोग लगे।"¹ लेखक प्रत्यक्ष रूपसे किसी पात्र के विषय में कुछ कहे उससे अधिक प्रभावी है कि वह पात्रों के ही माध्यम से उनकी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करे।

औरंगजेब के चरित्र में व्याप्त गुणों व अवगुणों को संतुलित दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया गया है। एक ओर तो औरंगजेब 'ऐसा हैवान है जिसने धर्मों के मध्य दीवारें खड़ी कर दी प्राचीन मूर्तियों एवं देवालयों को नष्ट कर दिया इस्लाम के नाम पर अत्याचार किया'² "खुदा का बन्दा तो वह भी था और हर वक्त के नमाज का भी कायल। अपनी रोटी तो कुरान की नकल कर ही वह चलाता था।"³

अन्य पात्रों का चरित्रांकन भी उनके महत्व के अनुसार लेखक ने किया है पात्रों के उत्कृष्ट चरित्रांकन के कारण ही एक-2 पात्र हमारे सम्मुख सजीव हो उठा है उनके व्यावहारिक क्रिया कलापों एवं कथनों के माध्यम से ही अनेक विशेषताएँ सामने आ जाती हैं। पात्रों की इतनी विविधता एवं ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण अधिक संख्या होने के बावजूद लेखक ने प्रत्येक पात्र के साथ न्याय किया है। यह डॉ० मिश्र की कुशल दृष्टि का परिचायक है सभी पात्र यथासंभव यथार्थ है काल्पनिक पात्रों का प्रयोग लेखक ने नहीं किया है।

पहला सूरज के संवाद भी ऐतिहासिक उपन्यास के अनुकूल हैं। किसी भी उपन्यास के वास्तविक चरित्र का उद्घाटन उसके संवाद एवं कथोपकथन के ही माध्यम से होता है अतः

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 43
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 229
 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 230

संवादों का उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान है। पहला सूरज के संवाद पात्रानुकूल हैं तथा घटना के भी अनुकूल हैं। संवादों में गति है जो घटनाक्रम को आगे बढ़ाने में सहायक है।

“आज विजयोत्सव की तैयारी है महाराज!”

“कैसा विजयोत्सव?”

“आपकी विजय का उत्सव महाराज! और कैसा विजयोत्सव?

“विजय? कैसी विजय?” मालोजी ने आँखें फाड़कर पूछा।

“प्रकृति पर पुरुष की विजय, महाराज और कैसी विजय? आज एक पुरुष के परिश्रम ने ही तो प्रकृति को पिघलाया है। पानी की बूंद-2 को तरसती धरती को वर्षा का वरदान दिया है” पुजारी अपने आवेश में बोल रहा था।”

संवाद पात्रों की मानसिक दशा को स्पष्ट करने में सहायक है। जीजाबाई की दासी अरुन्धती शिवा के खेलने के लिए कुछ खिलौने एकत्र करती है जब जीजाबाई उन खिलौनों को देखती हैं तो नाराज होती हैं जो शिवाजी को एक वीर सपूत बनाने के उनके निश्चय को प्रकट करता है। “मैं पूँछ रही हूँ कि क्या गुड्डे-गुड़ियों का खेल खेलने के लिए पैदा हुआ है शिवा? झुनझुने बजाने के लिए? यह ठीक ही किया इसने जो सारे खिलौने फेंक दिए। नहीं रचाना इसे गुड़ियों का विवाह। नहीं बजाना झुनझुना।”²

संवाद एवं कथोपकथन विषयानुरूप हैं कहीं तो अत्यन्त संक्षिप्त है और कहीं-कहीं दीर्घकाय हैं अधिकांश संवाद औसत आकार के हैं। संक्षिप्त संवाद का उदाहरण देखिए —

“काफिर बीमार हो गया।”

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 22

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 88

“क्या हुआ?”

“सुना फेफड़ों में दर्द है। खाँसी का दौरा पड़ रहा है।”

जाफर दौड़ा—2 आलमगीर के पास पहुँचा— “बादशाह सलामत, काफिर की शामत आ गई है।” जिन स्थानों पर औपचारिक वार्तालाप है किसी स्वामी तथा सेवक के मध्य वहाँ संवादों में संक्षिप्तता होना स्वाभाविक भी है।

उपन्यास के देशकाल एवं वातावरण को स्पष्ट करने में भी संवादों की भूमिका महत्वपूर्ण है। जिस समय भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित था तथा उनके विरोध में छोटी—2 रियासतों के राजा व सूबेदार यदा—कदा विद्रोह करते रहते थे। भारतीय जन मुस्लिमों के अत्याचारों से तंग आ गये थे। विशेषकर औरंगजेब ने तो हिन्दू धर्म वालों का जीना दूभर कर रखा था ऐसे ही समय दक्खिन में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के रक्षक के रूप में छत्रपति शिवाजी का उदय हुआ। तत्कालीन देशकाल को ‘पहला सूरज’ उपन्यास में चित्रित किया गया है। मुगलों के आक्रमण का मुख्य उद्देश्य धन की लूट एवं मंदिरों का विध्वंस ही रहता है था “छोटे—मोटे मंदिरों, मठों के अलावा अफजल ने विशेष रूप से जिन दो मंदिरों को अपने अभिमान का लक्ष्य बनाया उनमें एक था पंढरपुर का विठ्ठल दूसरा तुलजापुर का भवानी मंदिर”²

देश में चहुँ ओर व्याप्त इस आतंक और भय के वातावरण का सजीव चित्रण लेखक ने उपन्यास में किया है। औरंगजेब के दरबार का एक चित्र देखिए — “..... यह गद्दी क्या थी एक संगमरमरी पिंजरा था। ऊँचे आसन पर आसीन होने पर भी सोने—जवाहरात जड़ी संगमरमर की दीवारें बादशाह के सिर और चेहरे से अधिक कुछ नहीं दिखा पा रही थीं। जिसने कितने सिरों को कलम कर बादशाहियत हासिल की थी उसे तो चौबीसों घंटे अपने

सिर की खैर मनानी थी।”³

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 238
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 30
 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 138

युद्ध के मैदानों का चित्रण भी लेखक ने बड़ी ही कुशलता के साथ किया है, पौराणिक—ऐतिहासिक उपन्यासों की सफलता वातावरण चित्रण पर बहुत कुछ निर्भर करती है क्योंकि लेखक को तत्कालीन घटनाओं का इस तरह का चित्रण पाठकों के सम्मुख करना होता है कि अतीत की वे घटनाएँ देखिए उन्हें अपने सम्मुख घटित होती जान पड़ें। एक चित्र देखिए —

“जय भवानी! शिवाजी ने जोर से हुंकार लगाई और घोड़े को गुफा की ओर मोड़ दिया। सारे मराठे सैनिक उनके पीछे आ गए यह एक बड़ा सा दर्रा था जिसका दूसरा छोर कुछ ही दूरी पर खुला था। मराठों ने दर्रे के दरवाजे पर अन्दर से मोर्चा बन्दी कर ली। मुसलमान सैनिकों का दल भी मुख्य मार्ग को छोड़ दर्रे के पास आ गया। ज्वार की तरह उमड़ कर उन्होंने दर्रे के अन्दर प्रवेश करने का प्रयास किया पर जो कोई भी अन्दर जाने की कोशिश करता, हाथ में नंगी तलवार लिए मराठे उसकी गर्दन उतार देते। कुछ देर तक नरसंहार चला जिसमें शिवाजी और प्रभु ने भी अनेक मुसलमान सैनिकों की गर्दनें उतारीं। पर मराठों की संख्या कम थी और बाजी प्रभु को लग गया कि अपनी सारी वीरता के बावजूद मराठे कुछेक घंटों से अधिक मुसलमानों को दर्रे के दरवाजे पर नहीं रोक सकते।”

शिवाजी के समय के देशकाल को चित्रित करने में लेखक ने पूर्ण प्रयास किया है और वह अपने प्रयास में सफल भी हुआ है।

डॉ० मिश्र कभी लकीर के फकीर रहने के आदी नहीं हुए अतः उनकी शैली में हमें मौलिकता एवं नवीनता देखने को मिलती है। मिश्र जी ने तत्कालीन भाषा का प्रयोग किया है। मुगलिया दरबारों का चित्रण करते समय उर्दू शब्दों से युक्त भाषा है तो संस्कृत के पंडित के मुख से उन्होंने श्लोकों को भी पढ़ाया है।

“नमाज से उठते ही उसने वजीर जाफर खॉँ और एकाध विश्वस्त दरबारियों को खास सलाह—मश्वरे के लिए बुलाया। बादशाह को चिन्तित देख जाफर ने अर्ज किया — “जहाँपनाह चाहें तो इसगुस्ताख का सिर धड़ से अलग कर दिया जाय।”

“पर इसमें बदनामी होगी” औरंगजेब ने मायूस होकर कहा, “मेरे दामन पर प्रहले ही खून के अनेक धब्बे लग चुके हैं। उस पर यह मिर्जा राजा का मेहमान है इससे इस तरह निबट कर हम मुँह दिखलाने के काबिल नहीं रहेंगे।”

शिवाजी और पं० गागा भट्ट के मध्य के निम्न संवाद में संस्कृत शब्दों से युक्त वाक्य प्रयुक्त हुए हैं।

“यह इस मालव—भूमि का परम सौभाग्य है कि श्री चरण यहाँ तक पहुँचे। ब्राह्मण तो हमारे लिए देव—तुल्य हैं माँ जीजा ने हमें बाल्यकाल से यही शिक्षा दी है। अपने चरणों के पवित्र स्पर्श से आप मुझे वंचित क्यों करना चाहते हैं।”² यह तो ठीक महाराज किन्तु राजा तो सबकी श्रद्धा का पात्र होता है वह तो ब्राह्मणों का भी रक्षक—पोषक है। हमारे शास्त्रों ने तो अन्नदाता को पिता के समकक्ष माना है —

जन्मदाता कन्यादाता विद्यादाता तथैव च।

अन्नदाता भयत्राता, पचैते पितरः स्मर।।³

उपन्यास की भाषा में प्रवाह है ओज है। शैली की दृष्टि से भी “पहला सूरज” श्रेष्ठ उपन्यास है।

ऐतिहासिक पात्र शिवाजी को लेकर लिखे गये इस उपन्यास की रचना एक साथ अनेक

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 182
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 234
 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 266—267

उद्देश्यों की पूर्ति करे।¹ भारतीय जन के सम्मुख एक आदर्श चरित्र को यथार्थ परिस्थितियों में चित्रित करके डॉ० मिश्र ने एक उदाहरण दिया है कि मानव तो सभी हैं किन्तु मानव से महामानव तक पहुँचना ही सच्चे अर्थों में जीवन को जीना है इसीलिए शिवाजी के अवतार होने की बात का उत्तर देते हुए उन्होंने उपन्यास में ही कहलाया है कि “एक तरह से अवतार तो हम सभी हैं — उस परब्रह्म के। हम ही क्या पशु—पक्षी, जड़—चेतन सभी। सभी में तो वही एक बसता है अब समझो कि किसी में वह परम तेज कम और किसी में ज्यादा उतरा। जिसमें ज्यादा उतरा वह सामान्य से विशिष्ट बन आया।”

आज के समय में हिन्दू—मुस्लिम दंगों से देश त्रस्त है लोग शिवाजी को हिन्दू धर्म रक्षक राजा के रूप में जानते हैं लेखक ने उनके सर्व धर्म समन्वयात्मक रूप पर भी प्रकाश डाला है। “.....शिवाजी के समन्वयात्मक रूप को उभारने में भी मैं पीछे नहीं रहा हूँ और यह बात यथा स्थान उभर कर आई ही है कि अपने धर्म के पोषक रक्षक होने के बावजूद शिवाजी ने धार्मिक कट्टरता और अन्धभक्ति से पृथक अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि इस वीर ने केवल हिन्दू महिलाओं को बल्कि मुसलमान औरतों को भी माँ—बहिन के रूप में देखा और चतुर्दिक व्याप्त विस्फोटक वातावरण के बावजूद उसने किसी भी अन्य धर्मावलम्बी, धार्मिक स्थल अथवा धर्मग्रन्थ का निरादर नहीं किया।”²

इस युग पुरुष की प्रासंगिकता को स्पष्ट करता हुआ लेखक आगे लिखता है। “..... .. शिवाजी पहले भी प्रासंगिक थे और आज भी हैं बल्कि दिनों—दिन बढ़ रहे साम्प्रदायिक तनावों और वैमनस्य के इस काल में तो शिवाजी का समन्वयकारी उदात्त चरित्र पहले से ज्यादा ही प्रासंगिक हो आया है। शिवाजी का नाम मात्र एक व्यक्ति नहीं एक प्रवृत्ति का प्रतीक है — प्रवृत्ति जो राजनीतिक स्वतंत्रता को समर्पित होकर भी वैयक्तिक स्वतंत्रता में कहीं बाधक नहीं बनती।”³

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 26

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 283

3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पहला सूरज पृ० 283

पवन पुत्र

‘पवनपुत्र’ डॉ० भगवतीशरण मिश्र की आत्मकथा शैली में लिखित पौराणिक-ऐतिहासिक औपन्यासिक कृति है। इस कृति के माध्यम से लेखक ने हनुमानजी जैसे देवत्व के गुणों से युक्त चरित्र के प्रति मनुष्य की श्रद्धा को बढ़ाने का प्रयास किया किया है। हनुमानजी के जीवन के विभिन्न पक्षों को इस कृति में यथार्थता के साथ प्रकट किया गया है। हनुमानजी के जीवन के विभिन्न पक्षों को इस कृति में यथार्थता के साथ प्रकट किया गया है।

प्रभासतीर्थ के आस-पास रहते थे वानर-राज केसरी उनकी पत्नी का नाम था अंजना। पुत्र प्रप्ति की इच्छा लिए अंजना ने शिव की आराधना की जिसके परिणामस्वरूप शिव को ही अपने एक अंश से उत्पन्न होना पड़ा। उधर अयोध्या में राजा दशरथ के यहाँ चार-पुत्रों का जन्म हुआ। जिनके नाम राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न हुए।

शिव के अंश से उद्भूत हनुमान उप-देवता होने के कारण अनेक विशिष्ट शक्तियों से उत्पन्न थे। माता अंजना से रागायण की कथा को सुनकर उनके मन में राम से मिलने की इच्छा तीव्र हो उठती है। एक दिन शिव शंकर मदारी के वेश में आकर हनुमान को राम से मिलाने अयोध्या ले जाते हैं।

राजा दशरथ के दरबार में ऋषि विश्वामित्र का आगमन होता है और वे राम-लक्ष्मण को राक्षसों का वध करने के लिए ले जाते हैं। हनुमान वापस अपनी माता अंजना के पास लौट आते हैं। माता हनुमान को ऋष्यमूक पर्वत पर भेज देती हैं। हनुमान की मित्रता वहाँ सुग्रीव से होती है। सीता हरण के पश्चात् राम-लक्ष्मण उन्हें खोजते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचते हैं जहाँ हनुमान के माध्यम से राम और सुग्रीव में मित्रता होती है राम बालि का वध करके सुग्रीव को उसका राज्य लौटाते हैं और सुग्रीव सीता को खोजने में राम की मदद

करने का आश्वासन देते हैं। उन्हीं के आदेश पर समूची वानर सेना सीता को खोजने निकल जाती है। हनुमान दक्षिणी समुद्र को पारकर लंका जाकर सीता माता का पता लगाते हैं तथा रावण की नगरी लंका को जलाकर वापस आते हैं। सीता के लंका में होने की सूचना पाते ही राम सुग्रीव की सेना को साथ लेकर रावण पर आक्रमण कर देते हैं।

युद्ध में लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर हनुमान संजीवनी लाकर उनके प्राणों की रक्षा करते हैं। रावण का भाई अहिरावण छल से राम-लक्ष्मण का अपहरण कर उन्हें पाताल लोक में ले जाता है। हनुमान पाताल जाकर राम-लक्ष्मण को वापस लाते हैं। राम रावण को मारकर सीता को मुक्त करते हैं और पुष्पक विमान में आरुढ़ होकर माता अंजना के पास होते हुए अयोध्या आ जाते हैं। राम का राज्याभिषेक होता है राम हनुमान को आशीर्वाद देते हैं कि "जब तक इस संसार में मेरी कथा कहीं सुनी जाती रहेगी तब तक तुम यहाँ प्रसन्न मन विचरते रहो। इसे मेरी आज्ञा ही मानो।¹ तभी से हनुमान रामआज्ञा को शिरोधार्य कर इस पृथ्वी पर विराजमान है। एक दिन एक रजक के लांछना स्वर को सुनकर राम सीता का परित्याग कर देते हैं जिससे हनुमान को भारी दुःख होता है। लंका युद्ध में अनेक प्राणियों की हत्या होने से राम चिन्तित रहते हैं तो महर्षि अगस्त्य उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह देते हैं। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ-साथ विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुए हनुमान व शत्रुघ्न वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँचते हैं। लव-कुश यज्ञ के घोड़े को पकड़कर बाँध लेते हैं। राम की सैन्य बहिनी व लव-कुश के मध्य युद्ध होता है। शत्रुघ्न मूर्छित हो जाते हैं तथा हनुमान को लव-कुश बन्दी बनाकर अपनी माता के सम्मुख उपस्थित करते हैं। माता को देखते ही हनुमान की आँखों में आँसू आ जाते हैं वे माता सीता थीं। सीता हनुमान को मुक्त करने का आदेश देती हैं। श्री राम का आगमन वाल्मीकि आश्रम में होता है। किन्तु राम सीता को अपने साथ नहीं ले जाते अपितु सुवर्ण की सीता बनाकर अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करते हैं राम

को उनके पुत्र सौपकर सीता पृथ्वी में समा जाती हैं।

द्वापर में श्रीकृष्ण के समय में अपने अनुज भीमसेन के आग्रह पर हनुमान अर्जुन के रथ के ध्वज में विराजमान हो गए। गरुण, सुदर्शन चक्र, रुक्मिणी तथा अर्जुन के गर्व को अपने आराध्य के आदेश पर समाप्त कर हनुमान अपने स्वामी की भक्ति में लीन हो जाते हैं।

उपन्यास की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है तथा लगभग प्रत्येक भारतवासी के द्वारा पढ़ी-सुनी अथवा देखी गई है। किन्तु लेखक का प्रयास रहा है कि हनुमान के जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं को इसमें प्रस्तुत किया जाय। “प्रयास यह रहा है कि इस कथा के माध्यम से वह सब कुछ कह दिया जाय जो अब तक हनुमान के संबंध में कहीं नहीं कहा जा चुका है, ताकि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद हनुमान के संबंध में कम से कम उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के संबंध में और पढ़ने को नहीं रह जाए।” इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु लेखक ने विभिन्न भाषाओं की अनेक पुस्तकों का प्रणयन कर पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत किया है।

किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानक को लेकर उपन्यास की सृष्टि करना बहुत आसान नहीं होता है क्योंकि उसमें लेखक को स्वतंत्रता बहुत कम रहती है पाठक लेखक से यह अपेक्षा भी रखते हैं कि उपन्यास में कथानक का प्रस्तुतीकरण कुछ मौलिकता एवं नवीनता लिए हुए हो। इस रूप में ‘पवनपुत्र’ की कथावस्तु अनेक आधुनिक अवधारणाओं को समाहित किए हुए है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना करने वाली कृति है यह।

भारतीय यथार्थवाद के मूल स्वरूप की स्थापना इस कृति के माध्यम से हुई है क्योंकि इसमें एक ऐसे पुरुष की कथा है जिसका जीवन श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, भक्ति एवं विश्वास की साक्षात् प्रतिमूर्ति रहा है। यथार्थवाद मानव की दुर्बलताओं पर उसकी आत्मिक शक्तियों द्वारा

विजय की स्थापना का पक्षधर रहा है इस रूप में 'पवनपुत्र' के माध्यम से जीवन के सत्य को जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उपन्यास के मुख्य पात्र पवन पुत्र हनुमान हैं उनकी श्रीराम के प्रति भक्ति तो जग प्रसिद्ध है ही किन्तु इस उपन्यास में उनके चरित्र के ऐसे पक्षों को भी उद्घाटित किया गया है। जिनके विषय में जन सामान्य को जानकारी नहीं थी या बहुत कम थी। अत्यंत वीर होने के साथ-साथ हनुमान एक साहित्यकार का हृदय भी रखते थे। उनके द्वारा शिलाओं पर लिखित रामकथा को देखकर स्वयं वाल्मीकि भी घबरा जाते हैं उन्हें लगता है कि इस कथा के सम्मुख उनके द्वारा रचित रामायण को कोई महत्व नहीं प्रदान करेगा वह राम के पास पहुँचकर निवेदन करते हुए कहते हैं—

“आप शारदा की बात कह रहे हैं। यहाँ तो पवन नन्दन ने स्वयं परब्रह्म को अपने हृदय में बैठा एक ऐसी कथा रच रखी है कि मेरी रामायण तो पानी भरे मारुति की रामकथा क समक्ष।”¹ एक सच्चे सेवक के रूप में उनकी भूमिका का एक उदाहरण उस समय सम्मुख आता है जब वे सुग्रीव को उसका कर्तव्य याद दिलाते हैं। हनुमान सुग्रीव को समझाते हुए कहते हैं “आप स्वयं सामना न करें पर नगर छोड़कर भागें नहीं। पहले से भी सौ मित्र की धारणा आपके प्रति अच्छी नहीं है।”² हनुमान प्रशंसा करते हुए श्रीराम स्वयं कहते हैं — “.....क्योंकि मारुति साधारण मानव कहाँ है? कहने को यह वानर है पर विद्या, बृद्धि, विवेक ओर शारीरिक शक्ति में तो ये देवताओं से भी आगे हैं।”³

उपन्यास के दूसरे प्रमुख पात्र श्री राम हैं जो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। देवत्व के सभी गुणों से युक्त हैं। अन्य सभी पात्र भी अपनी-अपनी पौराणिक विशेषताओं से युक्त हैं।

पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए मिश्र जी ने प्रत्यक्ष रूप से कभी कथोपकथनों से तो

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पवनपुत्र पृ० 217

2. वही पृ० 94

3. वही पृ० 78

कभी घटनाओं के द्वारा किया है। उपन्यास के खलनायक रावण को सम्बोधित करती हुई माता सीता कहती हैं “ हाँ उसी को। होगा वह त्रिभुवन जयीं पर एक सूने आँगन से एक सती साध्वी को उठा लाने वाला स्यार से अधिक नहीं है। मेरी दृष्टि में। एक चोर, एक ढपट से अधिक कुछ नहीं। साधु-वेश में छल करने वाला कोई राक्षस ही हो सकता है। लाख वह देव गंधर्वों द्वारा पूजित, प्रशंसित समझता हो स्वयं को।”¹ इस उपन्यास के अधिकांश पात्र मानवीय गरिमा से युक्त हैं तथा एक आदर्श के रूप में समाज में मान्य है इन चरित्रों के विषय में कुछ कहना पुनरोक्ति ही होगी।

“साहित्यकार समाज में जन्म लेता है, विकसित होता है और मनुष्य समाज में रहकर ही साहित्य सृजन करता है। अतः मनुष्य समाज की रहन-सहन, आचार-विचार, रुचियाँ-रूढ़ियाँ, धार्मिक-आर्थिक-राजनैतिक परिस्थितियाँ उस पर प्रभाव डालती है। इस प्रभाव को लेखक अपनी रचना के द्वारा वाणी देता है।”²

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता एवं संताप की स्थिति को देखकर लेखक का मन यह सोचने पर विवश हुआ कि इस सबके मूल में क्या है? तथा इससे वर्तमान जन को मुक्त कैसे किया जा सकता है? फलस्वरूप लेखक की दृष्टि उस अतीत पर पड़ी जो अत्यन्त शानदार होने के साथ इन सब समस्याओं से मुक्त था अतः उस वातावरण को आज की समस्याओं के साथ मिलाकर प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक ने किया है।

उपन्यास की कथा त्रेता युग से आरम्भ होती है तथा द्वापरयुग में समाप्त होती है बीच-बीच में कलियुग का भी उल्लेख है। हर युग की अपनी कुछ मान्यताएँ होती हैं, कुछ आदर्श होते हैं कुछ जीवन मूल्य होते हैं। प्राचीन युग में धर्म और मोक्ष को मूल्यों के रूप

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र पवन पुत्र पृ० -130

2. डॉ० शंकर वसंत मुद्रगल हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास पृ० 338 प्रथम संस्करण 1992

में स्वीकृत किया था अर्वाचीन युग अर्थ और काम को प्रधान मूल्य मानता है । इसलिये भारत के प्राचीन साहित्य में धर्म और मोक्ष की प्रधानता थी तो अर्वाचीन साहित्य में अर्थ और काम की प्रधानता दिखाई देती है ।¹ डॉ० भगवतीशरण मिश्र ने अपनी कृति में प्राचीन मूल्यों को आधुनिक परिवेश में स्थापित करने का प्रयास किया क्योंकि मूल से अलग होकर तो कोई भी वृक्ष जीवित नहीं रह सकता हमारी संस्कृति हमारी सभ्यता सब हमारे आधार है अतः उस संस्कृति की पुनर्स्थापना का प्रयास इस उपन्यास में है ।

प्राचीन भारत की धन धान्य से परिपूर्ण वसुन्धरा का चित्रण किया गया है । उपन्यास के आरम्भ में ही प्रभास तीर्थ का वर्णन करने हुये कहा है — “मलय — पवन वहाँ नित्य प्रवाहित था । इस गन्ध — वाही वायु का सुखद स्पर्श तन— मन के सारे ताप— संताप का शमन कर प्राणों में सदा एक नव — स्फूर्ति नवोत्साह का संचार करता रहता । ऋतुपति की सतत उपस्थिति से विकसित कुसुमों ओर उन पर गुंजायमान भ्रमर पंक्तियों के कारण प्रकृति यहाँ सदैव श्रंगारित और सौंदर्य पूरित रहती । सलिल कुंडो का स्फटिक—सा स्वच्छ जल, रक्त कमल और धवल कुमुदिनी — कुसुमों से सदैव युक्त रहता । सरित प्रवाहों और सरोवरों के कूल निर्मित तपरिस्वयों ओर सिद्ध साचकों के मोहक कुटजों में निस्तर सम्पन्न अग्नि होत्र के कारण पूरा परिवेश हविष — गन्ध से गम — गम करता रहता । इन पर्णकुटियों से उठते मन्त्रोंच्चार ओर देव — स्तवन के स्वर सम्पूर्ण प्रदेश को एक अलौकिक प्रणीतता ओर शुचिता प्रदान करते रहते । कभी — कभी जाते श्वेत श्मश्रुधारी यति — मुनि एवं साधक वैरागी दर्शकों के पापों के क्षय और उनके पुण्योदय का कारण बनते । सम्पूर्ण क्षेत्र सदा एक स्वर्गिक आभा से सम्पन्न, एक अलौकिक विलक्षणता से व्याप्त लगता यह था

प्रसिद्ध प्रभास तीर्थ ।¹ ऐसी प्राकृतिक सुन्दरता से परिपूर्ण भारत उस समय था । आत्मिक बल से सम्पन्न पुरुष हुआ करते थे । उस समय के बानर और भालू भी आज के वानर भालूओं के समान नहीं थे । वे विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न पुरुष थे ।

डॉ० भगवतीशरण मिश्र ने त्रेता युग का वर्णन पात्रों के माध्यम से, वेशपूषाके माध्यम से, उनके खान — पान, रहन सहन, आचार विचार आदि अनेक माध्यमों से किया है । वह युग आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न युग था जो लोग इन शक्तियों में विश्वास करते हैं उनमें तो आध्यात्मिक शक्तियों के विषय में अनुभव भी सम्भवतः होंगे किन्तु जो इनसे अपरिचित है उन्हें यह समझना चाहिये कि आज रेडियों टेलीविजन के माध्यम से हम जिन सुदूर क्षेत्रों में स्थित वस्तुओं को देख पाते हैं तो क्या सम्भव नहीं कि व्यक्ति भी अपने शरीर में योग बल से उस शक्ति को उत्पन्न करले । ऐसा उस युग में सम्भव था ।

वर्णव्यवस्था उस समय भी थी किन्तु वह जन्म पर आधारित न होकर कर्म पर आधारित भी इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्था अत्यंत उत्कृष्ट थी । वन प्रदेशों में राक्षसों का आतंक था सम्भवतः ये वे मानवजातियाँ होगी जो सम्यता से विरक्त रह गई थी व जिनका विकास नहीं हुआ था । उपन्यास में जिस युग का वर्णन है उस युग का चित्रण इतनी कुशलता के साथ लेखक ने किया है कि वह वर्तमान का चित्र भी दिखाई देता है ।

किसी भी उपन्यास की सफलता उसके संवादों तथा कथोपकथनों पर अत्यधिक निर्भर करती है । उपन्यास की रोचकता को बनाये रखने में उसके संवाद ही सहायक होते हैं ।

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: पवन युग पृ० 9

“कथानक उपन्यास में दृश्यकाव्य की सजीवता और वास्तविकता का अत्यन्त मोहक संचार कर उसे एक भव्य — कलापूर्ण एवं प्रेष्य व्ययुक्त कृति की महत्ता प्रदान करते हैं । लेखक का कौशल अन्य बातों में तो परखा ही जाता है, परन्तु कथोपकथन में विशेष रूप से उसके संवादों का एक एक शब्द शब्दभेदी वाण की तरफ मर्मच्छेदी होता है । कथोपकथन में भाषा का भी भारी महत्व है भाषा पर लेखक का पूर्ण अधिकार होना चाहिये । भाषा भावों और विचारों की वाहिनी है । अतः प्रत्येक शब्द एवं वाक्य, रस पात्र और परिस्थिति का साक्षात् चित्र सा प्रस्तुत कर दे यही उसकी सबसे बड़ी सफलता है ।”

‘पवनपुत्र’ के संवाद विषयानुकूल हैं तथा पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने वाले हैं । चूँकि कथा पौराणिक है अतः संस्कृत भाषा का प्रयोग भी संवादों में हुआ है किन्तु पात्रों की सुविधा के लिये लेखक ने उसे हिन्दी में भी लिखा है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

“पवनात्मजोऽहम् हुनमान नाम कपिः । तिष्ठति सुग्रीव नाम वानरराजः अस्मिन् समुज्ज्वले ऋषममूक शिखरे । तेन प्रेषितः समागतोऽहम् तस्य महाभागस्य दूतः । कौ भवन्तौ नरशार्दूलौ ?

मैं पवन का लड़का हनुमान नामक वानर हूँ । इसी ऋष्यमूक पर्वत पर वानरों का राजा सुग्रीव भी रहता है मैं उसी का दूत उसी के द्वारा यहाँ भेजा गया हूँ । नरों में सिंह की तरह शोभा युक्त आप दोनों कौन हैं ?”

पात्रों की चारित्रिक विशिष्टता को उद्घाटित करने वाला एक ओर उदाहरण द्रष्टव्य है ।

“तब एक काम करो” । सुग्रीव ने कुछ व्यवस्थित होते हुये कहा,

1. डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन — उपन्यासः सिद्धान्त ओर संरचना (20-24) प्रथम संस्करण 1972 ।

2. डॉ० भगवतीश्वर मिश्र : पवनपुत्र पृ. 49

“तुम नीचे जाओ । ब्राह्मण वेश में ।”

“फिर ?”

“पता करो कि ये कौन हैं ? किस प्रयोजन से इस प्रदेश में विचर रहे हैं ?”

“फिर ?”

“फिर अगर सब ठीक — ठाक हो तो मुझे हाथ के इशारे से आश्वस्त कर देना । खतरा हो तो इंगित कर देना । मैं भाग कर अन्यत्र चला जाऊँगा अथवा किसी गिरि — गह्वर की शरण ताकूँगा ।”

“और मेरा क्या होगा ? ” मैने विनोद से कहा,

“तुम अपनी चिन्ता स्वयं कर लेना । ऐसे भी, ब्राह्मण वेश धारी को कोई सहसा हाथ नहीं लगाता । अब शीघ्रता करो, वे इधर ही बड़े आ रहे हैं ।”

सुग्रीव के डरपोक स्वभाव का पता इन संवादों से चलता है । संवाद गाते-शोल है तथा कथा की प्रवहमनता को बनाये रखने में सहायक भी हैं ।

‘पवनपुत्र’ की भाषा मिश्र जी के अधिकांश पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों की ही तरह शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है । व्याकरण सम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ इसमें हैं किन्तु ये भूलवरा नहीं अपितु जानबूझकर की गई हैं क्योंकि लेखक उपन्यास को उसके पारम्परिक केंचुल से निकालने का पक्षधर है । “वही पड़ी रही मेरी मूर्ति बहुत दिनों तक । पूजित भी रही, वहीं खुले में कुछेक आस्था — प्राण प्रेमियों द्वजरा । पुतता रहा सिन्दूर, चढ़ते रहे मोदक भी कभी — कभार । कभी — कभार इसलिए कि तब हाट बाजार, दुकान, मकान का कम

ही पता था इस तरफ । वीरान, वियावान था यह इलाका ।”¹

‘पवनपुत्र’ आत्मकथात्मक शैली में लिखित उपन्यास है इसमें कथा नायक हनुमान के मुख से कथा का उद्घाटन हुआ है । “पुस्तक के आरम्भ के पूर्व इसका शैली निर्धारण नहीं हुआ था । लिखने बैठा तो उसी रात आत्मकथात्मक शैली अपनाने की बात हुई ।”²

इसके अतिरिक्त उदाहरणात्मक, उद्धरणात्मक, वर्णनात्मक शैलियों का भी प्रयोग हुआ है ।

उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करता हुआ लेखक स्वयं कहता है “सब कुछ होते हुये भी इस पुस्तक का लक्ष्य हनुमान के देवत्व को नकारना नहीं बल्कि उसकी पुनर्स्थापना ही है । यह सही है कि उनके व्यक्तित्व के बहुत से अविश्वसनीय से प्रतीत होते पक्षों को विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया गया है पर यह एक सीमा तक ही हुआ है । हनुमान के अति — मानवीय अथवा दैवी स्वरूप के ऊपर मात्र इसलिये एक मानवीय रूप को आरोपित करने का प्रयास नहीं किया गया कि वह आधुनिक पाठक की रुचि के अधिक अनुकूल बैठे । लक्ष्य यहाँ पाठक की तर्क — शील बुद्धि को संतुष्टि करना नहीं बल्कि एक पौराणिक पात्र की यथासाध्य पाठकों के समीप लाना और उसके चरित्र के अनुदघाटित पक्षों को उद्घाटित करना है । सामान्य पाठक अगर अपने और इस महान पुराणपात्र के मध्य दूरी देखता है तो वह स्वाभाविक है क्योंकि इस कृति का लक्ष्य उस दूरी को निःशेष करना नहीं बल्कि उसके माध्यम से देवता के प्रति मनुष्य की श्रद्धा को अक्षुण्ण रखना और उसमें वृद्धि लाना ही है ।”³

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पवनपुत्र पृ० 235
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र के उपन्यास ‘पवनपुत्र’ की भूमिका से
 3. 231

इसके अतिरिक्त अपरोक्ष रूप से यह अनेक उद्देश्यों जैसे विश्व मानवतावाद, सर्व हित, हिंसा का विरोध, कर्म की प्रधानता धर्म एवं अध्यात्म पर श्रद्धा को पूरा करती है ।

“यही कारण है कि युद्ध के देवता होकर भी हनुमान इसमें युद्ध के विरुद्ध बोलते हैं राष्ट्रों की कृत्रिम सीमाओं को नकारते और सांप्रदायिक एवं राष्ट्रीय सद्भावनाओं के आधार पर विश्व मानव की परिकल्पना को पोषित करते प्रतीत होते हैं ।”

भारत की प्राचीन सांस्कृतिक आध्यात्मिक संस्कृति को पुनर्जीवित करने का प्रयास इसमें किया गया । हनुमान जी के ही माध्यम से लेखक ने भारत वर्ष में स्थापित सभी प्रसिद्ध हनुमान मन्दिरों का वर्णन किया है । इस वर्णन में भौगोलिक आलोचना को ग्रहण किया गया है । देश के मन्दिरों के साथ – साथ विदेशों में स्थापित हनुमान मन्दिरों का भी वर्णन किया गया है । इससे विश्व एकता की स्थापना का प्रयास लेखक द्वारा किया गया है ।

हनुमान जी, के जीवनवृत्तांत को यथासम्भव, यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक के द्वारा किया गया है ।

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र के उपन्यास 'पवनपुत्र' की भूमिका से

प्रथम पुरुष—

मिश्र जी के अनुसार कृष्ण के चरित्र से वह अपने वाल्यकाल से ही प्रभावित थे उनका मानना है कि कृष्ण का चरित्र एक ऐसे मनुष्य का चरित्र है जिसमें मनुष्य का क्रमिक विकास देखने को मिलता है ।

“मैंने इस पुस्तक में कृष्ण को भगवान के रूप में न देखकर मनुष्य के रूप में देखने का प्रयास किया है । यह बात पृथक् है कि यह मनुष्य शनैः शनैः मनुष्यत्व को लौघता हुआ देवत्व और अंततः ईश्वरत्व को प्राप्त कर लेता है । इस पुस्तक के प्रणयन के समय मेरा दृष्टिकोण स्पष्ट है यह रहा है कि भगवान पैदा नहीं होता बल्कि बनता है ।”

मथुरा के राजा कंस के कारागार में कैद कंस की बहन देवकी के भाद्रपक्ष कृष्ण की आठवी तिथि को पुत्र ने जन्म लिया । कंस ने देवकी की पूर्व सात संतानों का वध कर दिया था उसे स्वप्न में यह चेतावनी मिली थी कि देवकी की सन्तान उसका काल होगी इसीलिये वह देवकी की प्रत्येक सन्तान का वध करता जा रहा था । अपनी आठवी सन्तान को कंस के क्रोध से बचाने के लिये वसुदेव कृष्ण के जन्म लेते ही आधी रात को पहरेदारों की मदद से उन्हें लेकर किसी प्रकार गोकुल अपने मित्र नन्द के घर पहुंचते हैं । वहाँ यशोदा की बालिका से अपने पुत्र को बदलकर वसुदेव वापस मथुरा लौट आते हैं । कारागार में आते ही कंस को ज्ञात होता है कि यशोदा के सन्तान उत्पन्न हुई है । कंस के शिला पर पटकने के पहले ही वह बालिका गत प्राण हो गई उधर नन्द के घर में कृष्ण का लालन — पालन बहुत अच्छी प्रकार होने लगा । एक दिन कंस को सपने में पुनः दिखाई दिया कि गोकुल में उसका काल जन्म ले चुका है । उसने अपने समस्त समासदों को आदेश दिया कि क्षेत्र के

सभी नवजात शिशुओं की हत्या कर दी जाये । जब सामने से बात नहीं बनी तो कंस ने पूतना को छल से कृष्ण की हत्या के लिए भेजा पूतना एक नवयौवना स्त्री का रूप धारण कर गोकुल में पहुँच गयी । उसे अपने स्तनों पर विष लगा होने के कारण कृष्ण तक पहुँचते पहुँचते वह ढेर हो गई । उसके बाद कंस ने एक एक करके अनेकों व्यक्तियों को भेजा किंतु दैवयोग से उनमें से कोई भी कृष्ण का बाल भी बाँका न कर सका ।

उन्हीं सब कियः कलापों के मध्य ही कृष्ण की सगाई राधा से हो जाती है । राधा के साथ सगाई होते ही कृष्ण राधामय हो जाते हैं । राधा की प्रेरणा से कृष्ण अपने शरीर को बलवान बनाते हैं । क्योंकि उन्हें कंस का वध करना है । राधा अपने को केवल कृष्ण की प्रेयसी व प्रेरणा शक्ति के रूप में देखती भी उनकी पत्नी बनने की इच्छा उनमें नहीं थी । अपनी इच्छा शक्ति के बल पर श्रीकृष्ण अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाते हुए अपने को एक आदर्श मानव बनाते हैं । 'राधा की इच्छा यही थी कि कृष्ण स्वयं को सम्पूर्ण आर्यावर्त के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में परिवर्तित करें ।' इधर कृष्ण अपनी प्रेयसी राधा की इच्छानुसार स्वयं को ढालते जा रहे थे और उधर कंस के महल में उसके ही विरुद्ध षडयंत्र चल रहे थे । प्रजा कंस के विरुद्ध हो चुकी थी मौका पाते ही कंस को गद्दी से हटाने की तैयारियाँ की जा रहीं थी । सभासदों ने कंस को कृष्ण वध के लिए धनुष यज्ञ के आयोजन का सुझाव दिया जिसमें मल्लों के द्वारा कृष्ण के वध की योजना थी ।

निर्धारित समय पर राधा से व अन्य ब्रजवासियों से विदा लेकर कृष्ण मथुरा आते हैं । कंस की रंगशाला में प्रवेश करते ही कृष्ण का सामना कुवल्यापीड़ा नामक हाथी से होता है । उसको परास्त करने के उपरांत कंस के मल्लों को भी उन्होंने कुश्ती में हराया । कंस की

आशा क्षीण हो चुकी थी। कृष्ण ने उसको अपने बाजुओं में जकड़कर उसका वध कर दिया। कंस के वध के उपरान्त कृष्ण कंस के पिता उग्रसेन को राज्य सौंप देते हैं।

“प्रथम पुरुष” उपन्यास की इस कथा में कहीं भी चमत्कार या अप्राकृतिक घटनाओं का समावेश नहीं है। पौराणिक चरित्र श्रीकृष्ण को अपने जीवन की जटिल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कराते हुए मानवत्व से देवत्व की ओर उन्मुख होते दिखाया है। उनके जीवन की सभी घटनाएँ यथार्थ के धरातल पर उपजी हैं। उदाहरण स्वरूप कृष्ण के जन्म की कथा, यशोदा की पुत्री के वध की कथा, पूतना वध, शकटासुर वध, इत्यादि की कथाएँ यथार्थ के ताने बाने से बुनी गयी हैं। “यथार्थवादी कलाकार की यही चेष्टा होती है कि उसके द्वारा प्रस्तुत घटनाएँ तथा पात्र यथार्थ जगत की प्रतिच्छाया हों असम्भाव्य तथा अदभुत को वह प्रकृति विरुद्ध मानकर अपनी कृति में इनका समावेश नहीं होने देता”¹ इसीलिए मिश्र जी ने कृष्ण की कथा को एक दैवीय पुरुष के रूप में नहीं अपितु मानव के विकास, मानवीय चेतना के विकास की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रथम पुरुष उपन्यास की कथा पूर्णतया कल्पना के माध्यम से रचित है किन्तु उपन्यास विशेष रूप से यथार्थवादी उपन्यास की यही विशेषता है कि वह कल्पना के सहारे निर्मित होने के बावजूद जीवन के यथार्थ को ही प्रस्तुत करें। “साहित्य में सत्य के बराबर ही कल्पना का मूल्य है। यथार्थ और कल्पना के मेल से साहित्य में सत्य की स्थापना होती है यथार्थ जिस प्रकार एक सम्पूर्ण सत्य है कल्पना भी वैसा ही सम्पूर्ण सत्य है। इसी कारण यथार्थ से कल्पना का मेल होने पर भी सत्य दूषित नहीं होता।”² यथार्थवादी साहित्य के लक्ष्य को कि मानव अपनी चेतना का विकास करता हुआ क्रमशः मानव, महामानव व अतिमानव बनसकता है। उसकी पूर्व स्थापना यह उपन्यास करता है।

-
1. “सम्पादक डॉ० नगेन्द्र : मानविकी पारिभाषिक कोष संस्करण (1998)
 2. डॉ० शुभाकर कपूर : आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य पृ० 532

प्रथम पुरुष उपन्यास में जितने भी चरित्र हैं वे सभी पौराणिक ऐतिहासिक हैं । अपनी कृति को यथार्थवादी कृति के रूप में प्रस्तुत करने के लिए मिश्र जी ने उन चरित्रों से सम्बन्धित सभी अपाक्रत घटनाओं का परिहार कर दिया है । चूंकि कथा अति प्रसिद्ध तथा पौराणिक है अतः काल्पनिक पात्रों की सृष्टि के लिए लेखक को स्वतंत्रता नहीं मिली सकी है । किन्तु दैवीय अथवा आसु^१ कहे जाने वाले चरित्रों को उन्होंने साधारण मानवों के रूप में चित्रित किया है ।

प्रथम पुरुष उपन्यास की कथा जिस सामाजिक परिवेश को प्रस्तुत करती है उस परिवेश में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को तथ वर्तमान सामाजिक बुराइयों को कृष्ण कथा के माध्यम से दूर करने का सफल प्रयास लेखक द्वारा किया गया है । लेखक के शब्दों में “मेरा लक्ष्य यह रहा है कि उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक की कहानी को इस ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाए कि वह रोचक और विश्वसनीय होने के साथ-साथ प्रासंगिक भी हो ।” पश्चिमी भौतिकवादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण हमारे भारतीय समाज में निरन्तर मूल्यों का पतन होता जा रहा है । जबकि हमारे पारम्परिक मूल्य ही हमारी अस्मिता को बनाए रखे हैं । मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिस पर सम्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्मित होता है । डॉ० भगवती शरण मिश्र का उपन्यास प्रथम पुरुष, कर्तव्य, प्रेम, श्रद्धा, सत्य करुणा इत्यादि मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास करता है । कथानक यद्यपि प्राचीन है तथा कृष्ण कथा अनेकों बार की सुनी हुई होने के बाद भी प्रथम पुरुष की कथा में रोचकता व नयापन है । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसकी कथा अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी वर्तमान समय में प्रासंगिक है । प्रेम के उच्च स्वरूप को इस उपन्यास में दर्शाया गया है । “राधा और कृष्ण एक दूसरे के प्रति आकर्षित हैं किन्तु उनका आकर्षण दैहिक नहीं है अपितु आध्यात्मिक है । राधा से कृष्ण कहते हैं — “विवाह नहीं होने पर भी

हमारा मिलना बुरा नहीं क्योंकि हमारे मध्य विशुद्ध प्रेम के सिवा और कोई भाव नहीं । मैं चाहता भी नहीं था कि हम लोगों का विवाह हो । तब हमारे सम्बन्धों में शायद वह शुद्धता नहीं होती अभी हममें अद्वैत हैव्यक्ति अपने से तो प्रेम करता है । सामने वाले के प्रति वासनाग्रस्त होता है ।¹ राधा कृष्ण की पत्नी नहीं अपितु प्रेरणा बनना चाहती है ।² मैं विवाह चाहती भी नहीं मैं ।³ कृष्ण की प्रेरणा बनना चाहती हूँ पत्नी नहीं ।⁴ प्रेम का एक पवित्र उद्देश्य होता है अपने प्रिय को सर्वश्रेष्ठ के रूप में देखना इसी की पूर्ति के लिये राधा कृष्ण की प्रेरणा बनी रहना चाहती है । प्रेम के इस आदर्शमयी रूप की आज के युवा वर्ग को आवश्यकता है । उपन्यास की कथा प्रस्तुत करते समय रचनाकार का प्रयास यही रहा है कि उपन्यास को यथार्थवादी, विश्वसनीय एवं रोचक बनाया जा सके । पाठकों के समक्ष यथार्थवाद के क्रांतिकारी चारित्रिक विकास की जो कथा इस उपन्यास में वर्णित है वह अपने आप में एक प्रेरक सन्देश प्रदान करने वाली है ।

उपन्यास में अनेक खण्ड हैं तथा अधिकांश खण्ड का आरम्भ जीवन के जगत के किसी न किसी यथार्थ चित्रण से होता है । अपनी बात को कहने के लिये अथवा कथा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये इस प्रकार के कथनों को माध्यम बनाया गया है । “व्यक्ति सब कुछ झेल सकता है — शारीरिक से लेकर मानसिक पीड़ा तक पर अपमान ? नहीं यह हलाहल तो घोंटे नहीं घुटतासाधारण व्यक्ति अपमान रूपी सर्प दंश को आसानी से नहीं झेल सकता ।”⁵

“जिस तरह जल में डूबता हुआ मनुष्य चारों ओर हाथ पैर मारता है और एक तिनके को भी सहारे हेतु पकड़ना चाहता है जिस तरह जीवन के अन्तिम क्षणों में उखड़ती सांसें के एक सूत्र को भी पकड़ व्यक्ति संसार से अन्त-अन्त तक जुड़े रहने का अथक

1. डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना पृ० 196 प्रथम संस्करण 1976
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : प्रथम पुरुष पृ० 225
 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : प्रथम पुरुष पृ० 139

प्रयास करता है ।”

इस प्रकार के कथन उपन्यासकार की जीवन दृष्टि को स्पष्ट करते हैं । कथा के विकास क्रम में इन कथनों के साथ ही वातावरण के जो चित्र लेखक द्वारा उपस्थिति किए गए हैं वे तत्कालीन परिवेश को पूरी जीवंतता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

“आज एक बैठक जगती थी। नन्द गृह के पूरब थोड़ी ही दूर पर कदम्ब का एक वृक्ष, गोल-गोल रोमदार पुष्पों से भरा खड़ा था वायु उसकी सुगन्ध से दिशाओं को दूर- दूर तक पूरित कर रही थी । पीत - पराग कण, आसपास विकीर्ण हो वातावरण को एक अद्भुत मादकता से भर रहे थे । फूलों से वौराई शाखाएँ झुक - झुक आई थी जिससे पूरव के क्षितिज पर चढ़ते आ रहे सूर्य की रश्मियों को भी उनसे छनकर नीचे आने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था ।”¹

एक श्रेष्ठ साहित्यकार व अनेक भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण भाषा पर मिश्र जी का अच्छा अधिकार है । संस्कृत का ज्ञान होने के कारण भाषा संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित एवं उच्च स्तरीय है । शब्दों की पकड़ की सामर्थ्य आपमें अधिक है । भाषा में कहीं भी कृत्रिमता देखने को नहीं मिलती सुसंस्कृत पात्र जहाँ शुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते हैं वहीं साधारण ग्रामीण जन ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

“आओ देवि! मैं तुम्हारी व्यग्रता को समझता हूँ । अपनी जन्म स्थली को छोड़कर साधारणतः कोई भी अन्यत्र नहीं चला जाता । फिर यहाँ तो पूर्वजों की पवित्र भूमि को छोड़ने का प्रश्न है सदा सर्वदा के लिये उससे कटने का ।”²

1. डॉ भगवती शरण मिश्र: प्रथम पुरुष पृ-118

2. डॉ भगवती शरण मिश्र: प्रथम पुरुष पृ-169

उपन्यास साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से रचनाकार पाठकों के सम्मुख अपनी बात बहुत प्रभावशाली ढंग से तथा विस्तृत रूप से रखने पर समर्थ होता है अपनी अभिव्यक्ति के लिये उसके पास स्वतन्त्रता अधिक होती है । मनुष्य की चेतना के विकास को उसके मानव से देवत्व तक के विकास क्रम को जिस रूप में लेखक ने प्रस्तुत करना चाहा वह उसमें पूर्णरूपेण सफल हुये हैं ।

पुरुषोत्तम

‘प्रथम पुरुष’ नामक उपन्यास का ही दूसरा भाग ‘पुरुषोत्तम’ है। ‘पुरुषोत्तम’ में श्रीकृष्ण के शेष जीवन का वर्णन है और यह शेष जीवन उनकी मृत्यु – पर्यन्त विस्तृत है। यह भी एक ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यास है आध्यात्मिकता भी इसमें पर्याप्त रूप से देखने को मिलती है। कृष्ण के चरित्र को मानवीय धरातल पर लाकर प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास मिश्र जी की इस कृति में है।

उपन्यास की कथा कंस – वध के पश्चात से प्रारम्भ होती है। कंस के वध के पश्चात मथुरा के सिंहासन पर महाराज उग्रसेन को विराजमान कर दिया जाता है। कंस की पत्नियों का भाई अपने जामाता के वध की खबर सुनकर आग – बबूला हो जाता है और बलराम व कृष्ण के साथ युद्ध की घोषणा करता है। युद्ध में बलराम जरासन्ध को पराजित कर उसे बांध लेते हैं फिर श्रीकृष्ण के आग्रह पर मुक्त भी कर देते हैं। जरासन्ध के मित्र कालयवन द्वारा मथुरा पर आक्रमण कर देने से उन्हें मथुरा छोड़ द्वारिका जाना पड़ता है। विदर्भ-नरेश भीष्मक की पुत्री रूक्मिणी के प्रणय निवेदन पर श्रीकृष्ण शिशुपाल का वध कर रूक्मिणी से विवाह करते हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक राजकन्याओं का उद्धार भी कृष्ण के हाथों होता है कृष्ण के बाल सखा सुदामा अत्यधिक विपन्नता से दुखी होकर कृष्ण से मिलने द्वारिका जाते हैं कृष्ण उन्हें पूर्ण सम्मान प्रदान करते हैं तथा अपने समान वैभवशाली भी बना देते हैं।

श्रीकृष्ण की बुआ के पुत्र पाण्डव उनके भाई दुर्योधन की कुटिलता के कारण बन बन भटक रहे होते हैं। दुर्योधन उन्हें लाक्षगृह में जलाकर मारने का प्रयास करता है किन्तु वे बच निकालते हैं। इस सूचना को पाते ही श्रीकृष्ण व बलराम हस्तिनापुर को प्रस्थान करते

हैं। उन्हें यह विश्वास होता है कि पाण्डव अपने बचाने को में सफल हो गए होंगे विदुर से पूछने पर उन्हें ज्ञात होता है कि पाण्डव सकुशल हैं द्रुपद नरेश की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर में आए ब्राह्मण वेशधारी पाण्डवों को कृष्ण पहचान लेते हैं। अर्जुन स्वयंवर की शर्त पूरी कर द्रौपदी से विवाह कर लेते हैं। माता कुन्ती के आदेश पर द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी बन जाती है। पाण्डव नए राज्य इन्द्रप्रस्थ की स्थापना करते हैं दुर्योधन अपने भाइयों के उत्कर्ष से बहुत आहत होता है और द्यूत कीड़ा के बहाने छल से पाण्डवों को हराकर उनका राज्य छीन लेता है। पाण्डवों को तेरह वर्ष के बनवास के लिए जाना पड़ता है बनवास पूर्ण कर जब वे वापस आते हैं तो दुर्योधन उन्हें उनका राज्य वापस नहीं करता है। श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से संधि का प्रस्ताव लेकर जाते हैं किन्तु दुर्योधन युद्ध के बिना सुई की नोक बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं होता है। परिणाम स्वरूप महाभारत का युद्ध आरम्भ होता है युद्ध के आरम्भ में अपने सगे सम्बन्धियों पूज्यों को अपने सम्मुख खड़ा देखकर अर्जुन अपना गाण्डीव रख देते हैं। वे शोक से आकुल हो जाते हैं तब श्रीकृष्ण उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि मृत्यु केवल शरीर की होती है आत्मा तो अमर है। नियति के क्रम में इन सभी की मृत्यु हो चुकी है अर्जुन तो केवल माध्यम है अतः किसी भी प्रकार की चिन्ता का परित्याग कर उसे अपने कर्म में रत होना चाहिए। श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त कर्म-योग के संदेश को सुनकर अर्जुन का भ्रम दूर हो जाता है और वह युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। अनेक प्रकार के उतार चढ़ावों के पश्चात् विजय श्री अन्ततः पाण्डवों का ही वरण करती है। अठारह दिनों तक चलने वाले इस युद्ध में अपार जन धन की हानि हुई थी। युद्ध समाप्त होने पर श्रीकृष्ण को अपनी उपलब्धियों की प्रेरक शक्ति के रूप में राधा का रमण होता है। उनके संकल्प बल से राधा वहाँ उपस्थित हो जाती है और श्याम की बाहों में उनकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है।

इसके पश्चात उच्छृंखल यादवों के व्यवहार पर क्रुद्ध होकर ऋषि यादवों के विनाश का श्राप देते हैं। ऋषियों के श्राप के फलस्वरूप यदुवंशियों का अन्त हो गया। श्रीकृष्ण का वध भी एक व्याध के बाण से हो गया। इसी के साथ उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

उपन्यास के कथानक की विशेषता है कि इतने विस्तृत महाभारत तथा गीता के सन्देश को कृष्ण के जीवन के साथ इतने कम पृष्ठों में समेटने के बावजूद कोई भी महत्वपूर्ण अंश हटा नहीं है। चूँकि उपन्यासकार ने कृष्ण को भगवान के रूप में नहीं मानव के रूप में देखा है। अतः उनकी कथा एक मानव की कथा के रूप में ही प्रस्तुत की गई है।

“इसी तथ्य को मैंने इस पुस्तक के लिखने के समय सतत ध्यानगत रखा है यही कारण है कि मैंने कृष्ण चरित्र से जुड़े चमत्कारों को ग्रहण करने में संकोच किया है। और हर ऐसी घटना को जिसे पुराणकारों ने चमत्कार के रूप में लिया है, मैंने प्राकृतिक अथवा वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास किया है।”

उपन्यास के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण है जिनको श्रेष्ठ मानव के रूप में उपन्यास में चित्रित किया गया है। राधा इस उपन्यास की नायिका है किन्तु उनका चित्रण अल्प है उनसे अधिक रूक्मिणी को उपन्यास की नायिका मानना अधिक उपयुक्त है। अन्य मुख्य पात्रों में, अर्जुन, दुर्योधन, द्रौपदी, सुदामा, बलराम, कर्ण, कुन्ती आदि आते हैं।

गौण पात्रों में नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, कालयवन, उद्धव, आदि है। डॉ० मिश्र ने इस पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण मानवीय धरातल पर किया

है। युद्धिष्ठिर के द्वारा कराए जा रहे राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के चारित्रिक पक्ष का उद्घाटन करते हुए भीष्म स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

“मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि सारे पुरुषोचित गुणों में श्रीकृष्ण अग्रणी है। पराक्रम, शौर्य, साहस, ध्यान, साधना, उपासना नेम, व्रत, सत्य, निष्ठा, योग, संकल्प, शौर्य, वीर्य, धर्म, पुण्य नीति, राजनीति विनम्रता और मृदुता सब में द्वारिकाधीश अग्रगण्य हैं अतः इनकी अग्रपूजा सर्वथा योग्य है।”¹ श्रीकृष्ण के चरित्र की सम्पूर्ण विशेषताओं का उल्लेख इस संवाद में कर दिया है। पात्रों के चरित्र—चित्रण के लिए रेखाचित्रात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। सुदामा जब श्री कृष्ण से मिलने के लिए उनके द्वार पर उपस्थित होते हैं तो उनकी दशा का वर्णन करता हुआ द्वारपाल कहता है।

“महाराज ! हमने आपसे मिलने—योग्य नहीं समझा। उसके तन के वस्त्र तार—तार हैं। शरीर कंकाल से अधिक कुछ नहीं है। जिस पर मढ़ी चमड़ी झूल गई है। उसके पैरों में न पदत्राण हैं, न सिर पर कोई वस्त्र। दाढ़ी मूँछ के केश बेतरतीव बढ़कर झाड़ियों का स्वरूप ले चुके हैं। उसका सम्पूर्ण गात धूल — सना है। वह आपसे मिलने लायक.....।”²

अर्जुन एक महान धनुर्धर, युद्धिष्ठिर धर्मनिष्ठ, भीम अत्यंत बलशाली तथा कर्ण एक महान दानी के रूप में चित्रित हुआ है। दुर्योधन एक अहंकारी तथा राज्यलोलुप व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। स्त्री पात्रों में रुक्मिणी श्रीकृष्ण की प्रिया, द्रौपदी श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त तथा माता कुन्ती एक आदर्श माता के रूप में चित्रित हुई।

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र के, पुरुषोत्तम (पृ० 220)

2. पूर्ववत् (पृ० 121)

‘पुरुषोत्तम’ के संवाद अत्यंत प्रभावशाली है। संवाद पात्रों की मानसिक स्थिति को प्रकट करने वाले हैं। बलराम अपनी बहन सुभद्रा का हाथ दुर्योधन के हाथ में देना चाहते थे और श्रीकृष्ण इसके विरोध में थे इस समय दोनों के मध्यचल रहे संवाद दोनों की मानसिकता को स्पष्ट कर देते हैं।

“तुम कुछ बोले नहीं।” बलराम ने पूछा था।

“मैं क्या बोलूँ ! मैं तो यह सोच भी नहीं सकता था कि आप सुभद्रा का हाथ दुर्योधन के हाथों में देने की कल्पना भी कर सकते हैं।” श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया ।

“क्यों दुर्योधन में कौन बुराई है ? हस्तिनापुर के राज्य के सदृश इस पृथ्वी पर न तो कोई राज्य है न दुर्योधन की तरह कोई गदा-वीर ।”

“और भीमसेन ?” अर्जुन ने पूछा ।

“वह गदा-वीर हो सकता है पर वह युवराज तो नहीं है।”

विषय अनुकूल संवादों में कहीं रोचकता है तो कहीं गांभीर्य श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के मध्य युद्ध के मैदान में हुए संवादों में कितना गांभीर्य है यह द्रष्टव्य है—

“तो योग का महत्व इतना है कि वह कभी भी प्राप्त हो जाय तो वह हमारा सौभाग्योदय ही है।”

“अवश्य योग और योगी का महत्व तो है ही मुझसे स्पष्ट सुनो तो योगी, तपस्वियों से भी बड़ा है ज्ञानियों से भी बड़ा है, मात्र कर्म रत रहने वालों से भी बड़ा है, अतः हे मेरे मित्र अर्जुन, तुम योगी बनो।”

“योगी अर्थात् कर्मयोगी ? यही न ? अर्जुन ने बात स्पष्ट करानी चाही ”अवश्य फलाफल की चिन्ता किए बिना निरन्तर कर्मरत रहने वाले कर्मयोगी।” श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया।¹ संवाद कहीं-कहीं संक्षिप्त है तो कहीं अधिक विस्तृत । कृष्ण – अर्जुन के संवादों में ही सम्पूर्ण गीता सार होना इस कृति के संवादों की विशेषता है।

यथा कथा द्वापर युग की है। इतने प्राचीन आख्यान को जिसकी प्रामाणिकता के विषय में भी सन्देह प्रकट किए जाते रहे हैं उसकी पूरी यथार्थता का साथ डॉ० मिश्र ने अपनी कृति में चित्रित किया है। इस पौराणिक कथा को ऐतिहासिक बनाने के पक्ष में अपना तर्क देते हुए मिश्र जी कहते हैं।

“ पुराण और इतिहास में यद्यपि अन्तर नहीं है क्योंकि पुराणों का आधार भी इतिहास ही होता है किन्तु पुराणकारों की यह विशेषता होती है कि वे अतिशयोक्तियों और रूपकों का सहारा लेकर ऐतिहासिक प्रयास करते हैं। साथ ही जो पुराण जिस व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होता है उसी को वह सर्वोपरि मानता है और उसे ईश्वर तक पहुँचाने का प्रयास करता है।”² इसी ईश्वर वापस मानव के रूप में प्रस्तुत कर समाज को एक दिशा निर्देश देने का कार्य किया है। उन समय के वातावरण और देशकाल को पूरी ईमानदारी से चित्रित किया गया है। राजकुमारियों के विवाह के लिए स्वयंवर होना, एक राजा की कई पत्नियों, अपने बाहुवल से किसी भी कुमारी को जीवन सहचरी बनाना, राज्य के लिए युद्ध होना, युद्ध में धनुषबाण, गदा, भाले इत्यादि का हथियार के रूप में प्रयोग उस समय की स्थिति का पूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं। देश बहुत अधिक संपन्न था इसका भी पता चलता है। प्राकृतिक परिवेश का चित्रण कुछ स्थानों पर इतनी कुशलता से किया गया है कि वह उस स्थान का

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पुरुषोत्तम (पृ० 342)

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पुरुषोत्तम की भूमिका से

साक्षात् चित्र सा पाठकों की आँखों के आगे प्रस्तुत कर देता है। एक उदाहरण देखिए—

“पश्चिमी समुद्र की उत्ताल तरंगें द्वारावती के सुदृढ़ नगर की दीवारों पर पछाड़ खा रही थीं। जैसे कोई महान फणिधर व्यर्थ ही किसी पाषाण खण्ड पर अपने फन को बार—बार पटक स्वयं को आहत करता रहे। पूर्णिमा का चाँद पूर्वी क्षितिज पर अपनी सोलहों कलाओं से उदित हो उदधि जल को उद्विग्न कर रहा था — ज्वार जगा सागर अपनी राशि राशि लहरों को नगर प्राचीर पर सिरफोड़ते देख रहा था — असहाय किन्तु प्रसन्न, तरंगायित, उद्वेलित और आनंदित। पूरे तीस दिनों के पश्चात् चाँद जो उगा था ऊपर — नील मणि के विस्तृत थाल में। स्वर्ण — कुसुम की तरह खिला चाँद।”

द्रौपदी के स्वयंवर के समय का जो वर्णन पुस्तक के सैंतालीसवें अध्याय में किया गया है वह भी प्रभावशाली है।

पात्रों की वेशभूषा, रहन सहन सभी तत्कालीन वातावरण की साक्षात् प्रस्तुति करते हैं।

पुरुषोत्तम की भाषा अत्यन्त सजीव तथा लेखक के उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि उस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष अध्यात्म भी है अतः शुद्ध साहित्यिक, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी होने के साथ ही यह गम्भीरता के लक्षणों से मुक्त है।

आरम्भ से लेकर अन्त तक रोचकता इसमें विद्यमान है। यह भाषा की ही विशेषता है जो उपन्यास के आरम्भ से लेकर उसके अन्त तक पाठक को बंधे रखती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पुरुषोत्तम (पृ० 141)

“मनुष्य जीवन का बहुत कुछ पूर्व निर्धारित है— सुख दुःख, संयोग —वियोग, प्रसन्नता — अप्रसन्नता यहाँ तक कि मान अपमान भी । सब उसके पूर्व कृत्यों का फल है— वे कृत्य इस जन्म के भी हो सकते हैं, पूर्व जन्म के भी।”¹

गीता के गूढ़ उपदेशों को अत्यंत सरल भाषा में लेखक ने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । लेखक ने पुस्तक की भूमिका में स्वयं लिखा है “अगर गीता की मूल पुस्तक को खोलकर एक ओर रख लिया जाए और उपन्यास के इस प्रसंग को दूसरी ओर तो गीता के श्लोक ही नहीं शब्दों तक के अर्थ पूरी तरह स्पष्ट हो जायेंगे। यद्यपि यहाँ शब्दार्थ अथवा श्लोकार्थ प्रत्यक्ष रूप में नहीं दिये गए हैं।”² उपन्यास के गीता प्रसंग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

“यह जो आत्मा अथवा दूसरे शब्दों में इस शरीर का मालिक शरीरी है वह अविनाशी है, परिवर्तन — रहित है, नित्य है, यह जिन शरीरों में रहता है वे ही नाशवान है अतः तुम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ।”

“जो इस आत्मा को मारने वाला अथवा मारने योग्य समझते हैं वे दोनों इसके स्वरूप को जानते नहीं, न तो यह मरता है न मारा जाता है।”²

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने यथार्थवाद के सांस्कृतिक आध्यात्मिक पक्ष को प्रकट किया है। युद्ध समाधान नहीं है किन्तु जब युद्ध आवश्यक ही हो जाए तो ऐसे समय में शुभ—अशुभ, पाप—पुण्य सभी विचार त्यागकर कर्म में रत हो जाना चाहिए निष्काम कर्म करने का सन्देश यह उपन्यास देता है। यह आज के समय में प्रासंगिक भी है लेखक ने स्वयं कहा है—

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पुरुषोत्तम (पृ० 141)
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पुरुषोत्तम (पृ० 273)

“प्रस्तुत उपन्यास की अथवा कृष्ण के जीवन की आज के संदर्भ में प्रासंगिकता उपन्यास में स्वयं ही स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है।”

पीताम्बरा

पीताम्बरा डॉ० भगवतीशरण मिश्र की एक ऐसी औपन्यासिक कृति है। जिसमें उन्होंने ऐतिहासिक पात्र मीरा के माध्यम से समाज के सम्मुख एक क्रांतिकारी आदर्श प्रस्तुत किया हैं ‘पीताम्बरा’ उपन्यास पर डॉ० मिश्र को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का प्रेमचन्द पुरस्कार मिल चुका है। सवा छः सौ पृष्ठों के लगभग इस बृहत्काय उपन्यास में ऐतिहासिकता आध्यात्मिकता, मनोवैज्ञानिकता है। डॉ० मिश्र के शब्दों में —

“मेरी दृष्टि में ‘पीताम्बरा’ में इतिहास के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है— मनोविज्ञान है, प्राकृतिक चित्रण भाषा वैभव है अपना शिल्प और शैली है तथा है लेखकीय दर्शन और चिंतन भी। इन सबों ने मिलकर पीताम्बरा को ‘पीताम्बरा’ बनाया है।”

मिश्र जी की अन्य ऐतिहासिक पौराणिक कृतियों (औपन्यासिक कृतियों) की ही तरह पीताम्बरा भी एक यथार्थवादी कृति है। मीरा के जीवन से सम्बन्धित कुछ चमत्कारिक घटनाओं को लेकर मिश्र जी को थोड़ी मुश्किल आई किन्तु कल्पना का सहारा लेकर उन्होंने उन चमत्कारों को सामान्य पाठकों के गले उतरने लायक बना दिया है। उन्होंने कहा है कि “हर ऐतिहासिक घटना का साक्ष्य नहीं होता, अतः अगर इतिहास का पुनर्निर्माण करना हो तो संभावना जनित कल्पना का सहारा तो लेना ही होगा। यहाँ कोई ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं है अतः कल्पना का सहारा ऐतिहासिकता का हनन करने का भागी नहीं हो

सकता ; ”

उपन्यास की कथा का प्रारम्भ मीरा के बाल्यकाल से होता है मीरा एक साधारण बालिका के ही रूप में चित्रित की गई हैं उनके व्यवहार व आचरण में एक साधारण बालक की सी चंचलता दिखाई देती है।

मीराबाई से एक बार यह कह दिए जाने पर कि कृष्ण ही उनके स्वामी हैं वे कृष्ण को ही अपना सब कुछ मानकर अनन्य भक्ति भाव से उनके प्रति समर्पित हो जाती हैं। मीरा अपने पितामह राव दूदा के संरक्षण में रहती हैं वहीं से धार्मिक संस्कार विशेषकर कृष्ण भक्ति उनके मन में उत्पन्न होती है। राव दूदा परम वैष्णव भक्त थे। मीराबाई का विवाह कुछ वर्ष उपरान्त राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हो जाता है। सुसराल में मीरा को भोजराज की ओर से कृष्ण की भक्ति में पूरा सहयोग मिलता है। भोजराज उनकी भक्ति में बाधक नहीं अपितु साधक सिद्ध होते हैं किन्तु यह सहयोग मीरा को अधिक दिन तक प्राप्त न हो सका और विवाह के कुछ वर्षों के उपरान्त ही भोजराज को देहान्त हो जाता है। मीरा अपने पति के साथ सती नहीं हुई क्योंकि वह श्रीकृष्ण को अपना सुहाग मानती थी क्योंकि वे तो अविनाशी ब्रह्म हैं। पति की मृत्यु के बाद मीरा पूरी तरह कृष्ण भक्ति में तल्लीन हो जाती हैं। उनके परिवार के अन्य सदस्यों को मीरा का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता है। मीरा के देवर विक्रम सिंह को मीरा का मंदिरों में बैठकर भजन करना साधु संतों के साथ मंडली बनाकर प्रवचन करना राजपरिवार की मर्यादा के विरुद्ध लगता है परिवार की मर्यादा बचाने के उद्देश्य से वे मीरा को मार डालने का प्रयास करते हैं किन्तु दैव — योग से मीरा प्रत्येक बार बच जाती हैं। इसके बाद मीरा वृन्दावन चली जाती हैं वहाँ कृष्ण प्रेम में डूब जाती हैं

वहाँ से मीरा द्वारिका चली जाती हैं जहाँ रणछोड़ जी के मंदिर में कृष्ण विग्रह के सम्मुख उन्हें यह प्रतीत होता है कि उनके आराध्य उनके समीप हैं और वे कृष्ण-विग्रह के पीछे दरवाजे से समुद्र की लहरों में स्वयं का समाहित कर देती हैं। इस प्रकार उपन्यास में मीरा के जन्म से लेकर उन की मृत्यु तक की कथा में प्रवाह के साथ-साथ उत्सुकता बनाए रखने की शक्ति भी है। जिस प्रकार मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की भी उसी प्रकार उपन्यास पढ़कर भी पाठक का मन आनन्द से अभिभूत हो जाता है।

उपन्यास में डॉ० मिश्र ने जितने भी पात्रों का चित्रण किया है वे यथार्थवादी हैं अर्थात् वे लेखक की कल्पना की सृष्टि नहीं हैं अपितु मीरा के वास्तविक जीवन से जुड़े लोगों का लेकर ही लेखक ने कथा का ताना बाना बुना है। पात्र एवं चरित्र स्वाभाविक रूप से कृति की सभी विशेषताएँ हैं।

अपनी विशिष्ट शैली में लेखक ने इसमें आधुनिक जीवन बोध के संदर्भ में मीराबाई की प्रासंगिकता को गहराई से अंकित किया इस उपन्यास को लिखने का उद्देश्य मीरा के जीवन को चित्रित करने का साथ ही उसके महत्व को भी वर्णित करना रहा है। औपन्यासिक तत्वों के आधार पर इस उपन्यास का विश्लेषण न करके यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में हम इसका आलोचनात्मक विश्लेषण करेंगे।

डॉ० मिश्र ने इस उपन्यास में मीराबाई के जीवन के उस पक्ष पर प्रकाश डाला है जो एक यथार्थवादी नायक का पक्ष है। मीराबाई यद्यपि प्रमुख रूप से कृष्ण की साधिका है किन्तु उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष एक समाज सुधारक क्रांतिकारी का भी है। मीरा के चरित्र के इस पक्ष को एक उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है

“हममें और आप में कोई अन्तर नहीं है हम सबों के हृदय में एक ही ईश्वर बसता है।..... संगठन में शक्ति है। आप सब बिखरे हुए हैं नाना धर्मों और जातियों के नाम पर इसीलिए आपका शोषण होता है आप बहुत कुछ कमाने के बाद भी गरीब के गरीब रह जाते हैं। मैं चाहती हूँ कि आप श्रीकृष्ण के नाम पर संगठित हों।..... हमारे देश पर खतरे के मेघ मंडरा रहे हैं। बाहर के आक्रामक मुगल हमारी इस धरती इस भारतमाता के एक बड़े भू-भाग को हड़पे बैठे हैं उनकी दृष्टि अब आप पर है। राजपूताने पर है मेवाड़ और मारवाड़ पर है अगर आपने संगठित होकर हमारा साथ नहीं दिया तो हम मुगलों के गुलाम हो जायेंगे।”

मीरा के जीवन से जो चमत्कार जुड़े हैं उन्हें लेखक ने यथासंभव अपनी व्यावहारिक बुद्धि के बल पर साधारण घटना बनाने का प्रयास किया है।

“मैंने पीताम्बरा में मीरा से सम्बन्धित बहुत सारे चमत्कारों को निकालने का प्रयास किया है सबसे कठिनाई मुझे मीरा के द्वारा विष का प्याला पीने और जीवित रह जाने की घटना को लेकर हुई। मैं उसे नकार भी नहीं सकता था क्योंकि मीरा ने स्वयं लिखा—

राणा विष का प्याला भेज्यों

पीयत मीरा होंसी रे ।

..... मैंने उसे महीनों ‘स्लो प्यायजनिंग’ कराया जिसके फलस्वरूप राणा का विष — प्याला व्यर्थ हो गया”² इस प्रकार विषपान सम्बन्धी चमत्कारिक घटना को लेखक ने यथार्थवादी बना दिया।

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पीताम्बरा (पृ० 197)

2. सम्पादक आशुतोष कुमार सिंह : डॉ० भगवती शरण मिश्र के साक्षात्कार (पृ० 70)

वैसे भी पीताम्बरा केवल ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है इतिहास के अतिरिक्त इसमें और भी बहुत कुछ है।

“मेरी दृष्टि में पीताम्बरा में इतिहास के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है— मनोविज्ञान है प्राकृतिक चित्रण है, भाषा वैभव है, अपना शिल्प और अपनी शैली है तथा है लेखकीय दर्शन और चिंतन भी”¹

उपन्यास के अन्य महत्वपूर्ण पात्रों में मीरा की सखी ललिता मीरा के पति कुँवर भोज राज, रावदूदा, रतन सिंह महाराणा सांगा इत्यादि हैं।

सभी पात्र ऐतिहासिक हैं काल्पनिक पात्रों से बचने का पूरा प्रयास किया है।

उपन्यास में पात्रों का चरित्रांकन यथार्थवादी पृष्ठ भूमि पर ही हुआ है। यथार्थवादी जिस प्रकार मानवी चेतना के विकास के द्वारा मानव से महामानव तक पहुँचने की प्रेरणा देता है उसका स्पष्ट उदाहरण पीताम्बरा की नायिका ‘मीरा’ है।

इस उपन्यास की कथा उस समय की है जब भारत में धीरे-धीरे मुगल अपने पैर फैलाते जा रहे थे। जनता में घोर असन्तोष एवं अन्धविश्वास व्याप्त था। जागरूक एवं शिक्षित न होने के कारण उनका शोषण किया जा रहा था। इस वातावरण में नारियों की क्या दशा थी उसका एक चित्र दृष्टव्य है।

“नारी का जीवन ही दुःखों को झेलने के लिए बना है कभी कहा गया होगा इस आर्य भूमि में कि जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता बसते हैं पर अब तो इस युग में नारी पर्याय है परतन्त्रता का, प्रताड़ना का, शोषण का, निरक्षरता का और अदम्य अत्याचार का आर्थिक पराधीनता ही उन सारे शोषणों के मूल में हैं।”²

1. सम्पादक आशुतोष कुमार सिंह : डॉ० भगवती शरण मिश्र के साक्षात्कार पृ० —66
2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : पीताम्बरा पृ०—151

इस एक संवाद में ही तत्कालीन नारियों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

पीताम्बरा के संवाद एवं कथोपकथन बड़े ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी हैं। संवादों में कहीं पात्रों की व्यथा झलकती है तो कहीं परिस्थितियों के प्रति आक्रोश दिखाई देता है।

उपन्यास की भाषा डॉ० मिश्र की संस्कृत शब्दावली से युक्त साहित्यिक हिन्दी है जिसका प्रयोग उनके अधिकांश उपन्यासों में मिलता है।

“उठालो इस धरती से युद्ध को मुक्त कर दो मनुष्य इस पशुता से और हो सके तो उतार दो इस ऑगन में कोई ऐसा प्रभु प्रेमोन्मादी जो पाशविक प्रवृत्तियाँ नहीं, मानवीय और दैवी प्रकृति का प्रचार—प्रसार कर सके इस रक्त पिपासा ग्रस्त धरती पर।”

मीरा के जीवन पर आधारित पीताम्बरा लेखक द्वारा अपनी विशिष्ट शैली में रचित एक अत्यंत रोचक एवं प्रामाणिक उपन्यास जो आधुनिक जीवन बोध के संदर्भ में इस संत कवयित्री की प्रासंगिकता को गहराई से अंकित करता है।

यह उपन्यास राष्ट्रप्रेम, मानवप्रेम, ईश्वरप्रेम, करुणा दया, क्षमा इत्यादि गुणों के लिए प्रेरित तो करता ही है साथ ही विषम परिस्थितियों में भी जीवन जीने की इच्छा की प्रेरणा भी देता है यह विश्वबन्धुत्व एवं मानववाद की स्थापना करता है “सार है मानव का मानव से प्रेम । सार है विश्वबन्धुत्व की भावना, मानव , को समान समझने की हमारी जाग्रत चेतना । सार है इन गुणों इन विशेषताओं को प्राप्त करने के लिए अन्तः करुणा का पूर्ण शुद्धिकरण , मन के मानसरोवर को ईर्ष्या, विद्वेष, हल, छद्म, स्वार्थ, और कालुष्य के कीचड़ और शैवाल से मुक्त कर उसे प्रेम, श्रद्धा, दया, भक्ति और त्याग के मोतियों से भरना शेष सब निस्सार है।”²

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पीताम्बरा (पृ० 33)
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पीताम्बरा (पृ० 34)

काके लागू पांव—

का के लागू पांव डॉ० भगवती शरण मिश्र की एक ऐसी औपन्यासिक कृति है जो पौराणिक — ऐतिहासिक होन क साथ — साथ यथार्थवादी भी है ।

उपन्यास की ८. सिखों के नवम गुरु गुरु तेग बहादुर तथा दशम गुरु गुरु गोविन्द सिंह के जीवन की कथा है । कथा का आरम्भ पाटलिपुत्र नगर में सिखों के नवम गुरु गुरु तेग बहादुर के प्रवंश से होता है । उनके यहाँ आने का एकमात्र कारण धर्म का, पंथ का प्रचार प्रसार था । गुरु अपने पंथ का प्रचार करने पूर्वी प्रदेशों की ओर बढ़ गये किन्तु उनका परिवार माता नानकी देवी व पत्नी गूजरी देवी पाटलिपुत्र में ही रुक गये । गूजरी देवी के भाई किरपालचन्द भी उनके साथ रुक गये ।

कुछ समय पश्चात गूजरी देवी ने एक पुत्र उत्पन्न किया इस पुत्र की उत्पत्ति की सूचना पाकर गुरु तेग बहादुर प्रसन्न तो हुये किन्तु पंथ को पूरी तरह से समर्पित होने के कारण तुरन्त पुत्र दर्शन के लिये नहीं जा सके । गुरु तेग बहादुर ने श्रद्धेय गुरु हरगोविन्द जी के नाम पर बालक का नाम गोविन्द रखा ।

नवजात शिशु के दर्शन को आए सन्त भीखन शाह अपने प्रयोग से पाटलिपुत्र के निवासियों के सामने यह सिद्ध कर गये कि बड़ा होकर यह बालक हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक समान दृष्टि से देखेगा ।

उधर असम में गुरु को अपने पंथ का प्रचार करने में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा । गुरु ने अपने पंथ में समाज से उपेक्षित आदिवासी जनजातियों को विशेष रूप से सम्मिलित किया । पाटलिपुत्र में नवजात बालक के दर्शनों के लिये रात दिन निवासियों का तौतौ लगा रहता था । दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते बालक गोविन्द की शरारते

भी बढ़ती जा रही थी । घर के आँगन में स्थित कुएँ पर औरतें पानी भरने आती तो गोविन्द निशाने लगाकर उनके घड़े फोड़ दिया करता था ।

बालक गोविन्द अपने हमजोलियों के साथ कृत्रिम लड़ाइयों और युद्धाभ्यास किया करता था । किरपालचन्द ने बालकों को तैरना भी सिखला दिया ।

गुरु तेगबहादुर को अपने पंथ के प्रचार में मुस्लिम शासकों से परेशानियों होने लगी थी । इन परेशानियों को दूर करने के लिये गुरु ने रामसिंह जो मुगलों से मिला हुआ था की संधि आदिवासी सरदार चक्रधर से कराई ।

मामा किरपालचन्द्र के निर्देशन में गोविन्द अस्त्र – शस्त्र का प्रशिक्षण ले रहा था तो पंडित शिवदत्त उसकी आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करने में लगे थे । इन सब के मध्य गुरु जब बालक से मिलते हैं तो दोनों के आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती कुछ क्षण परिवार के साथ बिताने के पश्चात गुरु पंजाब के लिये कूच कर देते हैं ।

पंडित शिवदत्त के सानिध्य में रहकर गोविन्द श्रद्धा, भक्ति, धर्म एवं अध्यात्म सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण करता है । इससे उनमें प्रवचन की प्रकृति जाग्रत हो जाती है । और फिर एक दिन आनन्दपुर से गुरु तेग बहादुर का सन्देश आता है और समूचा परिवार आनन्दपुर के लिये प्रस्थान कर देता है । उनके जाने की सूचना प्राप्त करते ही सारा पाटलिपुत्र शोक में डूब जाता है । यथासम्भव सभी ने प्रयास किया गोविन्द को रोकने का किन्तु उसे नहीं रुकना था तो वह नहीं रुका ।

आनन्दपुर साहब तक की यात्रा में गोविन्द ने विभिन्न तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया जिनमें सर्व प्रथम काशी के विश्वनाथ मन्दिर के दर्शन किये गये उसके पश्चात गंगा स्थान के साथ – साथ काशी के सभी दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया गया । इस दल का

दूसरा पड़ाव था पवित्र सरयू के किनारे बसी अयोध्या जहाँ पवित्र एवं प्राचीन हनुमान मन्दिर के दर्शन कर यह दल अयोध्या के अन्य प्रसिद्ध स्थलों को देखता हुआ यह दल लखनऊ पहुंच गया वहाँ अलीगंज के हनुमान मन्दिर के दर्शन किये तथा भूल भुलैया भी देखी । गुरु माता नानकी देवी का काफिला तीर्थ यात्रा कर रहा था और उधर गुरु तेग बहादुर को चिन्ता होने लगी दल अभी तक आनन्दपुर क्यों नहीं पहुंचा । नानकी देवी मार्ग में पड़े अपने मैके लखनौर में कुछ दिन रुक गई वहीं उनको गुरु का सन्देश प्राप्त हुआ ओर दल आनन्दपुर पहुंच गया ।

पुत्र के पिता के पास पहुंचते ही पिता ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया व बालक में छिपी प्रतिभा को देखा और उन्हें प्रेरित करना आरम्भ किया ।

आनन्दपुर के किले में शस्त्रास्त्रों के संचालन के प्रशिक्षण की समस्या तो नहीं थी किन्तु ज्ञान देने के लिये पंडित और मुल्ला की कमी थी ।

गुरु तेगबहादुर ने किरपाल चन्द्र को यह उत्तरदायित्व सौंपा कि वह एक पंडित व एक मौलवी का प्रबन्ध करे । संयोग की बात कि दोनों उनको पंजाब में ही मिल गये । गोविन्द के लिये तो समुचित व्यवस्था हो गई किन्तु आनन्दपुर की लोकप्रियता की खबर जब औरंगजेव तक पहुंची तो उसने अपने सिपहसालारों को तलवार के दम पर इस्लाम के प्रचार का आदेश दिया ।

गुरु हिन्दुओं की मदद को जा रहे गुरु तेग बहादुर को औरंगजेव के सिपाहियों ने मार्ग में ही पकड़ लिया । औरंगजेव ने गुरु को जेल में कैद कर उनके पास सन्देश भेजा कि इस्लाम कुबूल करने पर उन्हें माफ किया जा सकता है । गुरु ने औरंगजेव के द्वारा दिये गये सभी प्रलोमनों को टुकरा दिया । उसके सिपाहियों ने गुरु शिष्यों को इस्लाम कुबूल करवाना चाहा किन्तु उन्होंने भी मना कर दिया परिणामस्वरूप एक शिष्य को खौलते कड़ाह

में तथा एक को जीवित जला दिया गया । गुरु तेग वहादुर इस सब कोदेखकर तनिक भी विचलित नहीं हुये अपितु पंथ के प्रति उनका विश्वास और दृढ़ हो गया । गुरु की अटूट निष्ठा को देखकर मुगल सरदार का गुस्सा भड़क उठा और दिल्ली के चौदनी चौक पर गुरु को शहीद कर दिया गया । अचानक ही आँधी तूफान आ गया और गुरु का एक शिष्य लक्खीदास उनके शरीर को लेकर अपनी झोंपड़ी में आया और झोंपड़ी सहित उसने गुरु के शरीर को अग्नि के हवाले कर उनका अन्तिम संस्कार कर दिया ।

गुरु तेगवहादुर की शहादत की खबर जब उनके सिर के साथ आनन्दपुर पहुंची तो गोबिन्द राय ने धीरज धारण कर समस्त पंथ वासियों को एकजुट कर उनमें नवीन प्रेरणा का संचार किया जिससे गुरु तेगवहादुर की शहादत व्यर्थ ने जाये । इसी के साथ 'का के लागूं पांव' की कथा समाप्त हो जाती है । कथानक पौराणिक व ऐतिहासिक होने के साथ – साथ यथार्थपरक भी हैं इस कथा की यह विशेषता है कि घटना एवं पात्र सभी वास्तविक हैं । प्रकृति चित्रण तथा कुछ एक स्थानों के चित्रण में अवश्य लेखक ने अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग किया है ।

उपन्नास की कथा मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ साथ विश्व प्रेम तथा विश्वमानवता का सन्देश प्रसारित करती है । मानव मन का परम भाव प्रेम है अतः प्रेम ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिये संसार में सभी जीवधारियों से प्रेम ही विश्व को एकमय कर सकता है । 'विशुद्ध प्रेम की एक और बड़ी विशेषता है – भेद भाव की दीवार इसने देखी ही नहीं । यह जाति लिंग, धर्म – सम्प्रदाय सबसे ऊपर है । उम्र भी उसमें कोई व्यवधान नहीं । '

यथार्थवादी कृत के अनुरूप इसमें समाजवादी यथार्थवाद आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद देखते को मिलता है । समाज के गरीब, शोषित असहाय मनुष्यों में नई शक्ति का संचार कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करना समाजवादी यथार्थवादी को प्रकट करता है । "सिख धर्म सबको समानता प्रदान करता था । इस पंथ का पथिक न अछूत रह जाता था न समाज की मूल धारा से वहिष्कृत उसके अन्दर का स्वाभिमान जग आता था और जो अब तक सिर झुकाकर चलने का आदी था अब सिर उठाकर चलने लगता था।"

काशी में पवित्र गंगा नदी में व्याप्त गंदगी व सड़ी हुई लाशों को देखकर गोविन्द का मन विद्रोह कर उठता वह कहता है "यह तो बुरा है । बहुत बुरा ।"

"क्या ? "

"मृत्यु की यह कायरतापूर्ण प्रतीक्षा । उसका असमय आह्वान । मोक्ष के सम्बन्ध में यह गलत अवधारणा।" आलोचनात्मक विवरण लेखक ने यहाँ पर प्रस्तुत किया है । 'का के लागू पांव' का कथानक ऐतिहासिक होने के साथ- साथ यथार्थपरक भी है । लेखक ने बड़ी ईमानदारी के साथ तत्कालीन घटनाओं एवं पात्रों को चित्रित किया है 'एक नवीन युग की स्थापना का भविष्य इसमें दिखाई देता है ।

"किसी भी समाज में पुरानी चली आने वाली परम्पराओं तथा रुढ़ियों की पंत्तें उसके अधिकांश सदस्यों के मन पर चढ़ती रहती है । ये पंत्तें अन्धविश्वास तथा मूढ़ ग्राहों की भी हो सकती हैं तथा मिथ्या भय और मिथ्या अहंकार की भी । समाज के विकास के साथ — साथ 'प्रेजुडिस' को भी जन्म मिलता है । इस 'प्रेजुडिस' पर विजय पाने के लिये

जिस व्यापक सहानुभूति की आवश्यकता होती है, उसे एक उपन्यास कार ही दे सकता है।¹ का के लागू पांव के नामक गुरुतेग वहादुर समाज से इन्हीं अंधविश्वासों को दूर करने में आजीवन प्रयासरत रहे ।

उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथा साहित्य होते हुये भी इसका एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है ।

“..... इसका एक पात्र भी काल्पनिक नहीं चाहे इसका सम्बन्ध गुरु — पुत्र से हो या पिता से । कोई यह भ्रम नहीं पाले कि अर्द्ध विक्षिप्त पंडित शिवदत्त से लेकर पीर भीखन शाह अथवा राजा फतह चन्द मैनी और मामा किरपालचन्द्र मे से कोई भी लेखकीय कल्पना की उपज है ।”² उपन्यास के नामक सिखों के नवम् गुरु, गुरु तेगबहादुर है पूरे उपन्यास में उनके त्याग बलिदान, वीरता बुद्धिमत्ता तथा पंथ के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना दृष्टिगोचर होती है । गुरु अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों के प्रति भी जागरूक रहते थे । समाज के निकृष्ट जनों को पथ में सम्मिलितकर उनके आत्मवल को बढ़ाने का कार्य गुरु तेग वहादुर ने किया । उनकी कर्तव्य परायणता की प्रशंसा करती हुई गूजरी देवी कहती है । “कर्तव्य प्रेम से बड़ा होता है बेटा ! तुम्हारे पिताजी एक बड़े कर्तव्य पालन में लगे हैं । उसके पूरा होते ही वे हमारी खबर लेंगे ।”³

“यह गाथा है पिता के बलिदान की शहादत की, साहस और शौर्य की उसके अन्त की, तो यह कहानी है पुत्र के आरम्भ की, उसमें निहित सम्भावनाओं की इन सम्भावनाओं के इजहार की ।”⁴

-
- | | | |
|----|----------------------|--------------------------------|
| 1. | स० शिवदान सिंह चौहान | . आलोचना पृ० 48 अक्टूबर 1954 |
| 2. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : का के लागू पांव पृ०—7 |
| 3. | डॉ० भगवती शरण मिश्र | . “का के लागू पांव” पृ० 200 |
| 4. | डॉ० भगवती शरण मिश्र | : का के लागू पांव की भूमिका से |

गुरुतेगबहादुर के साथ ही गोबिन्द राय भी दूसरा कथा नायक है। उनके जीवन की आरम्भिक कथा इसमें समाहित है। अन्य मुख्य पात्र हैं माता नानकी देवी, गूजरी देवी, किरपाल चन्द। सभी पात्रों का यथार्थ चरित्रांकन कथाकार ने किया है अन्य पात्रों में पंडित शिवदत्त, राजा फतेहचन्द मैनी, पीर भीखन शाह, इत्यादि हैं।

उपन्यास में पात्रों के चरित्र एवं व्यक्तित्व का विकास सामाजिक स्थिति के अनुरूप ही हुआ है। डॉ मिश्र ने मनोवैज्ञानिक चित्रण पद्धति को पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए अपनाया है। पुत्र के जन्म की सूचना प्राप्त करके भी उसे देखने न जाना।

बालक गोविन्दसिंह का पितृ प्रेम की प्राप्ति के लिए व्याकुल होना तथा पिता के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा, उसके बाल मन तथा स्वभाव को चित्रित करती है। गुरु तेग बहादुर का जब परिवार से अनेक वर्षों के बाद तो पत्नी का उनसे रूठ जाना। माता नानकी देवी का तीर्थ – यात्रा प्रेम। यह सब पात्रों की स्वाभाविक मन स्थिति को प्रकट करता है। ऐसा नहीं है कि कथाकार ने केवल पात्रों के हृदय के उज्ज्वल पक्ष को ही प्रकट किया हो। पात्रों के हृदय की स्वाभाविक मानवोचित दुर्बलताओं को भी उन्होंने चित्रित किया है।

“पर पुत्र-दर्शन की अभिलाषा ही तो उन्हें यहाँ खींच लाई। यह मोह है, गुरु ने सोचा, विशुद्ध और स्पष्ट मोह। के बन्धन में नहीं बँधना, यह गुरु नानक से लेकर सभी सिख गुरुओं की शिक्षा थी। इस शिक्षा की उन्होंने अवमानना की थी तो फल उन्हीं को भोगना था।”

काल्पनिक चरित्रों के निर्माण में लेखक को अपेक्षाकृत स्वतंत्रता अधिक रहती है। अपनी इच्छानुसार एवं कथा की आवश्यकतानुसार लेखक पात्रों के चरित्र के विकास को निर्धारित करता है। किन्तु ऐतिहासिक पात्रों के साथ अधिक छेड़छाड़ नहीं की जा सकती एक सत्य

यह भी है कि काल्पनिक चरित्रों से अधिक यथार्थवादी चरित्र प्रभाववादी होते हैं । यद्यपि उपन्यास के चरित्र ऐतिहासिक हैं किन्तु फिर भी लेखक के व्यक्तित्व एवं विचारधारा की झलक हमें इन चरित्रों में मिल ही जाती है। घुमक्कड़ी प्रकृति होने के कारण विभिन्न स्थानों के विषय में जानकारी लेखक को है इस जानकारी का प्रयोग लेखक ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से स्थान वर्णन में किया है (पृ० 285) पर नानकी देवी ने गंगा एवं यमुना का वर्णन किया है।

“का के लागूं पांव” के संवाद अत्यन्त प्रभावशाली एवं भावामिष्यंजक है । संवाद पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करते हैं इस रूप में “का के लागूं पांव” के संवाद अत्यन्त कलात्मक है । गुरु तेग बहादुर एवं किरपालचन्द में हुए वार्तालाप का एक अंश देखिए “तब तो हमारी और भी अधिक आवश्यकता है वहाँ इस आग में आपको अकेले कूदने की अनुमति की आवश्यकता कब से पड़ने लगी ? गुरु महाराज परिहास में बोले ।

“किसी की पड़े या नहीं, परिवार की अनुमति की अपेक्षा तो गुरु से भी की ही जायेगी।” किरपालचन्द अपने तर्क पर दृढ़ थे। इन संवादों से गुरु की कर्तव्यपरायणता एवं त्याग की भावना का पता चलता है। साथ ही किरपालचन्द की स्पष्टवादिता एवं गुरु के प्रति प्रेम का ज्ञान होता है। विषय के अनुरूप संवाद कहीं-कहीं बहुत विस्तृत हैं तो कहीं अत्यन्त संक्षिप्त है । उपन्यास में कई स्थानों पर अत्यन्त सारगर्भित संवाद है । उदाहरण के लिए (पृ० 229) पर “देखो मंदिरों में लगता है।” इस संवाद में मंदिरों के आध्यात्मिक महत्व को बताया गया है। चूँकि यह ऐतिहासिक उपन्यास है अतः इसमें गुरु तेग बहादुर एवं गुरु गोविन्द सिंह के समय की गाथा है। यह उस समय की कथा है जब भारत में मुसलमानों का शासन था तथा औरंगजेब के अत्याचारों से यहाँ की जनता त्रस्त थी उस समय हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए एक पंथ का आरम्भ हुआ जिसका नाम था खालसा पंथ ।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण इस उपन्यास में प्रभावशाली रूप से किया गया है। उपन्यास की कथा यदि इतिहास से सम्बन्ध रखती है तो उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि ऐतिहासिक सत्य को पाठकों के सम्मुख वह इस रूप में रखे कि वह व्यापक सत्य बन जाय । “का के लागू पांव” में तत्कालीन वातावरण का सजीव चित्रण है। नवावों की हाथी पर सवारी निकलने का दृश्य गुरु का अपने काफिले के साथ इधर से उधर भ्रमण, मुगलों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार की घटनाएँ तीर्थ स्थानों पर भ्रमण इत्यादि घटनाओं का सजीव चित्रण हुआ है । उपन्यास को पढ़ते समय पाठक तत्कालीन वातावरण में पहुँच जाता है। इस उपन्यास की यह विशेषता है कि सिखों एवं हिन्दुओं के साथ मुगलों का जो संघर्ष उस समय था उसका चित्रण करते हुए भी राष्ट्रीय एकता (हिन्दू, मुस्लिम, सिख) की स्थापना करता है ।

उपन्यास की भाषा भी बड़ी सशक्त है डॉ० मिश्र ने विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है । यद्यपि उपन्यास के अधिकांश पात्र शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग करते हैं उपन्यासकार ने पात्रों के मुख से उनकी स्वामाविक बोली में कथन न कहलवाकर एक साहित्य कार की जबान उनको दी है । आदिवासी सरदार चक्रधर के मुख से उन्होंने जिस प्रकार का संवाद कहलावाया है उसका एक उदाहरण इस प्रकार है ।

“क्षमा करेंगे महाराज! हम ठहरे निरे आदिवासी । खून खराबा, हमारा नित्य का काम । मेरी समझ में धर्म को या तो पूर्ण अहिंसक ही होना चाहिए । पर अगर वह आवश्यकता पड़ने पर भी हिंसा का प्रयोग न करे तो वह नख-दन्त-हीन किसी वृद्ध व्याध से अधिक क्या है ? धर्म को फिर वीरता से सम्बद्ध करने का अर्थ ।” किन्तु उपन्यासकार तुरन्त इस प्रकार की भाषा के प्रयोग के स्पष्टीकरण को देता हुआ कहता है—

“चक्रधर बोला तो अपनी टूटी-फूटी भाषा में पर उसका अर्थ यही होता है ।”

डॉ० मिश्र ने उपन्यास को उसकी परम्परागत शैली से निकाल कर एक नये रूप में प्रस्तुत किया है । वे अप्रत्यक्ष रूप से अपनी बात कहने के पक्षधर नहीं है कथा के साथ वे अपना एक स्थान रखते हैं और समय समय पर विचार पाठकों को सम्मुख प्रकट करते हैं ।

प्राकृतिक स्थानों के वर्णन में जहाँ भाषा में कोमलता एवं सौन्दर्य दिखाई देता है वहीं अध्यात्म से सम्बन्धित चर्चा में गाम्भीर्य दृष्टिगोचर होता है ।

एक उद्देश्य को लेकर चलने वाली यह कृति हिन्दी के उपन्यास साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है । राष्ट्रीय एकता, विश्व, प्रेम, समानता बंधुत्व श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास इस कृति के माध्यम से किया गया है । भारत के समृद्ध इतिहास से यहा की श्रेष्ठ संस्कृति एवं सम्यता से दूर होती जा रही आज की पीढ़ी को पुनः इनकी ओर आकर्षित करने हेतु इस उपन्यास का सृजन किया गया है । एक यथार्थवादी कृति के रूप में यथार्थवाद के नए प्रतिमान के परिप्रेक्ष्य में यह कृति अपना महत्व सिद्ध करती है ।

गोबिन्द गाथा

‘का के लागू पांव’ की दूसरी श्रंखला ‘गोबिन्द गाथा’ है गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन की कथा इसमें निहित है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है— ‘किन्तु ‘का के लागू पांव’ नींव है। नींव के बिना अट्टालिका नहीं निर्मित होती। नींव जितनी ही गहरी और सशक्त होगी, अट्टालिका उतनी ही ऊँची—गगनचुम्बी। अट्टालिका को जानने के लिये नींव से परिचय भी आवश्यक है। यह है ‘का के लागू पांव’ की प्रासंगिकता।”

इस उपन्यास का कथानक इतना सुगठित एवं सुसम्बद्ध है कि गुरु के जीवन की विभिन्न घटनाएँ एक सूत्र में पिरोई हुई सी जान पड़ती हैं तथा उनको साधारणतया अलग करना कठिन जान पड़ता है। एक उत्कृष्ट कथानक की यह विशेषता होती है कि उसमें स्वाभाविक प्रवाह एवं क्रमवद्धता होती है। पाठक को कथा में किसी भी प्रकार की कृत्रिमता का आभास नहीं होना चाहिये। ऐतिहासिक उपन्यास के सम्बन्ध में तो यह बात और भी अधिक महत्व रखती है कि जो भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। उसमें इतनी स्वाभाविकता एवं विश्वसनीयता होनी चाहिये कि पाठकों को वह तत्कालीन घटनाओं का साक्षात् चित्रण प्रतीत हो।

‘गोबिन्द गाथा’ की कथा का आरम्भ गोबिन्द राय के राजतिलक के साथ होता है। इस समय का अत्यन्त सजीव वर्णन लेखक ने किया है— गुरु गोबिन्द हौले कदमों से चलते हुये इस सिंहासन तक पहुँचे तो इन वृद्ध सिंघों ने गुरु — वाणी से उनकी मंगल कामना की। उनके मस्तक पर हाथ रख उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया और उनका हाथ

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ के आमुख से

पकड़ उन्हें सिंहासनारूढ़ किया । इसके पश्चात् उन पर गुलाब के फूलों की पंखुडियों बरसाई गई।¹ सिंहासनारूढ़ होते ही गुरु ने सिखों में वीरता के साथ – साथ आध्यात्मिक प्रवृत्ति जाग्रत करने पर बल दिया।

“शस्त्र और शास्त्र का संयोग व्यक्ति और समाज दोनों के सन्तुलित विकास के लिए आवश्यक है। शारीरिक बल मात्र पाशविक शक्ति है, विद्या अथवा ज्ञान ही मनुष्य को पशु से भिन्न करता है।”² इस तथ्य को ध्यान में रखकर गुरु ने अनेक ग्रन्थों का सृजन किया। सुन्दरी देवी से गुरु का प्रथम विवाह होता है। दूसरा विवाह उन्होंने जीतो जी के साथ किया। तीसरा विवाह गुरु ने साहिबों देवी के साथ उनके अत्यंत आग्रह पर किया तथा उनको पंथ की मों का स्थान प्रदान किया है।

खालसा पंथ को सुदृढ़ करने के लिए गोबिन्द सिंह सिखों को संगठित करते हैं उनकी परीक्षाएं लेते हैं। मुगल सिखों के प्रति अपने रोष को प्रकट कर उनको कुचलने के लिए समय समय पर आक्रमण करते रहते हैं किन्तु गुरु हर बार उनके हाथों से बच निकलते हैं। मुगल सेना को कई बार गुरु ने पराजित भी किया। सिख पंथ को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए गुरु पंच पियारों की स्थापना करते हैं तथा सभी सिखों को सिंह की उपाधि से विभूषित करते हैं। यह खालसा समानता के सिद्धान्त पर आधारित होता है। गुरु के द्वारा स्थापित किए गए इस पंथ की स्थापना के पश्चात् पहाड़ी राजा गुरु से आतंकित हो जाते हैं तथा गुरु के विरुद्ध मुगलों से जा मिलते हैं। औरंगजेब जब पहाड़ी राजाओं द्वारा बताए गये गुरु के असत्य मंसूबों के विषय में सुनता है तो वह क्रोधित होता है। गुरु को जिंदा या मुर्दा पकड़ने का आदेश जारी कर देता है। मुगलों की एक बड़ी सैन्य वाहिनी आनन्दपुर पर

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: 'गोबिन्द गाथा' (पृ० 15)

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : गोबिन्द गाथा (पृ० 24)

आक्रमण कर देती है। लम्बे समय तक लड़ाई चलते रहने से सिख परेशान हो जाते हैं अनेक शिष्य गुरु को इस 'विपत्ति' में अकेला छोड़कर भाग जाते हैं अन्ततः गुरु को आनन्दपुर छोड़ना पड़ता है।

दुर्भाग्यवश माता गूजरी देवी गुरु पुत्रों जोरावर सिंह और फतेह सिंह के साथ भटक जाती हैं। दोनों पुत्र मुगलों के हाथ लग जाते हैं तथा इस्लाम कुबूल न करने की सजा के रूप में उन्हें दीवारों में जिन्दा चिन दिया जाता है। गुरु के अन्य दो बड़े पुत्र अजीत सिंह और जुझार सिंह युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं।

दूसरी ओर गुरु को इधर से उधर भटकना पड़ा किन्तु वे पुनः अपनी सेना संगठित करते हैं तथा वजीर खों को पराजित करते हैं। कुछ समय पश्चात औरंगजेब की मृत्यु हो जाती है तथा गुरु से उसका पुत्र बहादुरशाह सत्ता प्राप्त करने के लिए मदद माँगता है। गुरु उसकी मदद करते हैं किन्तु जब वह गुरु से मराठों से लड़ने के लिए कहता है तो गुरु उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं।

इसके बाद गुरु नांदेड में रुकते हैं वहाँ एक पठान धोखे से गुरु पर हमला कर उन्हें छुरा घोंप देता है जिसके फलस्वरूप गुरु की मृत्यु हो जाती है और कथा समाप्त हो जाती है।

यद्यपि कथानक नया नहीं है किन्तु इस ऐतिहासिक कथा का जिस नवीनता, मौलिकता एवं रोचकता के साथ लेखक ने वर्णन किया है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कथा वहीं है किन्तु आज की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उसे जिस प्रकार विचारों से सम्बद्ध करके पाठकों के सम्मुख रखा गया है उससे लेखक की सूक्ष्म दृष्टि का ज्ञान होता है। एक उपन्यासकार उपन्यास के भीतर भले ही अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक तथा नैतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता हो परन्तु उसमें रोचकता का अभाव हो तो वह पाठकों के हृदय को न छू सकेगा। डॉ० मिश्र ने दार्शनिक विवेचन को भी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है—

“मनस्वी स्थित—प्रज्ञ हो जाते हैं मान—अपमान, लाभ—हानि, जीवन—मृत्यु, जय—पराजय, सबसे ऊपर उठ जाते हैं। गीता बहुतों ने पढ़ी होगी पर गुरु ने अपने जीवन में उसे उतार लिया था— समं मानापमानयोः । गुरु जो अब तक सहस्रों के मान सम्मान के आदी हो चुके थे आज दर—दर, सहर्ष अपमान का घूँट पी रहे थे।”

आज के वैज्ञानिक युग में पाठक सत्य की कसौटी पर कसे जा सकने वाले साहित्य को पढ़ने में रुचि रखता है। अतः कथाकार के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे जिस पर पाठक विश्वास कर सकें तथा जो समय के साथ कुछ प्रासंगिकता भी रखता हो । इस रूप में डॉ० मिश्र की यह कृति एक सराहनीय प्रयास है।

उपन्यास में पात्रों का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है । वैसे भी उपन्यास मानव चरित्र का चित्र मात्र है। उपन्यास के प्रमुख पात्र कथा नायक गुरु गोबिन्द सिंह जो अत्यंत साहसी, पराक्रमी, नीतिज्ञ, कुशल प्रशासक, समझदार, विद्वान एवं साहित्य प्रेमी व्यक्तित्व के स्वामी है।

दूसरा सबसे गतिशील पात्र बजीर खॉं जिसने आरम्भ से लेकर अन्त तक घटनाक्रम को प्रभावित किया है उसके कारण कथा में अनेक आकस्मिक मोड़ आए हैं वह झूठा दगाबाज तथा मक्कार व्यक्तित्व का स्वामी है।

अन्य पात्रों में पहाड़ी राजा, गुरु की पत्नियों—सुंदरी देवी, जीतो जी, बीबी देवों गुरु पुत्र अजीत सिंह, जोरावर सिंह, फतेह सिंह तथा जुझार सिंह, औरंगजेब, बहादुरशाह, मुअज्जम, तथा गुरु के शिष्य इत्यादि सम्मिलित है।

डॉ० भगवतीशरण मिश्र ने पात्रों का चित्रण सजीव चित्रों के सदृश किया है। चरित्र के लिए विभिन्न शैलियों को अपनाया गया है। संवादात्मक शैली का एक उदाहरण

दृष्टव्य है—

“कौन हो ?” गुरु ने पूछने के लिए पूछा ।

“कवि हूँ ?”

“प्रसिद्ध कवि केशवदास के पुत्र तो नहीं ?”

“हाँ।”

“यहाँ आने की आवश्यकता कैसे हुई ?”

“भूखों मर रहा हूँ । मुगल दरबार में, अपनी कविताई के बल पर पलने के इरादे से गया था कि सिर मुड़ाते ओले पड़े ।”

“मतलब ?” गुरु ने किंचित आश्चर्य से पूछा ।

“मुझे इस्लाम कबूल करने को बाध्य किया जाने लगा । मैं जहाँ ठहरा था वहाँ चारों ओर पहरा बैठा दिया गया । किसी तरह भागकर आपकी शरण में आया हूँ।”

यहाँ शौक से रह सकते हो,” गुरु ने अपना आदेश सुनाया,” भोजन—वस्त्र के अलावा तुम्हें मासिक राशि भी मिलेगी । निश्चित होकर काव्य साधना करो ।”

उपरोक्त संवादों से गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य प्रेमी होने तथा शरण में आने वाले को संरक्षण देने की प्रवृत्ति का पता चलता है ।

वर्णनात्मक शैली में माई भागों के चरित्र की विशेषताएँ दृष्टव्य हैं “वह एक वीरांगना थी। माई भागो के नाम से पुकारते थे, उसे लोग। बाल्यकाल से ही तलवारबाजी, तीरंदाजी और घुड़सवारी में उसकी रुचि थी। यौवन की पहलीज पर पैर रखते — रखते वह इन कलाओं में पूरी तरह पारंगत हो गई ।”²

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ (पृ० 191)

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ (पृ० 303)

प्रेमचन्द कहते हैं – “यह जरूरी नहीं कि हमारे चरित्रनायक ऊँची श्रेणी के ही मनुष्य हों हर्ष और शोक, प्रेम और अनुराग ईर्ष्या और द्वेष मनुष्य – मात्र में व्यापक हैं। हमें केवल हृदय के उन तारों पर चोट लगानी चाहिए, जिनकी झंकार से पाठकों के हृदय पर भी वैसा ही प्रभाव हो। सफल उपन्यासकार का सबसे बड़ा लक्षण है कि वह अपने पाठकों के हृदय में उन्हीं भावों को जागरित कर दे जो उसके पात्रों में हो।”¹ इस रूप में गोबिन्द गाथा के पात्र एवं चरित्रांकन अत्यंत प्रभावशाली हैं। उपन्यास के चरित्र मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हैं। उपन्यास में संवाद एवं कथोपकथन के महत्व को बतलाते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं “उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को जो किसी चरित्र के मुँह से निकले— उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए।”²

उपन्यासकार का स्वरूप बहुत कुछ कथोपकथन पर भी निर्भर करता है। संवाद पात्रानुकूल हैं तथा उनमें स्वाभाविकता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

“आखिर क्या सोचा तुमने बीबी को लेकर ? उसे घर में ही बैठाये रखना है क्या ?” माता जसदेवी थी !

“कौन कहता है कि मैं उसे घर में ही बैठाने को तैयार बैठा हूँ। उसके रूप—गुण और उनके कारण परिवार को मिलती प्रतिष्ठा के बावजूद उसे किसी और के घर तो बैठाना ही है।”

“ तो हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से क्या होगा? कुछ हाथ पोंव मारो भी तो । घर बैठे तो कोई वर ऑगन में नहीं टपक आएगा ?” पत्नी लगभग खीजकर बोली ।³

1 प्रेमचन्द : कुछ विचार (पृ० 83)

2. प्रेमचन्द : कुछ विचार (पृ० 87)

3 डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ (पृ० 201)

पत्नी एवं पति के मध्य बेटा के विवाह को लेकर चलने वाला यह वार्तालाप अत्यन्त स्वाभाविक एवं उपयुक्त है। उपन्यास के पात्रों के संवादों की सहजता एवं सरलता एक अन्य गुण है जो कथ्य को अधिक प्रभावशाली बनाता है संवाद ऐसे होने चाहिये जो पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ उभारने के साथ – साथ कथानक के विकास में भी सहायक हों। “बोलो तुम दोनों ने क्या तय किया ? ” बजीर खॉं किशोरों से मुखातिब हुआ।

“सिख एक ही बार तय करते हैं। वे तुर्कों की तरफ बात – बात पर बात नहीं बदलते। शपथ खाकर भी, पीछे हटते शत्रुओं पर हमला करना भी तुम्ही जानते हो। तुम अपनी सुविधा और समय के हिसाब से अपनी बात बार – बार बदलते रहो। हम अपनी बात पर अड़ना जानते हैं, बदलना नहीं।”

“अब इन्हें मौत के घाट उतारने के बिना कोई चारा नहीं।” बजीर खॉं गुस्से से आग – बबूला होते हुये बोला।¹ मुअज्जम मुसलमान पात्र है अतः उसके संवादों में उर्दू का पर्याप्त प्रयोग देखा जा सकता है।

“अरे क्या तुम्हें यह भी नहीं लगता कि अब्बाजान को सिखों की ओर से बेफिक्र करने में कोई खास मिहनत नहीं करने की जरूरत नहीं?, खासकर पहाड़ी राजाओं को दी गई शिकस्त के बाद? वह अब मेरे कानों से ही सुनेंगे और मेरी आँखों से ही सुनेंगे और मेरी आँखों से ही देखेंगे।”²

संवाद उपन्यास में गति बनाये रखते हैं। संवादों की रोचकता एवं सरलता पाठक को उपन्यास से बंधे रखती है। कथोपकथन की स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता, रोचकता, कथोपकथन की स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता, रोचकता, सरलता, संक्षिप्तता उपन्यास के सौन्दर्य को मुखरित बना देते हैं।

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: 'गोविन्द गाथा' (पृ० 285)
2. वही पृ०-166

देशकाल एवं वातावरण के साथ सम्बद्ध होकर पात्र एवं घटनाएँ अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं । 'गोबिन्द गाथा' उपन्यास की कहानी उस समय की है जब भारत में मुगलों का शासन था तथा भारतीय धर्म एवं संस्कृति की रक्षार्थ सिख पंथ प्रयासरत था । इस वातावरण को पूरी सजीवता के साथ उपन्यास में चित्रित किया गया है । देश और काल में उस समय जैसी परिस्थितियाँ थी उनका स्वाभाविक चित्रण इस कृति में हुआ है । गुरु के विरुद्ध पहाड़ी राजाओं द्वारा समय – समय पर किया जाने वाला विद्रोह तथा मुगल सेना के द्वारा भी किये जाने वाले आक्रमणों का सजीव वर्णन है । "बरसाती बाढ़ की तरह उमड़ती शत्रु – सेना पर सिख – सैनिकों ने निशाने ले – लेकर बन्दूकों से गोलियाँ दागनी आरम्भ की । उनके निशाने इतने अचूक थे कि शत्रु – सेना के सिपाही आम के पके फलों की तरफ जमीन पर विछने लगे । पहाड़ी राजाओं और शाही सैनिकों की सम्मिलित सेना में सिखों के इस पराक्रम से खलबली मच गई ।" घटनाओं एवं परिस्थितियों का चित्रण उपन्यास में बहुत कुशलता के साथ किया गया है । पहाड़ी राजाओं के द्वारा किये गये धोखों का वर्णन देखिए

"क्या कहते हो ? " बजीर खों आश्चर्यचकित हो उठा, हमने इसे नहीं छोड़ने की कसम खाई है । तुम इतनी जल्दी अपनी शपथ भूल गए ? सबसे पहले तो तुम्ही ने गीता पर हाथ रखा था उस बूढ़े ब्राहमण के सामने ।"

"कसम तो आपने भी कुरान पर हाथ रखकर खाई थी । उससे क्या होता है ।"

"उससे क्या होता है ? तुम हिन्दुओं – ठाकुरों में कसम' का कोई अर्थ नहीं होता ? यह कैसी बात बोल रहे तुम ? " बजीर खों के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं था "कसम

तो कसम होती है शपथ— शपथ । अपने ही द्वारा दिये गये वचन का पालन नहीं करना यह कैसी इंसानियत है ।”

ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिये कथा से सम्बन्धित युग का यथार्थ चित्रण अनिवार्य होता है । डॉ० मिश्र इसमें पूर्णरूपेण सफल रहे हैं ।

पात्रों के मनोभावों का चित्रण भी सशक्त रूपेण हुआ है जब गुरु के पास तीसरे विवाह का प्रस्ताव आता है तो गुरु असमंजस में पड़ जाते हैं । इसी प्रकार जब आनन्दपुर छोड़ने की बात आती है तब गुरु एवं गुरु माता गूजरी देवी के मध्य होने वाला वार्तालाप उनके अर्न्तद्वन्द्व की पुष्टि करता है ।

उपन्यास की सफलता का बहुत कुछ श्रेय उसकी भाषा एवं शैली पर भी निर्भर करता है ‘गोबिन्द गाथा’ की भाषा पात्रानुकूल एवं भावानुकूल है । प्रसंग के अनुकूल भाषा का चयन डॉ० मिश्र ने किया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है । “कैसे गये रूपए ? गंगू कृत्रिम आश्चर्य जताते हुये बोला ।

“यहीं विछावन के नीचे से ।”

“तब तो इल्जाम मुझ पर लगाया जा रहा है ? गंगू उत्तेजित हो आया ।

“नहीं मैं तुम पर इल्जाम नहीं लगाती । मेरा भाग्य ही खोटा है । मैं तो केवल चोरी जाने की सूचना दे रही हूँ । ”

“तो मैं अब चोर भी हो गया ? ” गंगू गुस्से में बोला, “बोला, कल का आपका रसोइया गंगू ब्राह्मण आज चोर हो आया ।”²

डॉ मिश्र की भाषा की एक और विशेषता संस्कृत प्रधान भाषा है । उनके पात्र चाहें

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ पृ० 270

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ पृ० 280

ग्रामीण हों या शहरी, हिन्दू हों या मुस्लिम संस्कृत भाषा के शब्द उसमें दिख ही पड़ते हैं वास्तव में यह लेखक की विशेषता है। वजीर खाँ का यह संवाद देखिए — “जान है तो जहान है। गुरु अर्जुन देव और तेग बहादुर की मूर्खता पर तुम नहीं उतरो। वे तो बूढ़े थे। जीवन का सुख भोग चके थे। तुम्हारे सामने तो अभी पूरा जीवन पड़ा है जीवन का आनन्द तुमने देखा ही कहाँ ? तुम अपना हठ छोड़कर इस्लाम कबूल कर लो तो मैं तुम्हें बड़ी जागीरों का मालिक बना दूँगा। पूरा जीवन मौज से कटेगा।” भाषा में स्थान-स्थान पर तदमव, देशज तथा मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है। शैली वर्णनात्मक एवं घटना प्रधान है। यथार्थवादी प्रवृत्ति को इस उपन्यास की भाषा एवं शैली में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

गोबिन्द गाथा का मुख्य उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी को उसकी प्राचीन एवं अमूल्य ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक धरोहरों से परिचित कराना है। एक यथार्थवादी कृति होने के साथ-साथ यह मानववादी कृति भी है। मानवीय मूल्यों की स्थापना इसका द्वितीय उद्देश्य है। राष्ट्रीय एकता एवं विश्वमानवतावाद की स्थापना का प्रयास इसमें है। यथार्थवाद के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष को ‘गोबिन्द गाथा’ में उद्घाटित किया गया है। “इस पंथ के अनुयायी यद्यपि हिन्दू जाति रीति-रिवाजों का परित्याग करेंगे तथापि उनके तीर्थों मन्दिरों आदि के प्रति सम्मान का भाव नहीं होगा। यह राष्ट्र हमारा है, चाहें इसमें हिन्दू बसते हों या सिख या मुसलमान इसकी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करना सिहों का परम कर्तव्य होगा।”² एक नये पंथ का आरम्भ होने के बावजूद सिख पंथ अपनी धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति पूर्ण आस्था रखता है।

गुरु गोबिन्द सिंह उत्कृष्ट व्यक्तित्व के स्वामी थे उनकी कथा के माध्यम से डॉ. मिश्र एक महामानव की पीढ़ी की स्थापना का प्रयास करते हैं क्योंकि मानव जब महामानवत्व की

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ पृ० 283

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘गोबिन्द गाथा’ पृ० 187

और अग्रसर होगा तभी हम विश्व में विश्वमानवतावाद, की स्थापना कर सकते हैं। मनुष्य के जीवन के चरम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति भी कर सकते हैं।

शान्तिदूत

“विश्व पुरुष महात्मा गाँधी के जीवन पर आधारित प्रख्यात साहित्यकार भगवतीशरण मिश्र का यह उपन्यास साहित्य की कसौटी पर पूरा उतरता है। व्यापक फलक पर फैले उनके जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाएँ इस उपन्यास में प्रस्तुत हैं। गाँधी जी के अफ्रीका प्रवास से लेकर भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में उनके विलक्षण योगदान की कथा, और अंततः स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर उनके अमर बलिदान की गाथा सब कुछ इसमें एक गतिशील प्रवहमानता के साथ वर्णित है।” डॉ. मिश्र ने इसमें उपन्यास विद्या के माध्यम से गाँधी जी की चारित्रिक विशेषताओं को पूरी सत्यता के साथ चित्रित किया है। उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करते समय स्थान एवं तिथियों का विशेष ध्यान रखा गया है। लेखक के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास लेखन को लेकर एक बड़ी रोचक बात कही जाती है। वह यह कि “इतिहास में तिथियों के सिवा सब कुछ मिथ्या होता है और ऐतिहासिक उपन्यास में तिथियों के अलावा सब कुछ सत्य होता है। इस औपन्यासिक कृति में इस कथन को झुठलाने का मैंने सक्षम प्रयास किया है। यहाँ घटनाएँ भी सत्य हैं और तिथियाँ भी।”²

महात्मा गाँधी के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करने वाला यह जीवनी परक उपन्यास गाँधी जी के अफ्रीका प्रवास के दौरान एक यात्रा की घटना से आरम्भ होता है। यह घटना उनकी अहिंसात्मक नीति की सार्थकता को सिद्ध करती है। गाँधी जी को पहली बार भारत से बाहर अंग्रेजों के द्वारा किये गए अन्याय व अपमान को झेलना पड़ा था। इस अन्याय व अपमान के विरुद्ध उनका अफ्रीका में प्रथम संघर्ष था। यहीं से उनके अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : शान्ति दूत के कवर पृष्ठ से उद्धृत।
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : शान्ति दूत पृष्ठ 5

प्रवृत्ति एवं कथा आरम्भ होती है। फर्स्ट क्लास का टिकट होने के बावजूद जब उनको फर्स्ट क्लास में यात्रा नहीं करने दिया गया तो उन्होंने अहिंसात्मक विरोध के द्वारा फर्स्ट क्लास में ही यात्रा की।

“उनकी अहिंसा की यह प्रथम कठिन परीक्षा थी। उन्हें प्रसन्नता थी वे इसमें सफल हुए थे। वे हिंसक प्रहार और अपशब्दों की बौछार को मूक सह गये थे।”¹

“गाड़ी आयी और सामान के साथ उन्हें प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया गया। स्टेशन मास्टर ने टी.टी. से कहा “डोन्ट डिस्टर्ब हिम ही इज़ एन ओब्सटिनेट ब्लैक” (इसे नहीं छेड़ना। यह एक जिद्दी काला है।)

गाँधी ने यह सुना पर इसका कुछ बुरा नहीं माना। उन्हें प्रसन्नता इस बात की थी कि उनका दूसरा प्रयोग भी सफल हुआ सत्याग्रह का।”²

इसके बाद कथा गाँधी जी के जीवन के आरम्भिक अंश पर आती है गुजरात के पोरबन्दर में 2 अक्टूबर 1869 को गाँधी जी का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम करमचन्द (कबा) गाँधी तथा माता का नाम पुतलीबाई था। माता एवम् पिता से मिले संस्कारों के कारण ही गाँधी जी के चरित्र में आध्यात्मिकता तथा अन्याय के प्रतिकार की भावना थी। बचपन में बालसुलभ आदतवश गाँधी जी बुरी संगति में आकर एक दो गलत काम किये किन्तु अपने पिता को पत्र लिखकर उन्होंने अपनी एक-एक भूल का पश्चाताप किया। 13 वर्ष की उम्र में कस्तूरबा के साथ उनका विवाह हुआ कुछ दिनों के पश्चात् उनको वकालत पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया गया। जब गाँधी वहाँ से लौट कर आये तो उन्हें लगा विलायत की वकालत हिन्दुस्तान में सफल नहीं होगी और यही हुंन भी गाँधी जी के पास अफ्रीका से एक प्रस्ताव आया जिसमें उन्हें केवल कागजी कार्य करना था इस प्रकार गांधी अपनी प्रथम

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र :
2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र :

शांति दूत पृष्ठ 8
शांति दूत पृष्ठ 10

कर्मभूमि दक्षिण अफ्रीका पहुँच जाते हैं और यहीं से उनका सत्य, अहिंसा का प्रशस्त पथ आरम्भ होता है। गाँधी जी ने वहाँ भारतीयों पर होने वाले अन्याय, उपेक्षा एवम् अपमान का विरोध सत्याग्रह एवम् अहिंसा के माध्यम से किया। समय-समय पर गोरे अंग्रेजों द्वारा प्रस्तावित एवम् लगाये गये कानूनों का विरोध किया। गाँधी जी ने वहाँ लोगों को संगठित किया और उन्हें भी अपने साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। इसी बीज गाँधी जी ने वकालत करने का अनुमति पत्र प्राप्त किया और अपने परिवार को लेने हिन्दुस्तान आ गये यहाँ उन्होंने अपना लोकमत तैयार किया। विदेश पहुँच कर वे पुनः अपने कार्य में जुट गये और इस बार उनका साथ देने के लिए कस्तूरबा भी थी। रोगियों की सेवा के लिए उन्होंने भारतीय सेवा दल का गठन किया जिसका नाम उन्होंने, 'इण्डियन एम्बुलेंस कॉर्प्स' दिया। इस प्रकार के कार्यों के परिणाम स्वरूप गाँधी जी को पर्याप्त नाम की प्राप्ति हुई। अब गाँधी जी को अपनी मातृभूमि की याद आने लगी उन्हें अपने भारतीय भाईयों की दुर्दशा का स्मरण हो आया जो अपनी ही मातृभूमि पर अंग्रेजों के द्वारा सताये जा रहे थे। गाँधी जी को भी लगने लगा था कि अफ्रीका में अब उनकी विशेष आवश्यकता नहीं है।

18 जुलाई 1914 को महात्मा गाँधी भारत लौट आये भारत आकर उन्होंने यहाँ के लोगों की समस्याओं को सुना, समझा और दूर किया बिहार के चम्पारन जिले में होने वाली नील की खेती जो अंग्रेजों के अन्याय व अत्याचार की प्रतीक थी उसे उन्होंने अपना केन्द्र स्थल बना सम्पूर्ण प्रदेश से नील की खेती के कानून को समाप्त करवा दिया। पंजाब में हुए जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के आरोपी जनरल डायर को भी सजा महात्मा गाँधी के प्रयासों से ही मिली। इसी प्रकार के छोटे-बड़े अनेक आन्दोलनों के फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हो गया। गाँधी जी ने भारत को आजादी तो दिलवा दी किन्तु विभाजन से बचा नहीं सके। 30 जनवरी 1948 को सत्य एवम् अहिंसा के पुजारी गाँधी जी की एक व्यक्ति ने गोली मार कर हत्या कर दी। इस दुखान्त के साथ ही उपन्यास की कथा का अन्त होता है।

कथानक ऐतिहासिक होने के साथ-साथ यथार्थ परक भी है। न केवल तिथियाँ सत्य हैं अपितु घटनायें भी सत्य हैं। सुसंगठित कथानक है इसमें शिथिलता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। क्रमबद्ध रूप से घटनाएँ एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। कथानायक महात्मा गाँधी के चरित्र के सभी पक्षों का चित्रण लेखक ने स्पष्ट रूप से किया है उनके चरित्र में सत्य, अहिंसा, अन्याय के प्रतिकार की भावना, देश भक्ति, सदाचार, कर्तव्यपरायणता जैसे गुण विद्यमान थे। गाँधी जी जब वकालत करके विदेश से भारत लौटे और उन्होंने वकालत आरम्भ की तो मुकद्दमा दिलवाने वाले दलाल ने उनसे कमीशन माँगा "सत्य को समर्पित गाँधी इस बात को कैसे पचा सकते थे ? उन्होंने दलाल को कमीशन देने से साफ इन्कार कर दिया।

"मैं इस तरह की बेईमानी को प्रोत्साहन नहीं दे सकता।" गाँधी ने स्पष्ट कहा।¹ अपने जीवन के प्रथम भाषण को देते समय गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा के महत्व को बताते हुए कहा "सत्य ईश्वर है। सत्य और अहिंसा के बल पर बड़ी से बड़ी ताकत का भी हम मुकाबला कर सकते हैं। अतः उनसे निबटने का हमारे हाथ में एक ही शस्त्र है और वह है सत्याग्रह। हम सत्य का सहारा लेकर अहिंसक तरीके से उनका विरोध करेंगे। हमें आरम्भ में कुछ तकलीफें उठानी पड़ सकती हैं, कुर्बानियाँ देनी पड़ सकती हैं, पर अन्ततः हमारी विजय होकर रहेगी।"² गाँधी जी के इस भाषण से सत्य एवम् अहिंसा के प्रति उनकी अटूट आस्था प्रकट होती है। गाँधी जी अन्याय को सहन नहीं करते थे चाहें वह अपने साथ हो या किसी दूसरे के साथ किन्तु केवल अपने साथ होने वाले अन्याय के लिए वे अदालत जाना उचित नहीं मानते थे। अपने प्रति किये अन्याय के विरुद्ध उन्होंने एक बार पादरी मिस्टर कोट्स को कहा ".....मैं सभी अन्याय झेल लूँगा पर केवल अपने लिए अदालत में नहीं

1 डॉ० भगवतीशरण मिश्र :

शांति दूत पृष्ठ 37

2 डॉ० भगवतीशरण मिश्र :

शांति दूत पृष्ठ 48

जाऊँगा। अन्याय बुरा है तो सब के लिए, केवल मुझ अकेले के लिए नहीं।”¹ गाँधी जी सदैव से इतने साहसी नहीं थे। कुछ लोग तो महान पैदा होते हैं जबकि कुछ अपने प्रयासों से महान बनते हैं। गाँधी जी दूसरी प्रकार के मनुष्यों की श्रेणी में आते हैं। गाँधी जी के चरित्र में दुर्बलतायें व अवगुण भी थे जिन्हें उन्होंने अपने प्रयासों से दूर किया। “किशोरावस्था में उन्होंने दो वर्ष तक माँस खाया, सिगरेट पी तथा आवश्यकता पड़ने पर घर से पैसे भी चुराये इन सब कार्यों को उन्होंने बुरी संगति के कारण किया किन्तु इसके साथ ही उन्हें अन्दर ही अन्दर अपने किये पर पश्चताप भी होता रहा। इस पाप कर्म को कम करने के लिए उन्होंने अपने पिता को पत्र लिखकर सब पाप कर्मों स्वीकारोक्ति की तथा भविष्य में कभी इस प्रकार के कर्मों को न करने का आश्वासन दिया।”²

गाँधी जी सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टि रखते थे। समाज के निकृष्टतम लोगों से उन्हें विशेष लगाव था उनकी इस विशेषता को बताते हुए लेखक ने लिखा है “गाँधी को पता नहीं भंगियो से और उनके काम से इतना मोह क्यों था ? शायद इसलिए कि उनका काम निकृष्टतम था और उनकी जाति भी निम्नतम थी। समाज की निम्नतम जाति और उसके घृणिततम कार्य से भी अपने को सम्बद्ध कर गाँधी को शायद एक आन्तरिक प्रसन्नता होती थी कि वह अपने को इस रूप में ढाल सके थे कि एक अन्त्यज और अपने में कोई भेद नहीं मानते थे। भंगियों के साथ बैठकर उनसे बातें कर उन्हें अजीब प्रसन्नता का बोध होता था।”³ मनुष्यों की सेवा को गाँधी जी सर्वश्रेष्ठ कर्म मानते थे। भारत की उन्नति के लिए वे लघु उद्योगों की उन्नति को आवश्यक मानते थे और स्वदेशी अपनाने पर बल देते थे।

उपन्यास की दूसरी प्रमुख पात्र हैं कस्तूरबा गाँधी। कस्तूरबा गाँधी जी की सहधर्मिणी

-
- | | | |
|----|----------------------|------------------------|
| 1. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 49 |
| 2. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत अध्याय 6,7,8 |
| 3. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 95 |

थी। वे सच्चे अर्थों में गाँधी जी की सहयोगिनी थी। गाँधी जी को महात्मा गाँधी बनाने के लिए कस्तूरबा का त्याग एवम् समर्पण भी महत्वपूर्ण है। जब गाँधी जी ने ब्रह्मचर्य का व्रत साधने की बात कस्तूरबा से की तो उन्होंने कहा " पत्नी को पति की छाया है। मैं तुम्हारे सुख-दुःख, सफलता-असफलता, सब में साथ हूँ। अगर तुम्हें लगता है कि ब्रह्मचर्य तुम्हारे संघर्ष में सहायक होगा तो उसके पालन में सहायता देना मेरा सहज धर्म बनता है।" स्त्रियों को गहने के प्रति विशेष आकर्षण होता है कस्तूरबा को भेंट में एक हार मिला। गाँधी जी भेंट में मिली सारी चीजों को लौटाना चाहते थे परन्तु कस्तूरबा ने अपना हार देने से मना कर दिया इस पर गाँधी जी ने उन्हें समझाया तो वे अपना हार देने के लिए तैयार हो गयी।²

एक बार एक पादरी अतिथि की सेवा करते हुए उसका मलमूत्र साफ करते हुए कस्तूरबा की आँखों में आँसू आ गये गाँधी जी ने उन्हें इस बात के लिए बहुत डाँटा और तब से कस्तूरबा बिना किसी संकोच के प्रत्येक कार्य कर लिया करती थीं। एक बार गाँधी जी ने उनकी कमजोर काया को ध्यान में रखते हुए जेल जाने से उन्हें मना किया तो वे बोली "मुझे मरना नहीं दिलाओ। मेरी काया जैसी है, वैसी है पर मैं सत्याग्रह में भाग अवश्य लूँगी। मरना-जीना अपने हाथ में नहीं है फिर मृत्यु का भय मेरे मन में नहीं है। तुम्हीं तो गीता पढ़-पढ़ कर मृत्यु को व्यर्थ बताते रहे हो। उससे भय तो तुम्हीं ने मेरे अन्दर से निकाल दिया है।"³ अन्य पात्रों का स्थान गौण है किन्तु उनका योगदान घटना को आगे बढ़ाने में हुआ है। सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। काल्पनिक पात्रों का सहारा लेखक ने नहीं लिया है। चरित्रांकन की शैली भी बेजोड़ है सभी पात्रों का चरित्रांकन यथार्थ की भूमि पर हुआ है।

-
- | | | |
|----|----------------------|--------------------|
| 1. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 71 |
| 2. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 63 |
| 3. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 86 |

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है किन्तु संवादों की रचना लेखक को अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर करनी पड़ती है। इस उपन्यास के संवादों में इतनी स्वाभाविकता एवम् सहजता है कि वे काल्पनिक प्रतीत नहीं होते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में ही गाँधी जी एवम् अंग्रेज के मध्य होने वाले सम्वादों की स्वाभाविकता और यथार्थता देखिये –

“तुम इस डिब्बे से अभी उतर जाओ इसी क्षण। गेट आउट।” वह एक गोरा अंग्रेज था जो काले गाँधी पर किसी बम की तरह फटा था।

“क्यों ?” गाँधी ने निर्भीक पूछा था।

“क्योंकि ये फर्स्ट क्लास है।” गोरा उखड़ा था।

“मेरा टिकट भी फर्स्ट क्लास का ही है।” गाँधी ने पॉकेट से टिकट निकाल कर अपनी हथेली पर रख लिया था।

“सो हवाट् (इससे क्या ?) तुम काला ‘कुली’ इसमें सफर नहीं कर सकता। यहाँ केवल गोरे बैठते हैं।”

उपन्यास में सम्वाद संक्षिप्त हैं तथा कथा में रोचकता बनाये रखने में सहायक हैं। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उकेरने में भी सम्वाद सक्षम हैं। एक बार बा भी जेल जाने के लिए तैयार हो जाती हैं तब गाँधी जी उनके स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए कहते हैं कि वे नहीं चाहते कि बा मर जायें। इस पर बा कहती हैं –

“क्यों भला ?”

“तुम मेरी प्रेरणा हो। तुम्हीं नहीं रहें तो मैं संघर्ष किसकी शक्ति से करूँगा ?” गाँधी गम्भीर होकर बोले।

“मैं अभी नहीं मर रही।” बा दृढ़ स्वर में बोली।

“यह कैसे कह सकती हो ?”

“यह मैं नहीं, मेरी दृढ़ इच्छा शक्ति कह रही है। मेरा आत्मबल कह रहा है। तुम्हीं न कहते हो कि उपनिषद् के अनुसार हर जीव या वस्तु में ईश्वर का निवास है, तो वही ईश्वर बोल रहा है कि मैं अभी मरने नहीं जा रही। तुम्हें मँझधार में छोड़कर ईश्वर मुझे उठा ले ऐसा हो ही नहीं सकता।”

इन सम्वादों में रोचकता है साथ ही गाँधी जी की दृष्टि में उनकी पत्नी का महत्व तथा कस्तूरबा की निर्भीकता प्रकट होती है। दो-तीन सम्वादों में ही मिश्र जी की कुशल मनोवैज्ञानिकता तथा गाँधी जी व उनकी पत्नी के सम्बन्धों की आत्मीयता स्पष्ट हो जाती है। जिन स्थानों पर गाँधी जी अपने देशवासियों को सम्बोधित करते हुए कुछ कहते हैं वहाँ सम्वादों में प्रेरणात्मक शक्ति अनुभूत होती है।

उपन्यास की कथा उस समय की है जब भारत गुलाम था। देश में अंग्रेजों का राज्य था। प्रजा अंग्रेजों के अत्याचार से त्रस्त थी छोटी-छोटी बातों के लिए अंग्रेज भारतीयों को अपमानित करते रहते थे। तरह-तरह के कानून व प्रस्ताव पास कर भारतीयों को प्रताड़ित किया जाता था। अंग्रेजों के हाथ में सत्ता थी अतः शस्त्र क्रांति के ही बलबूते पर ही देश को आजाद नहीं कराया जा सकता था आवश्यकता थी एक ऐसे मार्ग की जिससे बिना किसी हानि के अपनी बात अंग्रेजों के सम्मुख रखी जा सके और इस मार्ग को सुझाया महात्मा गाँधी ने, सत्याग्रह के माध्यम से। इसी वातावरण का चित्रण डॉ. मिश्र ने इस उपन्यास में किया है। तत्कालीन वातावरण का चित्रण मिश्रजी ने इतनी कुशलता के साथ किया है कि उस समय की एक-एक घटना अपनी आँखों के सामने घटती हुई सी प्रतीत होती है। एक उदाहरण देखिये — “गाँधी का चम्पारण का कार्यक्रम एकपक्षीय नहीं था। नीलहों से निपटने के अलावा उन्होंने कई रचनात्मक कार्य भी हाथ में ले रखे थे। गाँवों में शिक्षा का अभाव था। गाँवों के

गरीब बच्चे नंग-धडंग गलियों में घूमते थे और धूल में लोट-पोट करते थे बहुत सारे बच्चों को अपने माँ-बाप के साथ नील के खेतों में मजदूरी करनी पड़ती थी गाँवों में पाठशालायें भी नहीं थीं कि लोग चाह कर भी बच्चों को नहीं पढ़ा पाते।¹

ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय देशकाल तथा वातावरण का विशेष ध्यान रखा जाता है। यही वह पक्ष है जो उपन्यास को यथार्थ के नजदीक लाता है 'शांति दूत' का वातावरण यथार्थ से परिपूर्ण है।

उपन्यास की भाषा व शैली भी उपन्यास की कथा के अनुरूप है। भाषा में रोचकता व प्रवाहमानता तो है ही शैली भी विविधतापूर्ण है। अपने अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी मिश्र जी पाठकों व उपन्यास की कथा के मध्य स्थान-स्थान पर आ जाते हैं यह उनकी अपनी ही शैली है और वे इसे गलत भी नहीं मानते। नवीनता को, मौलिकता को महत्व देने वाले मिश्र जी इसे उपन्यास की रचना शैली में किया गया नवीन प्रयोग मानते हैं। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में उस अध्याय के भावों व घटनाओं से सम्बन्धित जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है।

"समय का महत्व सर्वोपरि है कि नहीं ? समय ही अवसर प्रदान करता है आपकी प्रगति के लिए और कोई समय चूक जाये तो फिर उसके बाद पछताने के सिवाय और कोई चारा नहीं होता। किसी ने यों ही नहीं कहा कि — "समय जा चुका आदमी और डाल का चूका बन्दर नहीं बचता।"²

इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक, भावात्मक, चरित्रात्मक आदि शैलियों का प्रयोग भी आपने किया है।

- | | | |
|----|----------------------|---------------------|
| 1. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 111 |
| 2. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र : | शांति दूत पृष्ठ 64 |

भाषा शुद्ध साहित्यिक हिन्दी है। अंग्रेजों के समय की घटना होने के कारण अंग्रेजी के वाक्य भी हैं जिनका पाठकों की सुविधा के लिए हिन्दी रूपान्तरण कर दिया गया है। एक स्थान पर जब गाँधी जी बंगाली से मिलते हैं तो उस समय के वाक्य (सम्वाद) बंगला में हैं उनका भी रूपान्तरण हिन्दी में किया गया है। अंग्रेजी के सम्वाद का उदाहरण देखिये —

“ट्वाट इज योर क्वालिफिकेशन।” (आपकी योग्यता क्या है ?)

“आई एम ए मैट्रिकुलेट।” (मैं मैट्रिक परीक्षा पास हूँ)

“व्हेयर फ्रार्म ?” (कहाँ से)

“फ्रार्म इण्डिया” (भारत से)

बंगला का उदाहरण —

“उनिर सांगे दाखा होवे ना। अनेक काज आछे एउखाने। अफ्रीका—तोफ्रीका आमरा जानि ना। आपनि जा।” (उनके साथ भेंट होगी नहीं। यहाँ बहुत काम पड़ा है। अफ्रीका तोफ्रीका हम नहीं जानते। आप तशरीफ ले जाइये।”

कुल मिलाकर शांति दूत एक ऐसा जीवनीपरक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को प्रस्तुत किया है। महामानवत्व को अपनी सम्पूर्णता में समाहित किये यह यथार्थवाद आध्यात्मिकता को भी समेट हुए है। इस उपन्यास में यथार्थवाद अपनी सम्पूर्णता में देखने को मिलता है। तत्कालीन परिस्थितियाँ जिनमें अन्याय के विरुद्ध समाज का संघर्ष है जो समाजवादी यथार्थवाद को प्रस्तुत करता है। समाज की तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन आलोचनात्मक यथार्थवाद की उद्घोषणा करता है। गाँधी जी के चरित्र की विशेषताओं में उनके जीवन दर्शन में आध्यात्मिक एवम् सांस्कृतिक यथार्थवाद प्रतिलक्षित होता है। इसी क्रम में हम इस उपन्यास में मानव, महामानव, अतिमानव के विकास की अवस्था को भी पाते हैं।

समग्रतः ‘शांतिदूत’ डॉ० मिश्र की एक श्रेष्ठ कृति है।

देख कबीरा रोया

केवल हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिए ही नहीं अपितु सभी हिन्दी एवं अहिन्दी भाषी लोगों के लिए कबीर का नाम अनजान नहीं है। इतने लोकप्रिय कवि के बारे में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध न होने के कारण उनके बारे में लिखना आसान नहीं था। “कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर एक औपन्यासिक कृति प्रस्तुत करना बहुत आसान नहीं है।”¹ किन्तु फिर भी लेखक ने यथासम्भव इस कृति को प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है यद्यपि लेखक ने कथा को सीधे सादे ढंग से नहीं कहा अपितु कबीर के प्रेत को अपने ऊपर धारण कर इस कथा को गति प्रदान की है। डॉ० मिश्र जी की यह विशेषता है कि उनके अधिकांश उपन्यासों के पात्र भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ ही बोलते हैं। कबीर की तो कोई भाषा ही नहीं थी अतः उसके प्रेत को उन्होंने अपनी ही वाणी दी है। ऐसी कल्पना करके मिश्र जी कबीर की भाषा के चयन एवं उसे गढ़ने की मशक्कत से बच गए। डॉ० मिश्र ने उसे उपन्यास को यथासम्भव प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है किन्तु फिर भी उन्होंने कहा है कि यह इतिहास नहीं “.....यह एक औपन्यासिक कृति है, ऐतिहासिक नहीं। ऐतिहासिकता चाहे इसमें जितनी उपलब्ध हो पर इसे इतिहास ग्रंथ की संज्ञा तो नहीं ही दे सकते”² कबीर के जीवन की लगभग सभी घटनाओं को इस उपन्यास में यथार्थ के आधार भी रखा गया है किन्तु कुछ एक चमत्कारों का भी लेखक ने उल्लेख किया है। उसके सम्बन्ध में भी लेखक का कहना है कि यह उसकी विवशता है।

उपन्यास की कथा का आरम्भ कबीर के कथन से हुआ है जिसमें उपन्यास का उद्देश्य एवं लेख शैली पर प्रकाश डाला गया है। वर्तमान समय की समस्याओं को देखकर

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, उपन्यास की प्रस्तावना से
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, उपन्यास की प्रस्तावना से

कबीर की आत्माविचलित है और पुनः जनसमाज को जाग्रत करने के उद्देश्य से अपने संदेश को जन-2 तक पहुँचाने के लिए इस उपन्यास को माध्यम बनाती है।

कबीर का जन्म वाराणसी नगरी में एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था लोक-लाज के भय से उसका पिता कबीर को लेंहर तारा नामक तालाब के घाट पर रख जाता है। वहाँ से नीमा-नीरू नाम के जुलाहा दम्पति कबीर को लालन-पालन के लिए ले जाते हैं। बचपन से ही कबीर को अपने माता-पिता के अतिरिक्त सभी से उपेक्षा ही मिलती है। इसी वातावरण से विद्रोह के रूप में नहीं अपितु साधना पथ पर अग्रसर होकर कबीर ने यह जाना कि सभी मनुष्य समान हैं और उसी सत्य का उद्घाटन अपनी साखियों के माध्यम से करने लगते हैं। माता-पिता की रजामंदी से कबीर का विवाह लोई नाम की एक सुशील कन्या से हो जाता है। लोई को पाकर कबीर को लगता है उनके मार्ग में लोई बाधक नहीं है अपितु साधक है। काशी के पंडित कबीर से ईर्ष्या करने लगते हैं किन्तु कबीर सभी की शंकाओं का समाधान कर उन्हें संतुष्ट कर देते हैं। काशी के पंडितों के कहने पर कबीर अपने लिए गुरु को तलाशते हैं। स्वामी रामानंद पहले तो कबीर को शिष्य स्वीकारने से मना कर देते हैं किन्तु जब कबीर पैरों में पड़ जाते हैं तो कबीर को अपना शिष्य बना लेते हैं। रामानन्द द्वारा प्रदान किये गये राम मंत्र को धारण कर कबीर स्वयं सम्पूर्ण रूप से राममय हो जाते हैं। एक हिन्दू को अपना धर्मगुरु बनाने के कारण उनके माता-पिता एवं साथी उनका विरोध करते हैं किन्तु जब रामानन्द कबीर के बारे में सभी को अपने विचार से अवगत कराते हैं तो सभी संतुष्ट हो जाते हैं।

कबीर के जीवन में एक दूसरी स्त्री धनिया का प्रवेश होता है जो कबीर को अपना इष्ट मान चुकी है तथा विवाह की इच्छुक है। कबीर उसे समझते हैं किन्तु उनका पुत्र धनियाँ के पक्ष में होता है। दोनों की रजामंदी से कबीर के घर में ही धनियाँ रहने लगती है। कबीर अपने

दोहों के माध्यम से सामाजिक बुराइयों से लोगों को बचने का उपदेश देते रहते हैं। अपने ही श्रद्धालुओं की बातों को सुनकर कबीर भ्रमण पर जाने का विचार बनाते हैं कबीर का पुत्र कमाल पहले तो विरोध करता है किन्तु बाद में वह तैयार हो जाता है स्थान-स्थान पर भ्रमण कर कबीर लोगों को उपदेश देते हैं। अनेक स्थानों पर उन्हें विरोधियों का सामना भी करना पड़ता है किन्तु सभी पर विजय प्राप्त कर अपने अंतिम दिनों में कबीर वाराणसी आते हैं उनकी पत्नी का देहांत हो चुका होता है धनियां भी उनके चरणों में प्रणाम निवेदित कर चली जाती है। तब कबीर का मन पूरी तरह से इस संसार से उचट जाता। लोगों के मना करने पर कबीर काशी से मगहर जाकर अपनी प्राण ज्योति को उस परम ज्योति में विलीन कर देते हैं। इसी के साथ उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

उपन्यास की कथा तो संक्षिप्त है किन्तु लेखक ने कबीर के दोहों को उनसे सम्बन्धित प्रसंग आने पर अर्थ के साथ प्रयोग किया है साथ ही कबीर के दोहे इतने अधिक हैं कि उनका थोड़ा बहुत उल्लेख भी उपन्यास को लगभग 400 पृष्ठों का आकार दे गया है। एक कवि के जीवन से संबंधित उपन्यास में यदि उसके कृतित्व की उपेक्षा कर दी जाय तो शायद यह उस कवि के साथ अन्याय ही होगा अतः ऐसा करना लेखक की विवशता रही है साथ ही उपन्यास की कथा में सरसता भी आ गई है। कथानक में रोचकता है तथा पाठक को बाध कर रखने की शक्ति भी है। धनियाँ और कमाल के प्रसंग पाठक की उत्सुकता को बनाए रखते हैं। आज के वातावरण को देखते हुए कथा प्रासंगिक भी है। यद्यपि कबीर आज कल के संत नहीं थे उन्हें गुजरे एक युग ही व्यतीत हो गया ऐसे में उनके जीवन से संबंधित घटनाओं को साक्ष्य के साथ प्रस्तुत करने का लेखक का प्रयास सराहनीय रहा। “कबीर के जीवन को लेकर प्रमाणिक सूचनाओं के अभाव में आज से प्रायः साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व उत्पन्न संत कवि के जीवन को लेकर कथा बुनना एक चुनौती भरा कार्य था जिसे मैंने दायित्वपूर्ण

तरीके से निभाने का प्रयास किया है।¹ सम्पूर्ण कथानक एक गरिमामयी व्यक्तित्व से ओत-प्रोत है पाठकों को इसके माध्यम से कबीर के व्यक्तिगत जीवन में भी झांकने का अवसर मिला है।

उपन्यास के पात्रों में कबीर नायक हैं कबीर का चरित्र उज्ज्वल है। कबीर एक समाज सुधारक होने के साथ-साथ कवि भी है।

“कबीर एक संत के अलावा एक महान समाज सुधारक भी थे। जिस सामाजिक न्याय की बात आज की जाती है उसका प्रबल पक्षधर आज से साढ़े पांच सौ वर्षों से अधिक पूर्व ही पैदा हो चुका था। समानता और सांप्रदायिक सदभावना का प्रथम शंखनाद कबीर ने ही किया था “कबीर के व्यक्तित्व का सबलतम पक्ष है उनका कवि रूप। इस आशु कवि की चेरी थी कविता। अनुचर थे उनके शब्द और अलंकार। यद्यपि जानबूझकर अलंकारों का प्रयोग इनसे कभी नहीं किया।”² इसके अतिरिक्त एक मनुष्य के रूप में कबीर एक अच्छे पति थे किन्तु पिता के विषय में वे अपने पुत्र के प्रति अपने कर्तव्य का पूर्ण रूपेण निर्वाह नहीं कर सके थे। उनका पुत्र कमाल स्वयं उनके बारे में कहता है “वह ऐसे कि जैसा मैंने पहले भी कहा उन्हें अपने राम की ध्यान-धारण और उसके कीर्तन से कभी मौका ही नहीं मिला कि वे अपने परिवार की ओर भी ध्यान दें। अपने एकमात्र बेटे के लिए भी कुछ सोचें। इसकी चाल-ढाल को देखें—सुनें। उसे पिता का प्यार दें। प्यार के अभाव में किसी का भटक जाना स्वाभाविक है।”³

कबीर स्त्री के निंदक थे किंतु केवल कामिनी रूप के। स्त्री के प्रति उन्होंने पूर्व में अपनी साखियों में जो कुछ भी लिखा उसके बारे में वे कहते हैं —

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, उपन्यास की प्रस्तावना से
 2. वहीं
 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, उपन्यास की प्रस्तावना से पृ० 268

“मैं अपनी भूल के लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं वस्तुतः वैष्णवों के चक्कर में आ गया था।
उन्हीं की भाषा बोल गया। सच तो यह है कि नारी जननी है, मातृ शक्ति। वह इस धरती
की पावन सुगंध है। वह नहीं होती तो यह पृथ्वी रहने लायक नहीं रहती।”¹

कबीर गृहस्थ थे और गृहस्थ को ही वे सबसे बड़ा सन्यास मानते थे। कर्म की उनके
जीवन में प्रधानता थी। किन्तु ईश्वरीय अनुग्रह को ही सफलता के लिए आवश्यक मानते थे।
“कर्म और धर्म तुम्हारे जीवन-रथ के दो चक्र हैं। केवल एक चक्र के बल पर रथ कितना
गतिशील हो सकता है, यह स्वयं सोच लो। अतः जीवन में सफल होना है तो कर्म और धर्म
दोनों को साधना होगा। केवल अपने बाहु बल पर विश्वास नहीं कर ईश्वरीय अनुकंपा पर भी
आश्रित होना पड़ेगा। राम के बिना त्राण नहीं। उसका अनुग्रह नहीं हो तो सब किया कराया
धरा का धरा रह जायगा।”²

उपन्यास के सभी पात्रों में लोई और धनियाँ दोनों का ही स्थान महत्वपूर्ण है। दोनों का
ही योगदान महत्वपूर्ण है। कबीर जब रामानन्द का शिष्यत्व ग्रहण करने जाते हैं तो लोई भी
अपने को पूर्ण रूप से राम भक्त बना लेती है। वह अपने सिर का मुंडन करा कर मटमैले
रंग का एक वस्त्र धारण कर लेती है। कबीर उसकी इस हालत को देखकर रो पड़ते हैं तब
कहती है “क्यों साईं प्रसन्नता के अवसर पर यह रुदन क्यों? मेरी हालत पर? मैंने तो वह
किया जो एक संत पत्नी को करना था। पूर्णतया राम को समर्पित महान गुरु रामानंद के
शिष्य की पत्नी के अनुरूप ही तो मैंने अपने आपको ढाला है। यह हँसने का अवसर है साईं
या रोने का?”³ इसके अतिरिक्त जब कभी कबीर अपने को द्विविधा में पाते हैं तो उनका
संबल लोई ही होती थी। अपने पिता के प्रति कबीर के विचार में जब असंतोष आ जाता

-
- | | |
|-----------------------|---------------------------|
| 1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : देख कबीरा रोया, पृ० 168 |
| 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : देख कबीरा रोया, पृ० 198 |
| 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : देख कबीरा रोया, पृ० 110 |

है तब लोई ही उनको वास्तविकता से परिचित कराती है। "तुम्हें पिता के मन का ठीक पता नहीं। वे जी-जान से तुम्हें चाहते हैं। तुम्हारे प्रति पिता के प्यार की मैं साक्षी हूँ।"¹ धनियाँ वाले प्रकरण को लेकर वह कबीर की आलोचना भी करती है तथा समाज की परवाह किए बिना उसे घर में भी रख लेती है इससे उसके चरित्र के साहसी एवं नारीके प्रति सहानुभूति की भावना रखने वाली विशेषता का भान होता है। लोई तो कबीर की ब्याहता पत्नी थी उससे जो किया उसका कर्तव्य था किन्तु कबीर के लिए सर्वस्व जीवन का त्याग वह भी बिना किसी आशा के इसके लिए धनियाँ का चरित्र लोई से श्रेष्ठ ठहरता है। धनियाँ विदुषी है, व्यावहारिक है एक साधिका, प्रेमिका तथा सत्चरित्रिणी है उसके चरित्र के संबंध में कबीर का यह कथन ही प्रमाण है "नही धनियां नहीं तुम अस्पृश्य नहीं हो। तुम विशुद्ध प्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति हो त्याग की वंद्य देवी। मेरे दंभ को क्षमा करना। मैं ही सदा दिग्भ्रमित रहा तुम्हारे निःस्वार्थ, नैसर्गिक प्रेम के समक्ष मेरा संकीर्ण सोच कहीं नहीं ठहरता। मैं हीरे को कांच और कमल-पुष्पको निर्गंध मदार-फूल मानने का दोषी हूँ। मैं सद निष्पाप आसक्ति करे अपवित्र रागात्मक आकर्षण मानने की अज्ञानता का आखेट रहा है। मेरे इस पाप का कोई प्रायश्चित नहीं।"² इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों में स्वामी रामानन्द, कमाल, कमाली, नीमा, नीरू तथा अन्य अनेक जन आते हैं जिनका चरित्रांकन लेखक के यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में ही करने का प्रयास किया है। स्वामी रामानन्द एक विद्वान संत है। कमाल पिता की उपेक्षा का शिकार होकर उददंड हो जाता है अतः कबीर उसे कपूत तक कह देते हैं किन्तु बाद में पिता की महानता को जानकर वह उनका अनुगामी हो जाता है। कमाली एक सुशील बालिका है।

पात्रों का चरित्रांकन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हुआ है। अप्रत्यक्ष शैली को अधिक अपनाया गया है घटना के माध्यम से अन्य पात्रों के माध्यम से डॉ० मिश्र ने इस उपन्यास के

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, पृ० 120

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, पृ० 386

पात्रों का चरित्रांकन कराया है जो अधिक स्वाभाविक है। सभी पात्र अपनी विशेषताओं को धारण किए हैं। कबीर के जीवन पर पूर्ण रूपेण प्रकाश डालने का कार्य इन चरित्रों के माध्यम से ही हुआ है। 'देख कबीरा रोया' के संवादों में सहजता, स्वाभाविकता तथा उपदेशात्मक है। कथा का विकास संवादों के माध्यम से ही हुआ है। उपन्यास के संवाद पात्रों के चरित्र को तथा उनके मनोविज्ञान को प्रकट करने में पूर्णतया सक्षम हैं। लोई और कबीर के मध्य का यह संवाद देखिए —

“साई! मैंने तुमसे कुछ पूछा था।” वह मुझे अपनी ओर अपलक देखते संकुचित हो गई थी।

“हां” मैं जैसे कहीं दूर से बोला और नहीं चाहते हुए भी जोड़ा तुम बहुत सुंदर हो लोई!” लोई ने सिर नीचा किया और कहा, “इस शुभ घड़ी में तुम कैसी बात कर रहे हो साई!” “क्या यह कोई अशुभ बात है लोई? अपनी पत्नी के रूप गुण की प्रशंसा करना पाप किधर से हो गया?” “यह बात नहीं साई!” लोई ने कहा “बात मैं कुछ और सोच रही हूँ!” “क्या?”

“तुम जब गुरु—मंत्र लेने जा रहे हो तब यह माया तुम्हें कैसे बाँध रही है? यह तो बड़ी विस्मयकारी बात है। तुम आजीवन माया को कोसते रहे और आज जब अपने जीवन के एक महान, अभियान पर जा रहे हो यह ‘माया ठगिनी’ किधर किधर से आकर तुम्हें छूने का प्रयास कर रही है।” इन संवादों से कबीर की पत्नी लोई का दृढ़ आत्मविश्वास, तथा कबीर की अपनी पत्नी के प्रति सहृदयता प्रकट होती है।

कथा को गति प्रदान करने में भी संवादों का महत्वपूर्ण योगदान है। संवाद एवं

कथेमकथनों का रोचक होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि यही रोचकता पाठक को आरंभ के संवादों में जहाँ गाम्भीर्य के दर्शन होते हैं वहीं कमाल के संवादों में चंचलता एवं स्वार्थ की परछाई दिखती है। लोई के संवादों में एक साधारण गृहिणी एक कर्तव्यपरायण स्त्री का भाव है तो धनियाँ के संवाद उसे विदुषी, व्यवहार कुशल सिद्ध करते हैं।

देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से यह उस समय की कथा है जब भारत में हिंदू व मुसलमान दोनों ही संप्रदाय के लोग रहते थे तथा अनेक तथाकथित साधु-संत अपने-2 चमत्कारों से जनता को भ्रमित किए थे सभी आपने को श्रेष्ठ साबित करने में लगे हैं। यह कथा आज से करीब 500 या साढ़े पांच सौ वर्ष पूर्व की। उस वाराणसी नगरी की जिसे आज बनारस के नाम से जाना जाता है। उस समय जात पात का बोलबाला था। नीची जाति वालों की हत्या से भी लोग बचते थे। हिन्दुओं और मुसलमानों में बात-2 पर झगड़े होते रहते थे। तलवार के बल पर इस्लाम फैलाया जा रहा था। मंदिरों को ध्वस्त किया जा रहा था तथा सम्पत्ति लूटी जा रही थी।¹ उसी वातावरण से दुःखी होकर अपनी साखियों में कबीर ने हिन्दू व मुसलमान दोनों को उनकी संकीर्णता के लिए जमकर कोसा।² हिन्दुओं में भी आपस में अनेक मत व वादों के प्रवर्तक थे। "अक्सर शैवों और वैष्णवों में ठनती रहती थी मैंने राम नाम के पुल द्वारा इन दोनों के मध्य की खाई को भी पाटने का प्रयास किया और बहुत हद तक सफल भी हुआ।"³ तांत्रिक अपनी शक्तियों से जनता को डराते धमकाते रहते थे। तथा भांति-भोंति- के चमत्कार दिखा कर अपना उल्लू सीधा करते रहते थे। ऐसे ही कुछ तांत्रिकों के विरोध का समाना कबीर को भी करना पड़ता जब वे दक्षिण की ओर अपनी यात्रा पर गए उस समय के वातावरण का चित्र दृष्टव्य है—

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, पृ० 42
जो ब्रह्म ब्राह्मनी जाए, ओर राहतुम काह न आए
जो तू तुरक तूरकी जाया, पेटै काहे न सुनति कराया
 2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, पृ० 39
 3. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, पृ० 179

“मैंने देखा कि संत-मंडली को घेरकर जल की ऊँची-2 लहरें उठ रही थीं। इस आश्चर्य जनक घटना को देखकर सभी स्तब्ध रह गए। पानी और आग में तो वैर है फिर पानी और आग एक साथ कैसे”¹

इसी प्रकार के वातावरण में कबीर ने अपने संदेश को जन-2 तक पहुँचाया। तत्कालीन वातावरण का लेखक ने यथार्थ चित्रण उपन्यास में किया है। चमत्कारों को भी स्थान दिया क्योंकि ये भी उस युग का सत्य हैं।

इस उपन्यास की भाषा व शैली तो मिश्रजी की ही है किन्तु चूँकि कबीर की आत्मा इस उपन्यास को लिखवा रही है अतः लेखक के अनुसार कबीर की बेबाक टिप्पणी वाली शैली भी इसमें प्रयुक्त हुई है। उपन्यास की भाषा के संबन्ध में उपन्यास के अंत में ‘अथ कबीर उवाच’ में कबीर कहते हैं।

“.....भाषा के प्रति अपने पूर्वाग्रह से यह अपने को मुक्त नहीं करपाया। कहीं-2 मुझसे उर्दू-फारसी के अल्फाज भी बुलवाए जाते हैं पर प्रमुखता इसने अपनी तत्सम शब्दावली को ही दी है। मेरे मुख से अनेक बार संस्कृत के कठिनतम शब्दों को भी उगलवाया है।”² अतः इस उपन्यास में लेखक ने तत्सम शब्दों से युक्त साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग किया है एक उदाहरण देखिये -

“हाँ लोई, यह सद्गुरु की विशेष कृपा ही थी कि उन्होंने अपने शिष्यों से स्पष्ट कहा, “आज से यह अस्पृश्य नहीं रहा। उनके दर्जनभर शिष्यों ने तत्काल इस आदेश को चरितार्थ भी किया। मैं सीढ़ी पर एक तरफ खड़ा रहा और वे सभी यहाँ तक कि गुरु भी मुझे स्पर्श सा करते हुए सीढ़ियाँ उतरते गए।”³

-
- | | | |
|----|--------------------|---------------------------|
| 1. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : देख कबीरा रोया, पृ० 347 |
| 2. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : देख कबीरा रोया, पृ० 392 |
| 3. | डॉ० भगवतीशरण मिश्र | : देख कबीरा रोया, पृ० 118 |

मुस्लिम पात्रों के मुख से यद्यपि उर्दू-फारसी के शब्दों से युक्त शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

“दिल्ली से और कुमुक मंगा लीजिए तब तक के लिए कबीर की सजा को मुलतवी रखिए। सजा सुनाई जा चुकी है तो उसे अंजाम देना ही है। उसे टाल सकते हैं पर खत्म नहीं कर सकते।” जहाँ तक शैली का प्रश्न है। मिश्र जी ने अपनी चिरपरिचित यथार्थवादी, प्रश्नाचक व दार्शनिक शैली को अपनाया है। स्थान-2 पर उद्धरणों का प्रयोग भी किया है।

समग्रतः भाषा एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से यह उपन्यास रोचक एवं सफल हैं। इसकी भाषा तथा शैली सुधी पाठकों को बाँध कर रखती है तथा उनका ज्ञान भी बढ़ाती है। इसमें आम आदमी को समझ आने वाले शब्दों का ही प्रयोग हुआ है क्योंकि कबीर आम आदमी के ही कवि थे।

आज के भारत की दुर्दशा को देखकर यह उपन्यास एक संदेश प्रदान करता है। देख कबीरा रोया में भी कबीर कहते हैं कि आज के भारत में सांप्रदायिकता के भीषण तांडव को देखकर ही उन्हें इस आत्मकथा के रूप में अपने सन्देश को जन-2 तक पहुँचाने के लिए आना पड़ा।¹ और सबसे अधिक पीड़ा तो उसे अयोध्या में बाबरी मस्जिद वाले कांड को लेकर हुई जिसमें भयानक रूप से नरसंहार हुआ। लोगों की इसी तुच्छ मानसिक श्रृंखला से उन्हें मुक्त करने इस उपन्यास का निर्माण हुआ यह उपन्यास कबीर के जीवन के यथार्थ को बिना किसी आवरण के पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। एक मानव से अतिमानव के विकास की यह कथा है। जो विश्वबंधुत्व को हमारे सम्मुख रखती है। कबीर समस्त जगत को राम में तथा राम को सारे संसार में देखते हैं। उनकी साखियाँ जीवन सत्य को प्रस्तुत करती हैं। यथार्थ कभी नष्ट नहीं होता अतः कबीर की साखियाँ भी कभी नष्ट नहीं होंगी उनका जितना महत्व आज से साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व था आज भी उतना ही है और आगे भी उतना ही रहेगा।

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : देख कबीरा रोया, पृ० 301
 2. वहीं पृ० 13

अथ मुख्यमंत्री कथा

डॉ० भगवतीशरण मिश्र की औपन्यासिक कृति “अथ मुख्यमंत्री कथा” एक राजनीतिक उपन्यास है । इसमें बिहार प्रदेश के राजनीतिक वातावरण को उसकी पूरी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है । प्रशासनिक सेवाओं के कार्यकाल के दौरान डॉ० मिश्र ने सरकारी तंत्र को बहुत समीप से देखा है व अनुभव किया है । अपने इसी अनुभव को उन्होंने इस उपन्यास में मूर्त रूप प्रदान किया है । हमारे राजनेता किस प्रकार का शासन जनता को दे रहे हैं उसका वर्णन करते हुये पुस्तक के कवर पृष्ठ पर अपने संदेश में डॉ० मिश्र कहते हैं “प्रजातंत्र को तो प्रजा द्वारा, प्रजा के लिए और प्रजा का शासन कहा गया है । कुछ क्षेत्रों में प्रजातंत्र ने जो स्वरूप ग्रहण किया है, लोग जिस त्रासदी में जी रहे हैं वे इस प्रजातंत्र के नाम पर हैं कि रोएँ, उनकी समझ में नहीं आ रहा । हमसे पूछें तो प्रजातंत्र तो इन प्रदेशों में एक छलावा बन कर रह गया है हम झेल रहे हैं राजतंत्र को ही, मध्ययुगीन बर्बर राजतंत्र को ।”

उपन्यास की कथा का आरम्भ एक विश्वविद्यालय के प्राकृत के प्रोफेसर के वर्णन से आरम्भ होता है । प्रोफेसर साहब के एक मित्र नेताजी हैं जो इस समय सरकार में होते हैं । उनकी मदद से प्रोफेसर साहब पहले विभागाध्यक्ष और फिर विश्वविद्यालय के कुलपति भी बन जाते हैं । कथा संक्षिप्त है किन्तु इसमें भ्रष्ट तंत्र के सभी पहलुओं को दिखाया है । प्राकृत के प्रोफेसर शर्मा नेताजी की मदद से पहले स्वयं को विभागाध्यक्ष की अनुपस्थिति में कार्यकारी विभागाध्यक्ष बनवाते हैं और फिर नेताजी की मदद से उनका स्थानान्तरण दूसरे विश्वविद्यालय में करवाकर स्वयं विभागाध्यक्ष बन जाते हैं ।

विभागाध्यक्ष बन जाने पर श्रीमती शर्मा सन्तुष्ट नहीं होती वह मि० शर्मा को

कुलपति बनने के लिए प्रस्तावित करती हैं । इस काम में नेताजी की मदद लेती हैं नेताजी शिक्षा मंत्री बन जाते हैं वे एक दिन प्रदेश के मुख्यमंत्री को मि० शर्मा के घर बुलाते हैं । मिसेज शर्मा उनके आने से पहले ड्राइंग रूम को पुस्तकों से पाट देती हैं उनके मध्य धवल वस्त्रों में सुशोभित मि० शर्मा को मुख्यमंत्री बहुत बड़ा विद्वान समझते हैं । इसके बाद मि० शर्मा को कुलपति बनाने की संचिका को लेकर शिक्षामंत्री व मुख्यमंत्री दोनों राज्यपाल के पास जाते हैं । वहाँ जाकर जब मुख्यमंत्री को यह पता चलता है कि राज्यपाल महोदय ने किसी और के नाम का प्रस्ताव किया है तो वे प्रजातंत्र की दुहाई देकर मि० शर्मा के नाम को अनुमोदित करा देते हैं ।

यह सूचना जैसे ही विश्वविद्यालय में पहुँचती है सभी विभागाध्यक्ष एक अयोग्य एवं कनिष्ठ प्रोफेसर के कुलपति बनने पर अपना विरोध प्रकट करने पहले प्रो० शर्मा के घर जाते हैं । फिर अध्यापकों का एक शिष्ट मंडल मुख्यमंत्री से मिलने उनके घर पर जाता है किन्तु मुख्यमंत्री महोदय उनकी एक भी बात नहीं मानते मि० शर्मा कुलपति बन जाते हैं । मुख्यमंत्री चुनाव में प्रचार के लिए श्रीमती शर्मा को मंच पर आने का आह्वान करते हैं मिसेज शर्मा यह प्रस्ताव सुनकर नाराज होती हैं वे मुख्यमंत्री के लिए कठपुतली बनना अस्वीकार कर देती हैं तथा मि० शर्मा का त्यागपत्र लाकर शिक्षा मंत्री को दे देती हैं । मुख्यमंत्री महोदय कौशाली का चुनाव हार जाते हैं । इसी के साथ कथा समाप्त हो जाती है ।

इस मुख्यकथा के साथ मुख्यमंत्री जी की कार्यशैली की कथा भी साथ-साथ चलती है । कथानक ठोस एवं सुसम्बद्ध है समस्त घटनाएँ एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि उनमें किसी प्रकार की अप्रसंगिकता दिखाई नहीं देती । घटनाओं का प्रस्फुटन बहुत ही स्वाभाविकता से हुआ है । कथानक में रोचकता आरम्भ से अन्त तक विद्यमान है । “उन्हें याद है, वे एक बार बंगलौर से लौटे थे । वहाँ की सिल्क की साड़ियों के सम्बन्ध में उन्हें खूब पता था । जब उनकी अटैची से एक सिल्क का टुकड़ा भी नहीं निकला तो पत्नी का तेवर

देखने योग्य था । कम से कम चार दिनों में ही उन्हें मँहगे दामों में एक सिल्केन साड़ी लेनी पड़ी थी तब कहीं जाकर पत्नी के क्रोध का पारा डाउन हुआ था।'

कथानक यथार्थ से ओतप्रोत हैं मुख्यमंत्री किस प्रकार प्रजा तंत्र का गला घोटकर तानाशाही करते हैं उसका एक उदाहरण देखिए "हमने कई बार कहा नहीं कि हम घुटना—टेक नहीं छाती ठोक मुख्यमंत्री हैं, मंत्री पलानिंग में कवन टॉग अड़ाएगा ? चान्सलर को हम केया (क्या) समझते हैं ? जहाँ कहेंगे वहीं दस्खत करन पड़ेगा । आप पहले चुनिए न आदमी । जो टॉग अड़ाता है उसकी हम टॉग नहीं कटवा लेते है ? ई बात केया चान्सलर को नहीं मालूम है ।"

एक उज्ज्वल समस्या को इस औपन्यासिक कृति में उठाया गया है यह डॉ० मिश्र की सृजनात्मक प्रतिभा का परिचायक है राजनीतिक गलियारे के यथार्थ के अपने तीखे अनुभव को पूरी मौलिकता के साथ डॉ० मिश्र ने प्रस्तुत किया है । उपन्यास मनुष्य जीवन की एक यथार्थवादी कृति है । उपन्यास में सम्भवता एवं सत्यता का तात्पर्य यह है कि उसकी कथा वस्तु ऐसे तत्वों से निर्मित हो कि हमारी बुद्धि सहज ही उस पर विश्वास करने लग जाए इसके लिए कथावस्तु का आप—पास से लिया जाना अधिक प्रभावकारी होता है । "अथमुख्य मंत्री कथा" का कथानक पूरी तरह यथार्थवादी तथ्यों एवं तत्वों से ओतप्रोत है ।

कथानक के पश्चात उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व पात्र एवं चरित्र चित्रण है । इस उपन्यास के मुख्य पात्र मुख्यमंत्री जी प्रोफेसर शर्मा, श्रीनिवास मेहता उर्फ नेताजी तथा प्रोफेसर साहब की पत्नी श्रीमती कविता शर्मा हैं । गौण पात्रों में श्रीमती ललिता, राज्यपाल, प्रोफेसर सिन्हा प्रो० घोष कृषि मंत्री आदि हैं तथा गौणातिगौण पात्रों के अन्तर्गत झाईवर विश्वविद्यालय के अन्य कर्मचारी तथा मुख्यमंत्री के आस—पास चाटुकारिता करने वाले अन्य

1— डॉ० भगवती शरण मिश्र : अथ मुख्यमंत्री कथा (पृष्ठ 42)

2— वही (पृष्ठ 121)

पार्टी सदस्य आदि आते हैं।

उपन्यास के पात्रों का चित्रण सजीव चित्रों की भाँति किया गया है। पात्र ही उपन्यास को गति प्रदान करते हैं अतः उनका सजीव और सक्रिय होना आवश्यक है। इस उपन्यास के सभी पात्र अपना-अपनी चारित्रिक विशेषताओं को लिए हुए हैं और इन पात्रों का चित्रण भी बहुत स्वाभाविक ढंग से हुआ है प्रो० शर्मा के चरित्र को स्पष्ट करने वाली ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं— “मतलब वह नख-शिख घवल थे। वस्त्रों के चयन में उनकी सुरुचि का योगदान था तो चेहरे की चिकनाहट में था विविध आधुनिक क्रीमों और नीबू के रस से लेकर संतरे के छिलकों तक का सहयोग जिनका प्रयोग वह सुबह शाम उसी नियमितता से करते थे जिससे वे अपने आवास से कोई तीन किलोमीटर स्थिति अपने वाल मित्र और अब विधान-सभा सदस्य श्रीनिवास मेहता उर्फ नेताजी के आवास पर जमने वाली सांध्य संगोष्ठी में भाग लेते थे वे स्वयं जानते थे कि बाहर की धवलता के बाबजूद उनके अन्दर चाटुकरिता और उसके सदृश्य कई अन्य गुण दुर्गुण भी उसी तरह छिपे पड़े थे जैसे रामनामी चादर के अन्दर अनेक दोष-पाप बसेरा बनाए रहते हैं।” स्पष्ट है कि प्रो० शर्मा नेताओं की चापलूसी कर अपना उल्लू सीधा करने वाले व्यक्तियों में से एक हैं।

किन्तु मि० शर्मा अन्दर ही अन्दर इस बात को भी जानते हैं कि उनके अन्दर योग्यता नाम की कोई चीज नहीं है। वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं “मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर क्या है मैं कुलपति बनने की कोई योग्यता नहीं रखता। वर्षों से विभागाध्यक्षी करके अपने विषय का ‘क’ ‘ख’ ‘ग’ तक तो भूल गया हूँ अन्य विषय क्या जानूँगा।”² अपने आसपास के स्वार्थ से परिपूर्ण वातावरण के चलते मि० शर्मा भी अन्याय के प्रति उदासीन हो गए हैं। दिल्ली यात्रा के दौरान जब वे विभिन्न धार्मिक स्थलों में जाते हैं तो

1— डॉ० भगवती शरण मिश्र अथ मुख्यमंत्री कथा (पृष्ठ 5)

2— डॉ० भगवती शरण मिश्र अथ मुख्यमंत्री कथा (पृष्ठ 13)

उनकी आत्मा जाग्रत होकर उन्हें अन्याय करने से रोकती है । वे इस निश्चय के साथ वापस आते हैं कि वे किसी का हक नहीं मारेंगे । किन्तु पत्नी के बार-बार आग्रह करने पर कुलपति पद के प्रलोभन के आगे वे अपनी आत्मा की आवाज को कुचल देते हैं । “जान बची लाखों पाए” की मुद्रा में प्रो० शर्मा उल्टे पांवों अपने दीवान पर लौट गए । मन ही मन पुलकित हुए कि अब काम बन गया । पर इसी घड़ी में एक बार फिर जामा मस्जिद का काला चोगाधारी फकीर उनके सामने आ खड़ा हुआ – “तुमने किसी का हक मारा तो।” धत्! अब तुम्हारी मनहूस सूरत की यहाँ क्या आवश्यकता है ? शर्मा जी ने मन-ही-मन कहा और ध्यान बँटाने के लिए रूम में ही सजी अलमारियों की ओर देखने लगे ।¹

मुख्यमंत्री जी भी प्रमुख पात्र हैं । वास्तव में समूचे तंत्र की अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार के मूल में वही हैं। हर प्रकारसे अपना काम निकालने में वे माहिर हैं । अपनी विशेषताओं को स्वीकारते हुए वे स्वयं कहते हैं । “हमने परधान मंत्री से छाती ठोक कर कह दिया कि अगर राज में खून की होली खेलनी हो तो हमारी सरकार को छुड़एगा । जहाँ से भी विरोध का आवाज उठा हमने कुचल दिया । लोग कहते हैं हमने गुण्डे पाल रखे हैं । गुण्डा नहीं पालेंगे तो शासन केया खाक – पथर करेंगे” ।²

मुख्यमंत्री के लिए कानून और व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है । वोटों की खातिर मुख्यमंत्री जी कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं। भारत के प्राचीन साहित्य का अपमान करने से भी ये नहीं चूकते । “पर कहाँ निकला आपकी तरह कोई अहंकारी जो अपने मन्त्रियों को सन्तरी बोले और अपने ऑफिसरों का ठेठ भोजपुरी समाज के अन्य वर्गों से स्वागत करे और अकारण समाज के अन्य वर्गों की इज्जत का द्रोपदी के चीर की तरह हरण करता चले । ब्राह्मणों के जनेऊ उतरवाए और इस देश की सांस्कृतिक विरासतों वेद-पुराण

1- वही (पृष्ठ 176)

2- वही (पृष्ठ 195)

और गीता को गंगा में बहवा देने की बात करे ।”

तीसरे प्रमुख पात्र हैं शिक्षा मंत्री जी । आप सत्ता लोलुप तो हैं किन्तु इतने अधिक पातित नहीं जितने कि मुख्यमंत्री । महिलाओं की संगति आपको पसंद है । विशेषकर विदुषी एवं सुरुचि सम्पन्न महिलाओं की । अपने मित्र की मित्रता के लिए या चाटुकारिता से प्रसन्न होकर वे उसे अयोग्य होने पर भी ऊँचे से ऊँचे पद दिलाने के लिए अपनी तिकड़मों का प्रयोग करते रहते हैं । मंत्री जी की एक विशेषता है कि वे मुख्यमंत्री के सम्मुख उनके प्रति बेबाक टिप्पणी करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि मुख्यमंत्री की सरकार अल्पमत की है ।

चौथी प्रमुख पात्र हैं श्रीमती कविता जो प्रो० शर्मा की पत्नी है । सामान्य घरेलू महिला की तरह उन्हें भी समाज में अपना स्टेटस बढ़ाने का शौक है । इसके लिए वे सदैव मि० शर्मा को उकसाती रहती हैं स्वयं भी पिछले रास्ते से इस काम में उनकी मदद करती रहती हैं । जब प्रो० शर्मा कुलपति बनने के लिए अपनी अयोग्यता प्रकट करते हैं तो वे कहती हैं —

“मैं तुम्हारे अंदर ज्ञान क्या भरूंगी पर तुम्हें ऐसा ज्ञानी सिद्ध करूंगी कि देखने वाले देखते ही रह जाएंगे । तुम अब सब कुछ मुझ पर छोड़ दो और जैसा मैं कहती हूँ वैसा करते चलो ।¹ पुरुषों के मनोविज्ञान को वे भली भाँति समझती हैं । नेताजी को प्रसन्न करने के लिए वे इसीलिए श्रीमती ललिता को भी घर बुला लेती हैं । जिससे नेताजी को कुछ नवीनता अनुभव हो । इतना सब कुछ करने के बाद भी अपने आत्मसम्मान को बरकरार रखती हैं । अपने आत्मसम्मान की ही खातिर वे मि० शर्मा को उनके कुलपति के पद से त्यागपत्र दिलवा देती हैं ।

उपन्यास के अन्य पात्र भी हमारे आस-पास के परिवेश से ही लिए हुए हैं ।

1— डॉ० भगवती शरण मिश्र : अथ मुख्यमंत्री कथा (पृष्ठ 5)

2— डॉ० भगवती शरण मिश्र : अथ मुख्यमंत्री कथा (पृष्ठ 19)

श्रीमती ललिता एक सामान्य घरेलू महिला हैं मुख्यमंत्री की माताजी पारम्परिक संस्कारों को मानने वाली महिला है । इसी प्रकार अन्य पात्र भी अपनी-अपनी विशेषताओं से युक्त हैं ।

सभी पात्रों का चरित्रांकन डॉ० मिश्र ने बहुत ही स्वामाविक रूप से किसी भी प्रकार की कृत्रिमता से विरत रहकर किया है । चरित्र चित्रण कभी संवादों द्वारा हुआ है तो कहीं स्पष्ट । चरित्र चित्रण का एक उदाहरण देखिए—

“अरे अरे यह क्या करते हो ?”

साधवी देवी ने अपने पैरों को खींचते हुए कहा, “अपने पिता के तो छुए नहीं, अब मेरे पैर क्यों छूते हो ?”

“मुख्यमंत्री एक चपरासी का पैर नहीं छुआ करता” मुख्यमंत्री जी ने छूटते ही जबाव दिया ।

“तो वह एक चपरासी की पत्नी के पैर कैसे छू रहा है” मुख्य मंत्री चुप उन्हें कोई जबाव नहीं सूझ रहा था । “मैं बताती हूँ, क्योंकि मैं वोट — बैंक हूँ । जहाँ पर वोट ही वोट हो उसे वोट—बैंक कहेंगे । अब मेरे पास रोज कोई चालीस पचास औरतें आती हैं । इसलिए मैं तुम्हारे लिए वोट बैंक बन गई । है न?१

संवाद एवं कथोपकथन किसी भी रचना को रोचक व गतिमान बनाते हैं पात्रों की मनः स्थिति को प्रकट करने के लिए, उनकी चरित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए, उनकी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिये तथा कथा के विकास में संवाद एवं कथोपकथन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इस उपन्यास के संवाद संक्षिप्त भी हैं तो विषय के अनुरूप बहुत लम्बे भी हैं । उदाहरण के लिये 22वें अंक के संवाद अत्यन्त संक्षिप्त हैं ।² लम्बे संवाद अपेक्षाकृत कम ही हैं पृ.128—129 पर लम्बे संवादों का उदाहरण देखा जा सकता है ।

1— डॉ० भगवतीशरण मिश्र : अथ मुख्यमंत्री कथा पृ०—145

2— वही पृष्ठ 318— 319

यथार्थवादी रचना होने के कारण संवादों में भी यथार्थता दृष्टि गोचर होती है। संवाद पात्रों के स्तर के अनुकूल है। मुख्यमंत्री के संवादों की भाषा जहाँ फूहड़ और असभ्य है वहीं विश्वविद्यालय के विद्वान प्रोफेसरों की भाषा शिष्ट है।

“मैं दोनों पर मुकदमा कर दूँगा, आप पर भी और परकाशक पर भी।”
मुख्यमंत्री क्रोध की मुद्रा में बोले।

“आपका केस नहीं चलेगा। सत्य – कथन को कौन रोकेगा? आप अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को बाधित नहीं कर सकते।”

“हिन्दी में बोलिये” मुख्यमंत्री का क्रोध बढ़ता जा रहा था।

“यह हिन्दी ही है।”

“होगी। पर यह हमारे ‘पले’ पड़ रही। मैंने कई बार कहा मुझसे बात करनी हो तो मेरी भाषा में कीजिये।” समाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण करने में संवाद पूर्णरूप से सहायक रहे हैं।

डॉ० मिश्र ने प्रत्यक्ष रूप से कुछ कहने के स्थान पर सारी बात संवाद एवं कथोपकाथनों के द्वारा पात्रों के मुख से ही कहलवाई है इसलिये अधिक प्रभावशाली है। संवादों में चुटीलापन एवं व्यंग्य भी देखने को मिलता है जो संवादों को रोचक बनाता है। अथ मुख्यमंत्री कथा का देशकाल वर्तमान समय का ही हैं आजकल राजनीति में जिस तरह भ्रष्टाचारिता एवं लाल फीताशाही का बोलबाला है उसका यथार्थ चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि मिश्र जीने स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है किन्तु इस उपन्यास को पढ़कर कोई भी साधारण पाठक यह आसानी से समझ सकता है कि इस उपन्यास में किस प्रदेश का तथा किस मुख्यमंत्री का चित्रण है।

वातावरण का चित्रण यथार्थवादी आधार भूमि पर किया है । 'राजनीति का अपराधीकरण जितना आपके शासन – काल में हुआ है उतना कभी नहीं हुआ । आपकी छत्रछाया में ही कितने गुंडों ओर अपराध – कर्मियों ने अपना स्वतन्त्र – न्यायालय तक खोल रखा है उसका हमें खूब पता है ' दीवार पर आपका फोटों लटका कर नीचे न्यायाधीश की अपनी कुर्सी सजाकर आपके कितने तथाकथित भक्त, लोगों पर कैसी कहर ढा रहे हैं , आपको नहीं पता ?'¹

इसी प्रकार के सामाजिक यथार्थ का एक और चित्र दृष्टव्य हैकहा तो यह जाता है कि पॉच लाख रुपये की राशि दिये बिना कोई कलक्टर बन ही नहीं सकता और एस0पी0 तथा सुपरिंटेंडिंग इन्जीनियर एवं चीफ इन्जीनियर के लिये तो छह लाख के नीचे से कुछ होना ही नहीं है । यह तो आरम्भिक दक्षिणा हुई । पद सम्भालने के बाद जैसा कहा, प्रति माह पूजा की डाली नहीं पहुंची तो उसका पत्ता कहने में भी समय नहीं लगता भले ही वह बैंकवर्ड से भी बैंकवर्ड हो । आपके मुख्यमन्त्री के यहाँ जाति ओर पैसा दोनों का बोलवाला है पर पैसा नम्बर एक पर है और जाति दूसरे नम्बर पर, किन्तु तुरा यह कि इस पैसा को भी बैंकवर्ड ही होना है । फॉवर्ड पैसा भी नहीं चलता इनके यहाँ ।² पात्रों के मानसिक वातावरण का चित्रण भी बहुत कुशलता के साथ हुआ है ।

इस उपन्यास की भाषा सरल, व्यावहारिक एवं, स्वाभाविक है । घटनाक्रम एवं वातावरण को समझने में भाषा पूर्ण रूपेण सहायक है । पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग होने से इसमें यथार्थता दिखाई देती है ' मुख्यमन्त्री की भाषा भोजपुरी है तो विश्वविद्यालय के शिक्षकों की भाषा अंग्रेजी के शब्दों से भरपूर भाषा है ।

‘हम त सोचले रहीं कि तोहरा के सिकछा मंतरी बना के हम एगो बड़ा आछा काम

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र

: अथ मुख्यमन्त्री कथा पृ० 254

2. वही पृ० 237

कईनीं । पर तोहरो बुधि पर हमरा अब तरस आवे लागल । सऊँसे रामायण हो गइल आ सीता केकर जोरुर बइत रह, आ घड़ी देख 1 दस मिनट के अन्द – अन्दर प्रोफेसर सरमा के नोटिफिकेसन ना आ गइल त तू एह कुरसी पर आ हम तोहरा जगह पर । “¹

विश्वविद्यालय के अध्यापकों में से प्रो० अग्निहोत्री की भाषा उनके स्तर के अनुकूल अंग्रेजी है । “आई एम नॉट गोइंग टूडू इट । इट इज यूसलेस टू क्राई इन वाइल्डरनेस । ” इफ एचीफ मिनिस्टर एण्ड फॉर दैट मैटर एन एडुकेशन मिनिस्टर इज अनुबुल टु अण्डर स्टैंड आवर लैंग्वेज, हाऊ कैन ही अप्रीशिएट आवर प्रब्लेम्स ?”² भाषा में मुहावरों के प्रयोग ने भाषा को अधिक रोचकता प्रदान की है ।

शैली की दृष्टि से उपन्यास में वर्णनात्मक, भावात्मक तथा व्यंग्यात्मक शैली देखने को मिलती है । वर्णनात्मक शैली का एक उदाहरण देखिए – “ बारह वर्षों का अन्तराल कुछ कम नहीं होता पर मुझे आज भी उनकी धवल ओर मोहक मूर्ति आँखों में रची – बसी लगती है । धवल ओर मोहक उस उम्र में भी जब वे साठ की सीमा – रेखा को छू रहे होंगे । गौर – वर्णी चेहरा कहीं से म्लान नहीं हुआ था । केश, काश के फूलों की तरह श्वेत होकर उनके चेहरे पर चोंदनी बिखेरते लगते थे ”³

यथार्थवादी कृति के लिये यह आवश्यक है कि उसकी भाषा एवं शैली यथार्थ को परोसने वाली हो इस रूप में ‘अथ मुख्यमन्त्री कथा’ की भाषा शैली का सम्बन्ध वास्तविक जीवन से है । समग्र रूप में हम कह सकते हैं कि भाषा शैली उत्कृष्ट, यथार्थपरक रोचक व प्रवाहपूर्ण है ।

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र

: अथ मुख्यमन्त्री कथा पृ० 193

2. वही पृ० 223

3. वही पृ० 5

मिश्र जी के उपन्यासों की यह विशेषता रही है कि ये उपन्यास केवल मनोरंजन के लिये नहीं लिखे गये हैं उनके प्रत्येक उपन्यास की रचना के पीछे एक न एक उत्कृष्ट लक्ष्य अवश्य छुपा हुआ होता है । 'अथ मुख्यमन्त्री कथा' उपन्यास की रचना का मुख्य उद्देश्य वर्तमान राजनीति व राजनेताओं के वास्तविक स्वरूप को उजागर करना है 'यह उपन्यास व्यक्ति को यह जीवन दर्शन भी प्रदान करता है कि कोई भी पद सम्मान से बढ़कर नहीं होता है । अयोग्य व्यक्ति किसी महत्वपूर्ण पद को उल्टे – सीधे तरीके अपनाकर प्राप्त तो कर सकता है किन्तु उसकी आत्मा उसको अन्दर ही अन्दर ऐसा करने से मना करती है । नेताओं के वास्तविक स्वरूप से पारिचित होकर जातिवाद की संकीर्ण दीवारों से उठकर जनता अपने लिये सही प्रतिनिधि चुने यही इस उपन्यास का सन्देश है ।

समग्रतः "अथ मुख्यमन्त्री कथा" एक उत्कृष्ट राजनीतिक उपन्यास है । इसमें वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के यथार्थ चित्र को जनता के सामने प्रस्तुत कर पाठकों को उनके चुने हुये प्रतिनिधियों के बारे में सोचने को विवश कर दिया गया है । युगीन सामाजिक यथार्थ से पीड़ित होकर ही मिश्र जी ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यासों की शीतल भूमि से निकलकर रेगिस्तानी तपती रेत जैसे राजनीतिक उपन्यास को लिखने के लिये बाध्य हुये ।

"निरन्तर क्षरित होते जा रहे राजनीतिक और समाजिक मूल्यों तथा जातिवाद के मृतप्राय दानको राजनीतिक कारणों से फिर सिर उठाते देख मेरी संवेदना अत्यधिक आहत हुई और मुझे यह पुस्तक लिखने को बाध्य होना पड़ा ।"

‘पावक’

कृष्ण भक्ति के श्रेष्ठतम आचार्य श्रीमद् बल्लभाचार्य के जीवन पर आधृत ‘पावक’ श्रेष्ठ उपन्यास है। आस्था और विश्वास जैसे नष्ट होते जा रहे मूल्यों की पुनः स्थापना का प्रयास इस कृति में किया गया है। अपने देश एवम् देशवासियों से इन्हें कितना लगाव था इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आचार्य ने तीन-तीन बार पूरे देश का भ्रमण कर राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया। यह एक ऐसे महापुरुष का जीवन वृत्तान्त है जो अपने आप में अनूठा था। वह महामानव था उसका जीवन भारत की वर्तमान पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है।

आज से प्रायः सवा पाँच सौ वर्ष पूर्व यवनों के आक्रमण की सूचना काशी में प्राप्त कर आन्ध्र प्रदेश के ब्राह्मण दम्पति दक्षिण की ओर निकल पड़ते हैं। मार्ग में पत्नी यलम्मागारु एक पुत्र को जन्म देती है। विधि का विधान, पुत्र प्राण शून्य था पिता लक्ष्मण भट्ट व माता दोनों पुत्र को संज्ञा शून्य जानकर उसे जंगल में छोड़ चले जाते हैं किन्तु माँ की ममता के कारण जब वे पुनः उसी स्थान पर लौट कर आते हैं तो उन्हें जीवित पुत्र मिलता है। बालक की जन्म कुण्डली बालक को प्रतिभावान सिद्ध करती है। विद्या प्राप्त करते समय से ही बालक बल्लभ की प्रतिभा लक्षित होने लगती है। 13 वर्ष तक गुरु माध्वानंद के आश्रम में रह कर बल्लभ ज्ञान प्राप्त करते हैं। ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त गुरु का आदेश प्राप्त कर बल्लभ काशी में सभी विद्वानों के समक्ष अभिभाषण देते हैं। उनकी बातों को सुनकर विभिन्न मतावलम्बियों की शंकाओं का समाधान होता है। सभी उनसे उनके द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत से प्रभावित होते हैं यहाँ तक कि उनके गुरु माध्वानंद भी सबके समक्ष उनको अपना गुरु स्वीकार करते हैं 13 वर्षीय बालक बल्लभ श्रीमद् बल्लभाचार्य बन जाता है। बल्लभ के आचार्य बनते ही कुछ दिनों बाद उनके पिता लक्ष्मण भट्ट का देहावसान हो गया।

आचार्य बनने के पश्चात् बल्लभाचार्य माता से भ्रमण की इच्छा प्रकट करते हैं और

उनका आशीर्वाद लेकर निकल पड़ते हैं पिता के गया श्राद्ध हेतु वे पुनः लौटते हैं विद्यानगर में शास्त्रार्थ होने का समाचार पाकर बल्लभाचार्य अपने पैतृक गाँव अग्रहार से विद्यानगर जाते हैं विद्यानगर जाने के क्रम में महाप्रभु बल्लभाचार्य विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर उपदेश देते हुए विद्यानगर पहुँचते हैं। प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी शंकर मतावलम्बियों को परास्त कर महाप्रभु शास्त्रार्थ में विजयी हो जाते हैं। इसके पश्चात् आचार्य अपनी प्रथम पृथ्वी परिक्रमा को पूर्ण करने में संलग्न हो जाते हैं इस यात्रा क्रम में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु से होती है दोनों एक-दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। परिक्रमा करते-करते आचार्य गिरिराज गोवर्धन आते हैं जहाँ एक रात स्वप्न में भगवान् कृष्ण उनको गिरिराज में स्थापित उनके विग्रह को प्रकट करके एक विशाल मन्दिर बनाने का आदेश देते हैं।

अपने आराध्य के आदेश को स्वीकार कर बल्लभाचार्य मुखाबिन्दु के स्थान पर खुदाई करवाकर सम्पूर्ण विग्रह को निकलवा लेते हैं। विग्रह कुछ दिन आचार्य की पर्णकुटी में रहता है। एक दिन भगवान् के आदेश पर एक व्यापारी घूरणमल खत्री एक लाख सिक्के लेकर गुरु के पास आता है और गुरु बल्लभाचार्य मन्दिर निर्माण का आदेश देते हैं इसी के साथ उपन्यास समाप्त होता है।

यद्यपि कथानक संक्षिप्त है किन्तु आध्यात्मिक चर्चा को अधिक महत्व देने के कारण उपन्यास का स्वरूप कुछ बढ़ा हो गया है। कथानक का विकास स्वाभाविक गति से हुआ है साधारण पाठक की दृष्टि से उपन्यास में रोचकता नहीं है किन्तु मिश्र जी के उपन्यास एक विशेष पाठक वर्ग के लिए लिखे जाते हैं और उस वर्ग के लिए इन उपन्यासों में रोचकता के साथ ज्ञानवर्धकता भी है। अध्यात्म जैसे शुष्क विषय को डॉ. मिश्र ने अत्यन्त ही सरल भाषा में प्रस्तुत किया है वैसे भी उपन्यासों के विषय के बारे में प्रेमचन्द कहते हैं — “अगर आपको इतिहास से प्रेम है, तो आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते हैं। अगर आपको दर्शन से रुचि है तो आप उपन्यासों में दर्शन का प्रयोग

कर सकते हैं।" प्रेमचन्द के इस कथन का प्रमाण हमें मिश्र जी के उपन्यास में देखने को मिलता है।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र बल्लभाचार्य जी हैं। जिनका चित्रण एक अत्यन्त मेधावी बालक एवम् योग्य एवम् विद्वान् आचार्य के रूप में हुआ है। उनकी विद्वता के समक्ष अच्छे-अच्छे विद्वान् पराजित हो जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ आचार्य के पद पर विभूषित होते हुए भी उनके अन्दर लेशमात्र भी अहम् भाव नहीं आता चैतन्य महापुरुष से मिलने पर वे अत्यन्त उदार भाव से उनसे कहते हैं - "बहुत समय से आपका यशोगान सुन रहा था। दर्शन की आकांक्षा दिनों-दिन बलवती होती जा रही थी। आज भगवान् जगन्नाथ की कृपा से मेरी मनोकांक्षा पूर्ण हुई।"

कृष्णोपासक होने के बावजूद श्रीमद् बल्लभाचार्य जी सभी देवों को पूज्य मानते। अयोध्या जाकर वे राम जी अर्चना करते हैं तो जगन्नाथपुरी में हनुमान की। उनके इस कृत्य पर जब प्रश्न उठाया जाता है तो वे कहते हैं - "श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं। परमेश्वर हैं। हनुमान् देवता हैं। स्वयं श्रीकृष्ण काली के भक्त हैं। अवश्य श्रीकृष्ण के अधीन सभी हैं पर इसका तात्पर्य यह कहाँ है कि बड़े के होने से छोटे से सम्बन्ध विच्छेद कर लें।"

दूसरे प्रमुख पात्र कृष्णदास हैं जिनका चित्रण एक आज्ञाकारी एवम् गुरु भक्त शिष्य के रूप में किया गया है।

तीसरे प्रमुख पात्र हैं आचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट व माता यलम्मागारु माता जहाँ पुत्र मोह से ग्रस्त है वहीं पिता पुत्र के भविष्य को ध्यान में रखते हुए उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। अन्य पात्रों में आचार्य के गुरु, चैतन्य महाप्रभु विद्यामूर्ति व अन्य अनेक शिष्य एवम् तत्कालीन विद्वान् सम्मिलित हैं। सभी पात्रों का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक रूप से किया गया है।

“पावक के संवाद कथा के विकास में सहायक होने के साथ-साथ पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने में भी सहायक है। पात्रों की मनः स्थिति को प्रकट करने में सम्वादों की योजना दर्शनीय है। जब लक्ष्मण भट्ट बल्लभ को त्रिदंडी स्वामी का शिष्य बनने पर विचार करते हैं और त्रिदंडी स्वामी के क्रोध की बात पत्नी को बताते हैं तो पिता का पुत्र पर विश्वास इन पंक्तियों में लक्षित होता है —

“परशुरामावतार तो अवश्य हैं पर जैसा तुम सोचती हो वैसा कुछ नहीं होगा।”

“अर्थात् ?”

“अर्थात् न मेरा सिर खुलने जा रहा है न बल्लभ का”

“क्यों ?”

“सब बल्लभ सम्भाल लेगा।” लक्ष्मण भट्ट आश्वस्त से बोले।

“पिता पुत्र के संरक्षण की आशा लगाया बैठा है। नहीं”

यलम्मागारु ने मुस्करा कर कहा।

“तुमने पुत्र ऐसा ही जना है” लक्ष्मण भट्ट भी मुस्कराये।”

संवाद कहीं-कहीं अत्यन्त संक्षिप्त है तो कहीं अत्यन्त विस्तृत है। उदाहरण के लिए (पृष्ठ 182) पर विद्या गुरु का संवाद 22 पंक्तियों में है।

विषय एवम् पात्रों के अनुकूल संवाद संस्कृतमय भी हैं।

उपन्यास की कथा आज से लगभग 500—525 वर्ष पूर्व की है, तत्कालीन देशकाल एवम् वातावरण का चित्रण उपन्यास में वर्णित है। यवनों के द्वारा मन्दिरों का विध्वंस किया जा रहा है। भारत की जनता विदेशियों के आक्रमण से बुरी तरह त्रस्त थी। “विभिन्न मतों के व्याप्त होने से ही देश की एकता और अखण्डता प्रभावित हो रही थी। यवनों द्वारा आर्यावर्त

की भूमि पददलित हो रही है और मन्दिरों—मठों का विध्वंस हो रहा है। विदेशी शासकों के अत्याचार और शोषण से सामान्य जन त्राहि—त्राहि कर रहे हैं और उनमें हताशा एवम् अवसाद का भाव भर गया है।¹ बल्लभाचार्य का यह कथन तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट चित्र अंकित करता है सामाजिक स्थिति अधिक सुदृढ़ नहीं थी समाज अनेक वर्गों में बंटा हुआ था तथा विभिन्न मतावलम्बी अपने—अपने सिद्धान्तों से जनता को भ्रमित किये हुए थे। इन आचार्यों में समय—समय पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ भी होते रहते थे। तथाकथित तांत्रिक भी अपने तंत्र—मंत्र से जनता को बेवकूफ बनाते रहते थे। किन्तु एक बात स्पष्ट होती है कि विभिन्न आचार्यों के प्रयासों के परिणामस्वरूप जनता में भक्ति भावना बड़ी सीमा में जाग्रत हो गयी थी।

तत्कालीन वातावरण का चित्रण लेखक ने बहुत कुशलता से किया है। आचार्य द्वारा देश भ्रमण का वर्णन करते समय उन्होंने पूरे देश का चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। प्राकृतिक वातावरण का यह चित्रण लेखक की काल्पनिक अभिव्यक्ति का सजीव प्रमाण है — “पूर्णिमा की रात्रि, आकाश में चांद क्षितिज को छोड़ शनैः—शनैः आसमान की ऊँचाईयाँ मापता जा रहा था। उसी अनुपात में जगन्नाथपुरी के सागर की लोल लहरें भी तरंगायित होती जा रही थीं। चंचल सागर लहरियाँ जैसे ऊपर उछल—उछल कर स्वर्ण थाल की तरह उदित चाँद को अपने क्रोड में लेने को आतुर थी। लहरों की चंचलता के साथ सागर गर्जन का मधुर स्वर मधुतर होता जा रहा था। जगन्नाथपुरी के पास सागर बहुत उद्दंड नहीं है। गर्जन—तर्जन तो मधुर है ही लहरें भी तट की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती हैं।”²

“पावक” की भाषा अत्यन्त परिमार्जित है भाषा संस्कृतनिष्ठ है। चूँकि उपन्यास की कथा एक संस्कृतज्ञ आचार्य की कथा है अतः उसमें संस्कृत शब्दों की प्रचुरता स्वाभाविक है।

1 डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पावक पृष्ठ 344
2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : पावक पृष्ठ 436

“पुस्तक एक संस्कृतज्ञ आचार्य के जीवन पर आधारित है अतः इसमें संस्कृत के संवादों, उक्तियों, श्लोकों को आने से एक सीमा तक ही रोका जा सकता है।”¹ संस्कृत युक्त भाषा का एक उदाहरण देखिये –

“धन्यवादार्हाः भवन्तः। (आप धन्यवाद योग्य हैं)

“कथम् ? (कैसे ?)

भवदिभ प्रदत्तमेदमस्थानं मम हेतु तर्हि”, (आपके द्वारा मुझे यह स्थान दिया गया इस हेतु)

“नेया मय कृपा” (यह कोई मेरी कृपा नहीं है)

“किमिदम् तर्हि ?” (तब यह क्या है)

“ममसदाशयतामात्रमेदम्” (यह मेरी मात्र सादाशयता है)²

भाषा को रोचक एवम् परिवर्तनशील बनाने के लिए कहीं-कहीं स्थानीय बोली का भी प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

“तात बहुत कुछ सुन रख्यौ हौं तुमारे मुख सौं।”

“कुछ तो कहौ।”

“भक्ति के सम्बन्ध में कहौ ? कृष्ण-भक्ति के सम्बन्ध में ?”

“कहौ । हमें सुन के हर्ष होयत। श्रीकृष्ण तो हमर कुल कौ परम आराध्य।”³

अध्यात्म सम्बन्धी ज्ञान को इतनी सरस भाषा में पाठकों के सम्मुख रख कर डॉ. मिश्र ने पुस्तक की सार्थकता को महत्व प्रदान किया है। भाषा अपने उद्देश्य में पूर्णरूपेण सफल हुई है शैली की दृष्टि से विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। परम्परागत रूप से उपन्यास रचना

1	डॉ० भगवतीशरण मिश्र	:	पावक पृष्ठ 13
2	डॉ० भगवतीशरण मिश्र	:	पावक पृष्ठ 376
3.	डॉ० भगवतीशरण मिश्र	:	पावक पृष्ठ 10C

का लेखक पक्षधर नहीं है अतः उन्होंने पारम्परिक धारणा कि उपन्यासकार को उपन्यास और पाठक के मध्य नहीं आना चाहिए के विपरीत मिश्र जी अपनी बात को पाठकों तक पहुँचाने के लिए तथा सम्भावित समस्या के समाधान के लिए स्पष्ट रूप से पाठकों से वार्तालाप करते हैं वैसे उनके उपन्यास में वर्णनात्मक शैली, उद्घरणात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली एवम् उपदेशात्मक शैली देखने को मिलती है।

उद्घरणात्मक शैली एक उदाहरण देखिये —

“इसी तथ्य को और स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया है कि जब जन्म—जन्म के पुण्यों का फल संचित होता है तब ही इस ग्रन्थ में रुचि जगती है —

“जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत”

इस महान ग्रन्थ की विशेषता यह है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ तो पृथक्, इससे किसी श्लोक मात्र के अर्धभाग या चतुर्थ भाग का ही नित्य पाठ किया जाये तो इससे परम गति की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है।

“श्लोकार्धं श्लोकपाठं वा नित्यं भगवतोद्भवम्।

पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम्।”¹

उपन्यास पर गम्भीर रूप से विचार करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में लेखक सफल रहा है तथा पुस्तक के अध्ययन के बाद पाठक भी अपने अन्दर एक उत्कर्ष अनुभव करता है यही इस उपन्यास की सफलता का प्रमाण है।

अग्नि पुरुष

“यह पुस्तक लेखक के 20 वर्षों के श्रम का प्रतिफल है। आचार्यों की श्रृंखला के अन्तिम आचार्य श्रीमदवल्लभाचार्य के जीवन को आधार बनाकर प्रस्तुत यह उपन्यास उनकी अद्भुत जीवन गाथा का एक प्रमाणिक दस्तावेज तो है ही इसके अतिरिक्त भी यह बहुत कुछ है।” इस बहुत कुछ में सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति, साहित्य, मानवीय मूल्यों की स्थापना, आध्यात्मिक इत्यादि समाहित है। यह पुस्तक ऐतिहासिक होने के साथ-साथ बहुत कुछ आध्यात्मिक भी है। “यह पूर्णतया ऐतिहासिक तो है ही आध्यात्मिक भी है। इतिहास और अध्यात्म दोनों शुष्क विषय हैं – सामान्य पाठक के लिए। इस बाधा को दूर करने के लिए इसे औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत किया गया है। भाषा शैली और विशेष औपन्यासिक शिल्पों का सहारा लेकर इसमें पठनीयता भरने का मैंने प्रचुर प्रयास किया है। अतः सामान्य पाठक भी इसे नीरस और दुरुह नहीं पायेंगे।”²

उपन्यास की मूल कथा के साथ ही लेखक ने अध्यात्म पर भी प्रकाश डाला है किन्तु वह अपने पाठकों की रोचकता को तीव्र ही करता है। वर्तमान में ऐसी कृतियाँ हमारी संस्कृति के लिए एक कवच हैं। इतिहास के पृष्ठों में समाये युग पुरुषों को अपने उपन्यास में दुगुनी सजीवता के साथ प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास डॉ. मिश्र ने किया है। “अग्निपुरुष” ऐसे ही एक युग पुरुष श्रीमदवल्लभाचार्य का जीवन वृत्तान्त है। जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है –

वल्लभाचार्य जी गोवर्धन में श्रीनाथ मन्दिर का निर्माण कृष्णदास की देखरेख में कराते हैं। आचार्य के गुरु त्रिदंडी स्वामी मध्वानंद भी वहाँ पधारते हैं। आचार्य आग्रहपूर्वक उनको

1. अग्निपुरुष के कवर पृष्ठ से उद्धृत।

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र

अग्निपुरुष पृष्ठ 7

मन्दिर के निर्माण के पूरा होने तक रोक लेते हैं। एक दिन वह शुभ समय भी आता है जब मन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण हो जाता है। आचार्य श्रीनाथ जी के विग्रह को मन्दिर में स्थापित करने की तिथि का निर्धारण करते हैं। इस अवसर पर देश के विभिन्न क्षेत्रों से अतिथियों को आमंत्रित किया जाता है एक बड़ा समारोह होता है और आचार्य की पर्णकुटी से उठाकर श्रीनाथ विग्रह को पूजापाठ के साथ मन्दिर में स्थापित कर दिया जाता है अपने द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय साधना पद्धति के प्रयोग की व्यवस्था कर आचार्य भक्ति प्रसार के लिए भारत भ्रमण की अनुमति के लिए जब माता यलम्मागारु के पास जाते हैं तो माता उनसे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने को कहती हैं तथा विवाह करने का वचन लेती हैं। वाराणसी जाकर आचार्य माता द्वारा पसन्द की गयी कन्या महालक्ष्मी से विवाह कर देते हैं। आचार्य को इनसे दो पुत्रों की प्राप्ति होती है गोपीनाथ एवम् विट्ठलनाथ।

दूसरी ओर श्रीनाथ मन्दिर के प्रमुख कीर्तनियां सूरदास जी एक दिन अतीत की स्मृतियों में खो जाते हैं उन्हें याद आती है कि जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वे मायामोह से ग्रस्त होते हैं। 12 वर्ष तक मथुरा में बल्लभाचार्य की प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब उन्हें आचार्य का शिष्यत्व प्राप्त नहीं होता तो वे गोकुल घाट पर आ जाते हैं जहाँ एक दिन संयोगवश उनकी भेंट आचार्य से होती है। आचार्य उन्हें श्रीकृष्ण के बाल लीला सम्बन्धित पदों को रचने की आज्ञा देते हैं और उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लेते हैं। तभी से सूरदास श्रीनाथ मन्दिर में सांय आरती के समय नित्य एक पद रचना कर गाते हैं।

बल्लभाचार्य जी को इसी मध्य भगवान स्वप्न में इस संसार को त्यागने का आदेश देते हैं किन्तु आचार्य इस समय श्रीमद्भागवत पर टीका लिखते हैं व्यस्त होने के कारण आदेश की अवहेलना कर देते हैं। पत्नी को इस स्वप्नादेश के विषय में जानकर दुःख होता है कुछ समयान्तराल के पश्चात् दूसरा फिर तीसरा स्वप्नादेश भी गुरु को प्राप्त होता है। तीसरे आदेश की अवहेलना उनके वश में नहीं थी। शरीर त्यागने से पूर्व वे माता यलम्मागारु एवम् पत्नी

से संन्यस्त होने की आज्ञा येन—केन—प्रकारेण प्राप्त करते हैं तथा कुछ दिन संन्यासी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् विक्रम सम्वत् 1587 की आषाढ़ शुक्ल तृतीया (1531 ईसवी) को मध्याह्न काल में वे काशी के हनुमान घाट पर गंगा में प्रवेश कर अपनी जीवनलीला समाप्त करते हैं। एक प्रकाश स्तम्भ गंगा में प्रकट होता है जो आकाश तक जाकर विलीन हो जाता है।

इस संक्षिप्त कथानक के मध्य में लेखक ने विट्ठलनाथ द्वारा बल्लभाचार्य के सभी ग्रन्थों का सूक्ष्म परिचय भी प्रस्तुत किया है जो लेखक की कुशलता का स्पष्ट प्रमाण है। गम्भीर विषयों को साथ लेकर बुने गये उपन्यास का ताना—बाना इतना आकर्षक है कि नीरसता का कहीं एहसास ही नहीं होता है। चूँकि कथानक ऐतिहासिक है अतः लेखक एक—एक तथ्य को ढूँढ निकालने में पर्याप्त श्रम किया है। ऐतिहासिक उपन्यासों की कठिनता को स्पष्ट करते हुए राहुल सांकृत्यायन जी कहते हैं। “ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उनके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है किन्तु उसने कुछ पदचिन्ह जरूर छोड़े हैं जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते इन पदचिन्हों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिए दुष्कर समझते हैं तो कौन कहता है आप जरूर इस पथ पर कदम रखें ? हम देखते हैं कम से कम हमारे देश में समर्थ कलाकार भी ऐसी गलती भी कर बैठते हैं और बिना तैयारी के कलम उठा लेते हैं।”

किन्तु डॉ. मिश्र ऐसे लेखक हैं जो साक्ष्यों को एकत्र करने के लिए न केवल ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं अपितु स्वयं सम्बन्धित स्थानों का भ्रमण करने के पश्चात् ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

उपन्यास के पात्रों में काल्पनिक पात्र नहीं हैं सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। बल्लभाचार्य जी प्रमुख पात्र हैं जिनका चित्रण एक श्रेष्ठ आचार्य एवम् कृष्ण भक्त के रूप में किया गया है। इसके अतिरिक्त वे एक श्रेष्ठ मानव भी हैं। एक मातृ भक्त, गुरु भक्त, आदर्श पति, योग्य ब्राह्मण, कुशल धर्म प्रचारक, परिश्रमी, ईमानदार, मृदुभाषी, तपोनिष्ठ व्यक्ति के रूप में उनका चित्रांकन हुआ है। आचार्य के विद्या गुरु स्वयं उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं – “आपकी कृति दिग्दिगन्त में फैल रही है। गिरिराज से आपके द्वारा श्रीकृष्ण विग्रह को बाहर करने और उससे सम्बन्धित महोत्सव की चर्चा काशी तक पहुँची। पूरनमल खत्री द्वारा श्रीकृष्ण के स्वप्नादेश पर मन्दिर निर्माण हेतु एक लक्ष मुद्रा देने की बात भी लोगों तक पहुँची और सभी आपको आचार्य के अतिरिक्त एक चमत्कारी पुरुष के रूप में देखने लगे हैं। विद्यानगर के नरेश के दरबार में सभी विद्वानों को पराजित कर आपकी विजय पताका फहराने की बात तो बहुत पहले ही काशी को पुलकित कर गयी थी काशी में कुछ एक शंकर मतावलम्बी जो आपके आलोचक थे, उनके भी मुँह सदा के लिए बंद हो गये।”

दूसरे प्रमुख पात्र आचार्य के शिष्य कृष्णदास हैं। जो पूर्णतया गुरु भक्ति के रंग में रंगे हैं। गुरु आज्ञा जिनके लिए ब्रह्माज्ञा है। इसके अतिरिक्त सूरदास, माता यलम्मागारू, पत्नी महालक्ष्मी, त्रिदंडी स्वामी, विठ्ठलनाथ इत्यादि भी महत्वपूर्ण पात्र हैं। इन सभी ऐतिहासिक पात्रों का चरित्रांकन लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति के बल पर किन्तु यथार्थ की भूमि पर किया है। आचार्य की पत्नी महालक्ष्मी आदर्श भारतीय नारी की छवि को साकार करती इन पंक्तियों को देखिये –

“पत्नी ने पुनः बाल-गोपाल के सामने सिर टेका और मंद स्वर में बोली –
“आपका यह परामर्श तो उचित है पर मुझे तो यह शिक्षा मिली है कि मेरे पति ही परमेश्वर हैं। आप ही मेरे आराध्य, आप ही मेरे सर्वस्व, आप ही मेरे मदनमोहन, आप ही मेरे गोपाल।”

जीवन के साधारण प्रसंगों के साथ डॉ. मिश्र ने चरित्रों का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक रूप से किया है। इसके लिए कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं संवादों के माध्यम से चरित्रांकन हुआ है।

“अग्निपुरुष” के संवाद अत्यन्त आकर्षक एवम् कथा प्रवाह बनाये रखने में सहायक हैं। कुछ स्थानों पर संवाद इतने भावपूर्ण हैं कि अपने रस में पाठक को भी सराबोर कर लेते हैं जब आचार्य अपनी पत्नी को तीसरे आदेश की बात बताते हैं तथा उनसे सन्यासी होने की आज्ञा चाहते हैं उस समय का दृश्य देखिये –

“तीसरा आदेश ? अर्थात् दूसरा आदेश भी आया था ? पत्नी ने विचित्र दृष्टि से महाप्रभु की ओर देखा। उसकी आँखों से अनियंत्रित अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

“....महाप्रभु चुप”

“क्यों ? आप मौन क्यों साध गये ? पत्नी सिसकियों के मध्य बोली।

“हाँ आया था।” महाप्रभु को स्वीकारना पड़ा।

“....आपने मुझसे छल किया । मुझे दूसरे स्वप्न की सूचना से वंचित रखा....।” पत्नी मूर्च्छित सी होने लगी।”

संवादों में विषयानुकूलता एवम् चरित्राभिव्यंजकता भी देखने को मिलती है। संवाद पात्रों की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करने में सहायक है ही साथ ही विषय के अनुकूल गम्भीरता भी उनमें विद्यमान है। माता यलम्मागारु जब अपने पौत्र विट्ठलनाथ से अपने पुत्र के सभी ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय जानने की इच्छा प्रकट करती हैं तब ग्रन्थों के परिचय को बताते समय विट्ठलनाथ और मातामही के संवादों का गांभीर्य देखते ही बनता है –

“आज महाप्रभु कृत चतुः श्लोकी से विट्ठलनाथ ने आरम्भ किया था और उसी के प्रथम श्लोक का अर्थ वह प्रस्तुत कर रहे थे।”

“दूसरे श्लोक में आचार्य श्री ने मुख्यतः इस बात पर जोर दिया है कि ईश्वर अपने भक्तों के सभी कार्य सम्पन्न कर देते हैं। वह सब कुछ करने में समर्थ हैं। अतः ऐसा समझ कर भक्तों को निश्चिन्त रहना चाहिए – “प्रभु सर्वसमर्थो हि। ततो निश्चिन्ततां व्रजेतः।”

विट्ठलनाथ ने दूसरे श्लोक के सम्बन्ध में कहा –

“यह तो भगवान के प्रण के अनुकूल ही है। यलम्मागारु ने कहा “किस प्रण के अनुकूल ?” विट्ठलनाथ ने जिज्ञासा की।

“भूल गये तुम कृष्ण की इस उक्ति को कि वे भक्तों के योगक्षेम का वहन स्वयं करते हैं – “योगं क्षेमं वहाम्यहम्।”¹

ऐतिहासिक उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण तथ्य देशकाल एवम् वातावरण है। अपनी कल्पना शक्ति से लेकर अतीत के समय को वर्तमान में ला उतारता है। “ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल का सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। वास्तव में इन उपन्यासों के लेखक की सफलता इस बात में निहित रहती है कि वे जहाँ तक हो अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करके तात्कालिक परिस्थितियों का बिम्ब ग्रहण करा दें।”²

इसमें उस युग का चित्रण है जब भारत में विदेशियों का शासन था। वलात् धर्म परिवर्तन कराये जा रहे थे। हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति आस्था धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी। धर्म के क्षेत्र में नये-नये मतों का प्रादुर्भाव हो चुका था ऐसे समय में बल्लभाचार्य भक्ति के पुष्टिमार्गीय स्वरूप को लाये जिसने सम्पूर्ण भारत को पुनः एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया।

वह समय तकनीक की दृष्टि से बहुत अधिक उन्नत नहीं था। यात्रा के लिए ऊँट, घोड़े

- | | | | |
|----|----------------------|---|---|
| 1. | डॉ. भगवती शरण मिश्र | : | अग्निपुरुष पृष्ठ 220 |
| 2. | डॉ. खेल चन्द्र आनन्द | : | महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य पृष्ठ 209 |

या पालकी ही साधन थे। इस प्रकार के वातावरण को स्पष्ट करने वाली पंक्तियाँ देखिये —

“...मैं दिन—रात यात्रा कर पहुँचा हूँ। मैं तो नहीं थका, पर तीव्र गति से दौड़ने के कारण मेरी ऊँटनी अवश्य थक गयी। मुझे तो और विलम्ब होता, किन्तु धन्यवाद है कृष्णदास जी का कि उन्होंने एक तीव्रगामी अश्व भेज दिया जिससे मैं शीघ्र आ सका। मेरी ऊँटनी तो अभी उधर ही है। उसके पीछे दो और ऊँटनियाँ भी हैं दान दक्षिणा के साथ।”¹

धर्माचार्यों का बाहुल्य उन दिनों था अपनी—अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उनमें आपस में शास्त्रार्थ भी हुआ करते थे तत्कालीन वातावरण का यथार्थ चित्रण हुआ है समस्त घटनायें एवम् पात्रों के क्रियाकलाप तत्कालीन देशकाल को स्पष्ट करते हैं।

अग्निपुत्र की भाषा पाठकों के मानस पटल पर अपना पूरा प्रभाव छोड़ती है। यद्यपि उसमें संस्कृत में भी संवाद आये हैं किन्तु उनका अनुवाद हिन्दी में किया गया है। संस्कृतज्ञ आचार्य के मुख से उनके अनुरूप संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है।

लेखक स्वयं इस बात को स्वीकारते हुए कहता है —

“पुस्तक एक संस्कृतज्ञ आचार्य के जीवन पर आधृत है अतः इसमें संस्कृत के संवादों, उक्तियों, श्लोकों को आने से एक सीमा तक ही रोक़ा जा सकता है। यत्र—तत्र संस्कृत उक्तियाँ, संवाद, श्लोक डालने पड़ेंगे किन्तु उनका हिन्दी अनुवाद भी पाठकों की सुविधा के लिए उपलब्ध करा दिया गया है। अतः संस्कृत के उपयोग के लिये भी किसी को नाक—भौं सिकोड़ने की आवश्यकता नहीं है।”² एक उदाहरण दृष्टव्य है —

“भवदीयानुकम्पया सम्भवमयम्।” (आपकी कृपा से ही यह सब सम्भव हुआ)

आचार्य — श्री नत मस्तक बोले। उनके विद्या गुरु ने तत्काल इसका प्रतिकार किया—

“मिथ्या वदन्ति भवन्तः। नेदम समुचितम्। मा किञ्चित् कृतं मया।”

-
1. डॉ. भगवती शरण मिश्र : अग्निपुरुष पृष्ठ 111
 2. डॉ. भगवती शरण मिश्र : अग्निपुरुष की भूमिका से पृष्ठ 13

भवदभयः पूर्वजन्म कृतानि फलानि इमानि।" (आप मिथ्या बोल रहे हैं। मेरे द्वारा कुछ भी तो नहीं किया गया है। यह सब आपके पूर्व जन्मों का फल है।)¹

शिल्प की दृष्टि से डॉ. मिश्र ने अपने उपन्यास को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया है। वे अपने उपन्यास में पाठकों के सम्मुख प्रत्यक्ष रूप से आ जाते हैं। अपने चिन्तन को अपनी विचारधारा को भी स्थान-स्थान पर उन्होंने प्रकट किया है। "कई अध्यायों के आरम्भ में मेरी व्यक्तिगत टिप्पणी आयी है जो मेरे चिन्तन को मुखर करती है और आगे आने वाले घटनाक्रम को भी इंगित करने में सक्षम है।"²

मिश्र जी के उपन्यास की यह तकनीक रोचकता में वृद्धि करती है तथा पाठक को कुछ अतिरिक्त देने का प्रयास भी है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है इस उपन्यास में ऐतिहासिकता से आध्यात्मिकता है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से दिशाहीन होती जा रही पीढ़ी के लिए यह कृति श्रेष्ठतम मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है तथा भारतीय संस्कृति के महत्व को भी स्थापित करती है।

"अपसंस्कृति के इस युग में जहाँ आयातित विदेशी मूल्यों ने समृद्ध भारतीय संस्कृति और परम्परा को आखेट बनाकर देश को विखण्डन के कगार पर खड़ा कर दिया है वहीं यह कृति उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना को समर्पित है। दिग्भ्रमित वर्तमान पीढ़ी को यह मानवता, एकता और अपनी समृद्ध परम्परा का सशक्त संदेश देने में अद्वितीय है।"³

प्राचीन भारतीय साहित्य का भी इसमें उल्लेख किया गया है जो समृद्ध भारतीय साहित्य को स्पष्ट करता है अत्यन्त प्राचीन कथानक को समेटे हुए भी यह कृति वर्तमान समय में अपने महत्व को भी सिद्ध करती है।

-
- | | | | |
|----|---------------------|---|-----------------------------------|
| 1. | डॉ. भगवती शरण मिश्र | : | अग्निपुरुष पृष्ठ 37 |
| 2. | डॉ. भगवती शरण मिश्र | : | अग्निपुरुष की भूमिका से पृष्ठ 13 |
| 3. | डॉ. भगवती शरण मिश्र | : | अग्निपुरुष के कवर पृष्ठ से उद्धृत |

षष्ठम् अध्याय

यथार्थवाद के नए प्रतिमान

(डॉ० भगवती शरण मिश्र की कृति 'का के लागू पांव'
एवं 'गोबिन्द गाथा' के विशेष संदर्भ में)

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि यथार्थवाद के नए प्रतिमान के रूप में हम रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक संदर्भ में ग्रहण करते हैं।

डॉ० भगवती शरण मिश्र के अधिकांश उपन्यासों जैसे पीतांबर, प्रथम पुरुष, पुरुषोत्तम, पवनपुत्र इत्यादि में यथार्थवाद को इन नवीन प्रतिमानों के साथ पाते हैं। इस अध्याय में हम उनके दो उपन्यासों 'का के लागू पांव' एवं 'गोबिन्द गाथा' के संदर्भ में ही यथार्थवाद के नए प्रतिमान स्पष्ट करेंगे।

डॉ० मिश्र की कृति का के लागू पांव अपने आप में तथा समूचे उपन्यास साहित्य में एक विशिष्ट कृति है। "यथार्थवादी संदर्भों के नए प्रतिमान के रूप में का के लागू पांव एक ऐतिहासिक रचना – खण्ड है। इस उपन्यास में विद्वान लेखक ने कथा के प्रवाह में वैश्विक शाश्वत एवं समकालीन समस्याओं को बड़ी बारीकी से रेखांकन किया है। राष्ट्रीय एकता प्रेम-सौहार्द्र एवं विश्वमानवता की प्रासंगिकता के संदर्भ में यह एक ऐसी कथाकृति है जो विश्वमानवता को स्वस्थ एवं उदात्त भावभूमि पर ले जाती है।" एक ऐतिहासिक उपन्यास होने के बावजूद यह कृति आज के युग की अनेक समस्याओं का निदान प्रस्तुत करती है। यह कृति अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को हमारे सम्मुख उजागर करती है। ऐतिहासिक कृति होने के कारण इसमें इतिहासात्मकता ही अधिक है। केवल कुछ प्राकृतिक चित्रों के वर्णन को छोड़कर कुछ भी काल्पनिक नहीं है। 'का के लागू पांव' की भूमिका में लेखक स्वयं कहता है— "ऐतिहासिक उपन्यास है यह, पर इसमें इतिहास अधिक बोलता है, उपन्यास कम यही कारण है कि इसका एक पात्र भी काल्पनिक नहीं चाहे उसका संबंध गुरु पुत्र से हो या पिता से नहीं प्रायः कुछ भी काल्पनिक नहीं है इस उपन्यास में सिवा उन स्थानों के जहाँ मेरा

1. सम्पादक डॉ० अजब सिंह पत्रिका : अभिनव भारती (पृष्ठ 350), शोध पत्रिका हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।

कथाकार प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में रमने से अपने आप को रोक नहीं पाया है।¹ उपन्यास का आरम्भ ही ऐतिहासिक नगर पाटलिपुत्र के वर्णन के साथ होता है तथा उपन्यासकार ने इस वर्णन में इस स्थान की सांस्कृतिक चेतना को भी दर्शाया है।

“पवित्र भागीरथी के पश्चिमी कूल पर अवस्थित पाटलिपुत्र नगर। श्रेष्ठियों की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से सज्जित धन-धान्य-पूर्ण एक धर्म परायण धरती, समृद्धि जहाँ कुण्डली मारकर विराजमान थी।

अनेक उथल-पुथल, उत्थान-पतन, उत्सव-महोत्सव देखे हैं इस पुरातन नगर ने। अनेक महापुरुषों धर्म-संस्थापकों धर्माधिकारियों, विद्वानों, चिंतकों के चरण रज से पवित्र हुए हैं यहाँ के राज पथ।² किसी भी स्थान का मात्र वर्णन करना नहीं अपितु उसकी सम्पूर्ण महत्ता के साथ वर्णन करना ही उपन्यासकार का उद्देश्य है। यथार्थ का एक पक्ष यह भी है कि स्थान का वर्णन तटस्थ भाव से नहीं अपितु उसके महत्व को समझते हुए किया जाय। कोई भी वर्णन प्रभावकारी तभी होता है जब पाठक के सम्मुख उसकी पूरी यथार्थता को स्पष्ट किया जाय।

ऐतिहासिक उपन्यासों को रचने का उद्देश्य लेखक का यही है कि हम अपनी संस्कृति से परिचित हों तथा अपने समृद्ध इतिहास को जानें। विख्यात ऐतिहासिक स्थल अयोध्या, श्री राम की जन्मभूमि की प्रमाणिकता को भी उन्होंने अपने उपन्यास में सिद्ध करने का प्रयास किया है नानकी देवी के माध्यम से उन्होंने अनेक पाठकों के मन में उठ रहे सवाल को उठाया तथा महाराज विक्रमादित्य द्वारा इस ऐतिहासिक स्थल की खोज की गई इस तथ्य को भी उजागर किया। डॉ० अजब सिंह भी यह मानते हैं कि इस विषय पर

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लांगू पांव (पृष्ठ-7)

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लांगू पांव (पृष्ठ-11)

उपन्यासकार ने बिना किसी पूर्वाग्रह के ईमानदारी से लेखनी चलाई है।

इस उपन्यास में डॉ० भगवती शरण मिश्र ने एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सत्य को ईमानदारी से रेखांकित किया है। रामजन्मभूमि की प्रामाणिकता के संदर्भ में विद्वानों एवं इतिहासकारों में मतभेद है। इसलिए उस पर ईमानदारी से लेखनी चलाना इतिहासकार, कथाकार एवं आलोचक की नगरिकता का धर्म होता है।¹

अपने समूचे परिवेश में यह ग्रन्थ यथार्थ के सांस्कृतिक व आध्यात्मिक परिदृश्य को अधिक स्पष्टता से चित्रित करता है। हमारी संस्कृति व हमारी परंपराओं में सदियों पुराने जो धार्मिक अंध विश्वास हैं उनके प्रति रचनाकार का क्रान्तिकारी विद्रोह दिखाई देता है। यह विद्रोह केवल ध्वंसात्मक नहीं है अपितु रचनात्मक है जो हमारी संस्कृति एवं हमारी विरासत को अधिक समृद्ध बनाने वाला है। जब किरपाल चंद वाराणसी में मृत्यु प्राप्त करने के लिये अनेक लोगों द्वारा मृत्यु की प्रतीक्षा वहाँ रहकर करने वाली बात गोबिन्द को बताते हैं तो उसके माध्यम से इस अंधविश्वास को समाप्त करने की बात कहते हुए वे इसे एक कायरतापूर्ण प्रयास बताते हैं।

“मृत्यु आने के पूर्व ही गंगा पर बैठकर उसका नाम जपना उसकी पदचापों पर कान लगाए रखना उसकी कायरतापूर्ण प्रतीक्षा ही तो है। मृत्यु तो जब आएगी तो आयेगी ही उसकी प्रतीक्षा में जीवन के बचे हुए क्षणों को भी क्यों बर्बाद किया जाय? जीवन का अधिक से अधिक सदुपयोग ही तो जीवन जीने की वास्तविकता है।”²

जीवन जीने की कला उसी को आती है जो अपने व्यक्तित्व में उदारवादी होता है।

संकीर्णता भौतिकता को प्रश्रय देती है जबकि उदारता आध्यात्म को। मिश्र जी ने अपनी कृति

1. सम्पादक डॉ० अजब सिंह : अभिनव भारती (पृष्ठ 350), शोध पत्रिका हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।
2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव, पृ० 294

में स्थान—स्थान पर भौतिकता से विमुख होकर अध्यात्म को महत्व देने की बात कही है। उनके अनुसार धर्म के होने से ही हमारा होना है और धर्म नहीं होने से हमारा होना नहीं है।

“जो तुमको और मुझको इस चराचर सृष्टि को धारण करता है। इसके अस्तित्व के, सुरक्षा के मूल में है। जिसके होने से हम सबका ‘होना’ है और जिसके ‘नहीं होने’ से हम सबका नहीं होना है वही धर्म है। यही इसका धारक तत्व है, यही इसके द्वारा समग्र सृष्टि की क्या इस सम्पूर्ण ब्रह्मांड को धारण करने की बात है।”¹

धर्म का अर्थ यह नहीं है कि बाहरी कर्मकाण्ड किये जाएं अपितु धर्म का अर्थ है कि आचार और व्यवहार को परिष्कृत किया जाय। परोपकार अर्थात्, दूसरे का उपकार जन सेवा, प्राणी मात्र की परिचर्या ही वास्तविक धर्म है। यही धर्म का सार तत्व है। मिश्र जी यथार्थवाद के समग्र रूप में मानववाद का भी समर्थन करते हैं। यथार्थवाद को हिन्दी साहित्य में 19 वीं सदी से अपनाया गया तथा कथा साहित्य में हमें इसके विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। जिसमें साहित्यकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से जीवन यथार्थ को समझने एवं पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है जिससे फलस्वरूप यथार्थ की अनेक दृष्टियाँ हमारे सम्मुख आईं। इन सभी के प्रभाव से हमारा समाज प्रभावित हुआ। विकास के इसी क्रम में आवश्यकता महसूस की जाने लगी एक ऐसे यथार्थ की जो जीवन का एक मात्र सत्य हो। एक ऐसा जीवन दर्शन जिसको स्वीकार करने के बाद मानव को जीवन की पूर्णता का आभास हो। इस रूप में यह कृति यथार्थवाद को प्रस्तुत करती है। यथार्थवाद का यह स्वरूप विश्व कल्याण की भावना रखता है इसके लिए आवश्यक है कि आध्यात्मिकता में विश्वास रखा जाय।

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : —का के लागू पांव (पृष्ठ—239)

“यथार्थ को वैश्विक स्तर पर संपूर्णता में रेखांकित करने के लिए हमें एक नया संदर्भ लेना है — जिसमें विश्वमानवता की कल्याणी चेतना का उत्स है और वह उत्स निश्चय ही मानव-जीवन एवं संस्कृति में श्रद्धा — आध्यात्मिकता के नाम से जानी जाती है। यही श्रद्धा — आध्यात्मिकता सामान्य जनों के गुणों और उनके संघर्षों से प्रेरणा एवं प्रकाश ग्रहण करती है। सामान्य जनों के अपार आध्यात्मिक और बौद्धिक क्षमता में यदि हमारा विश्वास है, हमारी आस्था है तो हम रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवादी चेतना जो सांस्कृतिक आध्यात्मिक चेतना से संपृक्त होकर विश्वमानवता की कल्याणी धारा को प्रवाहित करने में संबल प्रदान कर सकती है क्योंकि खंडित वैचारिकता विश्वमानवता का संदेश देने में असमर्थ होती है”¹ यह उपन्यास भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म के माध्यम से इसी सन्देश को प्रेषित करता है। इस प्रकार की कृतियाँ मनुष्य को एक नवीन दिशा एवं दृष्टि प्रदान करती है।

“इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व की महान कृतियों ने मनुष्य के दिमाग को गुलाम नहीं बनाया उन्हें नया उत्साह और नई प्रेरणाएँ ही दी हैं। क्योंकि महान कलाकार और उनकी कृतियाँ मूलतः क्रान्तिकारी होती हैं।”² इस कृति की विशेषता यह है कि क्रान्तिकारी होन के साथ-साथ रचनात्मक भी है।

यथार्थवाद के प्रतिमानों के रूप में विद्वानों ने जितने भी नाम दिये हैं। उनमें मानव जीवन के बाह्य यथार्थ या अंतर्मन के यथार्थ को ही अभिव्यक्ति मिली है। किन्तु आज यह अनुभव किया जाने लगा है कि इन सब से बढ़कर एक और यथार्थ है और सच्चे अर्थों में यही मानव जीवन को एक उज्ज्वल दिशा प्रदान करता है। यथार्थवाद का वास्तविक उद्देश्य प्रारम्भ से यही रहा है कि वह मानव जीवन को उसकी कमियों एवं बुराइयों से परिचित

1. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन पृ०-65
 2. शिवदान सिंह चौहान : साहित्य की समस्याएँ पृ०-38

कराकर उसकी पूर्णता को स्पष्ट करना रहा है । इस रूप में सांस्कृतिक व आध्यात्मिक सन्दर्भ में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है । मार्क्सवाद से प्रभावित समाजवादी यथार्थवाद अनेक अच्छाइयों को समाहित करते हुये भी अध्यात्म तत्व के अभाव में विफल हो गया ।

‘धर्म अफीम है न ? एक ऐसा नशा जो एक बार चढ़ातो उतरने का नाम ही न ले ? जिसकी दासता समय के साथ अपने शिकंजे कसती ही जाती है । किन्होंने कहा था ऐसा ? क्या बना उनका ? मिट गया धर्म धरती से कम से कम उनके यहाँ से ?

उनका क्या बना यह सबको विदित हैं । खण्ड – खण्ड हो गया उनका साम्राज्य – रेत की दीवार की तरह धराशायी । एक सौ साल भी नहीं रह सका धर्म – रहित राज्यों का वह आत्मघाती सम्मिश्रण । उनका ‘वाद’ जो कहने को समानता का द्योतक था किन्तु जो वस्तुतः भय और उत्पीड़न की बैसाखियों के सहारे टिका था अपना अर्थ खो बैठा । जो नया बनकर आया था उस शतक पूरा किये बिना ही पुराने को स्थान देना पड़ा । “ यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह पुराना और कुछ नहीं धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति है । भारतीय संस्कृति तो वैसे भी इतनी जीवन्त है कि हजारों वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त, आज भी इसमें विश्व का नेतृत्व करने की शक्ति है । इसका कारण है कि “दर्शन और धर्म भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता ।” अपने मूल स्वरूप में यह संस्कृति अध्यात्म को अपने में समेटे हैं ।

प्राचीन आर्य संस्कृति समस्त मानव संभावनाओं को मान्यता देती थी, पर

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : — का के लागू पांव पृ०-77

2. श्री अरविन्द : भारतीय संस्कृति के आधार पृ० 70

सभी को है ।

“इतिहास में ऐसे समय बार-बार आए हैं जब मनुष्य ने अपने परम्परागत विचारों, आस्थाओं और मूल्यों की परिचित दुनियाँ को उजड़ते देखा है और मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रश्न युग का जलता प्रश्न बन गया है । ऐसे युगों में वे मानव चेता साहित्यकार भी हुए हैं जिन्होंने अपनी महान कृतियों में तत्कालीन समाज जीवन के यथार्थ चित्र खींच कर नये मानव-मूल्यों का निर्माण किया।”¹ गुरु तेगबहादुर का जीवन ऐसे ही मानव मूल्यों की स्थापना करता है । कथाकार का उद्देश्य प्रायः यही रहा है कि वर्तमान युग में प्राचीन किन्तु जीवन्त मानव मूल्यों की स्थापना की जाय । प्रेम जैसे मानव मूल्य की महत्ता स्थापित करते हुए लेखक का कहना है —“विशुद्ध प्रेम मात्र प्रेम है । त्याग की ही एक मोहक प्रतिमूर्ति इसकी विशेषता इसकी पहचान इसका निष्कर्ष एक ही है कि वह केवल देना जानता है लेना उसकी प्रकृति में नहीं विशुद्ध प्रेम की एक और बड़ी विशेषता है — भेदभाव की दीवार इसने देखी ही नहीं । यह जाति, लिंग, धर्म सम्प्रदाय सबसे ऊपर है । उम्र भी इसमें कोई व्यवधान नहीं है।”² दया, भाईचारा, कर्तव्यपरायणता, करुणा, श्रद्धा आदि अन्य सभी मानवीय मूल्यों की स्थापना इस कृति में है । अखण्ड मानववाद का उदघोष करती हुई यह कृति सम्पूर्ण विश्व की श्रेष्ठ कृतियों में से एक है । वर्तमान समय में इस कृति का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि आज के युग की जो समस्याएँ हैं उनका निदान इस कृति में हमें स्पष्ट एवं प्रभावशाली रूप से मिलता है । “डॉ मिश्र ने मिथकीय संदर्भों के सैद्धान्तिक क्रम में एक नया अध्याय जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । पश्चिमी मिथकीय चेतना दैवीभाव से मानवीय भाव की यात्रा है कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि दैवी चेतना एवं पौराणिक संदर्भों

1. शिवदान सिंह चौहान : —आलोचना के मान (पृ० 29)

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव पृ०

आध्यात्मिक संभावनाओं को, यह सर्वोच्च स्थान प्रदान करती थी और अपनी चार वर्णों तथा चार आश्रमों की प्रणाली में उसने जीवन को एक के बाद एक आने वाले स्तरों के अनुसार क्रमबद्ध किया था।¹ 'का के लागू पांव' इसी आध्यात्मिक जीवन की एक झलक प्रस्तुत करता है। धर्म एवं अध्यात्म मनुष्य के जीवन का सत्य है। सत्य से विमुख रहकर व्यक्ति जी नहीं सकता। यह सत तत्त्व ही मनुष्य जीवन का सार है। 'धर्म बुद्धि और ज्ञान का भी पथ—प्रदर्शक है। धर्म—विहीन बुद्धि अपने सारे अर्जित ज्ञान को मानवता के कल्याण नहीं, उसके संहार में ही झोंक सकती है। अनेकानेक वैज्ञानिक उपलब्धियों का दुरुपयोग—मानव संहार के लिए उनका प्रयोग—धर्म को एक किनारे कर देने से ही हुआ है।.....धर्म पर्याप्त है मानव प्रेम का अपितु सृष्टि के सभी प्राणियों के प्रति स्नेह का, संवेदनशीलता का। इसीलिए किसी ने ईश्वर को ही प्रेम कहा और प्रेम को ही ईश्वर—गॉड इज लव, लव इज गॉड।'² डॉ० मिश्र की यह कृति यथार्थ को उसके आध्यात्मिक सांस्कृतिक संदर्भ में देखती है। रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद मानववाद को सर्वाधिक प्रश्रय प्रदान करता है। अपने मानववादी दृष्टिकोण में यह विश्वमानवतावाद का संदेश प्रदान करता है तथा एक ऐसी जीवन दृष्टि उपस्थित करता है जो समस्त सृष्टि के लिए कल्याणकारी हो। जिन मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण हम अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्यों से विमुख होकर दुःख एवं संताप से ग्रस्त हैं। उन्हीं मानव मूल्यों को अपने साहित्य के माध्यम से पुनर्स्थापित करना आज के साहित्यकार का परम उद्देश्य है। एन०सी०ई०आर०टी० के निदेशक जसवन्त सिंह राजपूत ने कहा कि "वर्तमान समय में शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य निरन्तर ह्रास होते जा रहे मानवीय मूल्यों की स्थापना करना है"³ इससे यह ज्ञात होता है कि मानवीय मूल्यों की चिन्ता आज

-
1. श्री अरविंद : भारतीय संस्कृति के आधार पृ० 89
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : — का के लागू पांव (पृ० 78).
 3. दिनांक 10.02.2002 को दूरदर्शन के राष्ट्रीय प्रसारण में "हम हाजिर हैं" कार्यक्रम के अन्तर्गत डॉ० राजपूत का वक्तव्य ।

को मानवीय एवं समकार्य । संदर्भों में रेखांकित करना पश्चिमी मिथकीय वैचारिकता का प्रतिपाद्य है । डॉ० मिश्र ने मिथकीय सैद्धान्तिक-चेतना को भारतीयता के रंग में रंगकर नया बना दिया है । मिथकीय संदर्भों में वैश्विक स्तर पर यह एक क्रांतिकारी एवं महत्वपूर्ण प्रयास है ।¹ अपने इस प्रयास में मिश्र जी बहुत सफल रहे हैं । जो भी कुछ प्राचीन है तथा ग्रहण करने योग्य है उसे एक नवीन रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । एक साध्वी ने अपने प्रवचन में कहा है कि “बीता हुआ कभी ज्ञान नहीं दे सकता क्योंकि समय के साथ-साथ मूल्य परिवर्तित हो जाते हैं । किताबों से पढ़कर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता ।”² किन्तु किताबों से ही व्यक्ति जीवन्त मूल्यों को ग्रहण करता है तथा अपने जीवन के उद्देश्य ग्रहण करता है । मिश्र जी कहते हैं – “जिनकी जीवनियाँ पढ़ने योग्य हैं, प्रेरणापूर्ण हैं उन्हें नहीं पढ़ना अपने को वंचित ही करना है पर आप जीवनी नहीं पढ़ना चाहते – उपन्यास पढ़ सकते हैं, विशेषकर नई पीढ़ी के लोग ।”³ का के लागू पांव उपन्यास में मानववादी दृष्टि को अपनाते हुए कथाकार ने रचना की है ।

“अब काहे का मुसलमान, कैसा हिन्दू ? बन्दे की कोई जाति होती है ? खुदाई खिदमत के अलावा और कोई मजहब होता है ? फकीर तो हूँ ही । मान लो मुसलमान ही हूँ तो क्या उसी कारण मेरे किये –कराये पर पानी फेरना चाहते हो ।”⁴ यह एक सन्त अथवा फकीर के जीवन का यथार्थ है उसकी कोई जाति नहीं होती वह केवल परमशक्ति का उपासक होता है तथा सभी मनुष्य उसके लिए समान है । प्रेम एक ऐसी शक्ति है जो समस्त प्राणियों को एक रचनासूत्र में बाँधती है । विश्वमानवता समस्त प्राणियों से प्रेम करके ही प्राप्त की जा सकती है । मनुष्य के लिए तो यह संजीवनी है ।

-
1. सम्पादक डॉ० अजय सिंह : अभिनव भारती पृ० 353 शोध पत्रिका हिन्दी विभाग, अ०मु०वि०
 2. दिनांक 10.02.2002 को सांय 5:45 मिनट पर आस्था चैनल आनन्दमूर्ति मां का प्रवचन ।
 3. डॉ० भगवती शरण मिश्र ‘का के लागू पांव की भूमिका से
 4. डॉ० भगवती शरण मिश्र ‘का के लागू पांव’ पृष्ठ -8

“पर प्रेम को मात्र प्रेम समझना भारी भूल होगी। यह संपूर्ण चराचर सृष्टि के मूल में हैं, इसका बीज ही नहीं इससे संघर्ष का उत्स भी। सृष्टि के निर्माण से लेकर उसके अनवरत विकास में निहित कारण अगर कुछ है तो वह प्रेम ही है। प्रेम प्राणों की संजीवनी है संपूर्ण जीव-जगत के प्राणों की, केवल मानव मात्र की नहीं”¹

प्रेम केवल एक भाव नहीं है बल्कि मनुष्य के जीवन का यथार्थ भी है। श्रद्धा में, भक्ति में, स्नेह में, वात्सल्य में सभी में प्रेम का कोई न कोई भाव छिपा रहता है।

यथार्थवादियों ने मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक प्रकार का प्रयत्न किया किन्तु मनुष्य भौतिक प्रगति तो करता गया पर सच्चे आनन्द की प्राप्ति उसे नहीं हो सकी इसका कारण यही था कि वह प्रेम के भाव को विस्मृत कर गया। रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद अध्यात्म के द्वारा पहले मनुष्य को स्व से प्रेम सिखाता उसके बाद अपने ही स्वरूप को अन्य सभी में परिवर्तित करता है इसी प्रकार हम विश्व कल्याण की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

डा० मिश्र की यह कृति जीवन की वास्तविकताओं के प्रति पूर्ण सजग है वैसे भी “युग के सत्यों से ही साहित्य अपने प्राण-रस को प्राप्त करता है। जीवन-प्रवाह से विरक्त साहित्य-चेतना जड़ बन जाती है। यह जड़ता की प्रतिमा कलागत विशिष्टता से सौंदर्य प्रदान नहीं कर सकती।”² यथार्थवादी रचनाकार का लक्ष्य ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना रहता है जिन्होंने जीवन की विषम परिस्थितियों में संघर्ष किया हो और सफलता प्राप्त की हो। मिश्र जी ने भी ऐसे कथानायक की सृष्टि की है जिसने युगीन आपदाओं का सामना पूरी बहादुरी से किया तथा भविष्य के युवाओं के लिए अनुकरणीय जीवन जिया। यथार्थ का रचनात्मक

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र पुस्तक ‘का के लागू पाँव’ पृ० 225

2. डॉ० रमाकान्त शर्मा : समाजोन्मुखी यथार्थवादी काव्य पृ० 49

और क्रांतिकारी स्वरूप मनुष्य को जीवन के समस्त दुःखों एवं पीड़ाओं से मुक्ति की प्रेरणा देता है।

धर्म मनुष्य के जीवन को एक संबल प्रदान करता है वह मनुष्य में आस्था और विश्वास के साथ सदाचार भी प्रदान करता है। अतः मनुष्य चाहे किसी भी धर्म को क्यों न मानता हो उसे धर्म का आदर करना चाहिए सभी धर्मों का मूल स्वरूप लगभग एक जैसा ही है और वह है सम भाव, सबसे प्रेम का भाव। सिख धर्म के माध्यम से गुरु तेग बहादुर ने इसी का प्रचार किया क्योंकि भारत के प्राचीन साहित्य व संस्कृति का मूल भी यही समभाव है।

“समदृष्टि और समत्व की यह भावना इस देश के लिए नई नहीं थी। गीता ने बहुत पहले ही “समत्वं योगमुच्यते” — समता ही वास्तविक योग है की उद्घोषणा कर दी थी। उपनिषदों ने सभी में एक ही तत्व की उपस्थिति को गीता के भी पूर्व स्पष्ट कर दिया था — ईशावास्यमिदं सर्व — — ।”¹

मुगल सरदार जब गुरु तेगबहादुर से इस्लाम को स्वीकार करने की बात कहता है तो गुरु सभी धर्मों के साथ अपने समान भाव को रखते हुए कहते हैं।

“मैं सभी धर्मों — मज़हबों की इज्जत करता हूँ। वे सभी परमेश्वर तक, खुदा तक, वाहे गुरु तक पहुँचने के रास्ते हैं मैं सभी के प्रति समान श्रद्धा रखता हूँ।”²

वास्तव में मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक चेतना की जागृति के लिए धर्म अत्यंत आवश्यक है।

“भारतीय विचार के अनुसार मनुष्य एक अध्यात्म सत्ता है जो शक्ति के कार्यों में छुपी

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव, पृ० 456
2. वही पृ० 476

हुई है? आत्म उपलब्धि की ओर बढ़ रही हैं और देवत्व को प्राप्त करने में समर्थ है।यहाँ तक कि अपनी सर्वोच्च सत्ता में वह इस अनिवर्चनीय परात्पर सत्ता से अभिन्न है जिससे वह प्रादुर्भूत हुआ था और उन देवताओं से भी महान है जिनकी वह पूजा करता है। मानवता के परमोच्च एवं असाधारण शिखर तक पहुँचने की आध्यात्मिक क्षमता उसके अंदर विद्यमान है और भारतीय संस्कृति उसके सामने जो प्रथम लक्ष्य रखती है वह यही है¹ 'का के लागू पांव' भारतीय संस्कृति का ही पक्षधर है। मनुष्यों में आध्यात्मिक व सांस्कृतिक चेतना का संचार करने के कारण वर्तमान समय की यथार्थवादी कृतियों में यह कृति अग्रगण्य है।

तीर्थ संस्कृति के माध्यम से समूचे भारत को एक सूत्र में बाँधकर भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। यह राष्ट्रीय एकता व समन्वयात्मक रूप को भी उजागर करता है। काशी, अयोध्या, प्रयाग गया इत्यादि तीर्थों की यात्रा के माध्यम से तीर्थ संस्कृति के महत्व को स्पष्ट किया गया है।

“देखो मंदिरों में एक विशेष प्रकार की ऊर्जा की, कहो, शक्ति की सृष्टि होती है। सैकड़ों वर्षों से वहाँ पूजा-प्रार्थना संपादित होते रहने से वहाँ स्वभावतः एक दैवी ऊर्जा व्याप्त हो जाती है, एक शक्ति-प्रवाह संचारित होने लगता है। जब मंदिर में जाकर तुम इस शक्ति के संपर्क में आते हैं। तो तुम्हारे अंदर-बाहर के दोष-पाप जल जाते हैं। तुम स्वच्छ निर्विकार हो जाते हो। अगर तुममें कोई दोष-पाप नहीं भी हो (.....) तब भी यह ऊर्जा, यह प्रवाह तुममें अधिक आध्यात्मिक, आत्मिक शक्ति तो भर देती है। इसी शक्ति के कारण तुम्हारा ध्यान मंदिर और मंदिर के बाहर आसानी से सधने लगता है”²

भाषा की समस्या, हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या धर्म परिवर्तन की समस्या इत्यादि

1 डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ० 122

2.. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव पृ० 229

समस्याओं को उपन्यासकार ने दूर करने का प्रयास किया है। इस रचना के महत्व को सिद्ध करते हुए डॉ० अजब सिंह जी लिखते हैं “.....हिन्दी के लिए ही नहीं यह रचना समस्त विश्व साहित्य के संदर्भों में भी अपना प्रतिद्वंदी नहीं छोड़ती। इस नवीन मौलिक उद्भावना के क्रम में ‘का के लागू पांव’ एक महत्वपूर्ण कृति है। हिन्दी साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य में भी ऐसी रचना दुर्लभ है। इस सुन्दर कृति में यथार्थवादी चेतना अपनी परिपूर्णता में अभिव्यंजित है। यथार्थवाद के व्यापक नूतन संदर्भों में यह कृति रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद की प्रतिनिधि रचना है और अपने क्षेत्र में अद्वितीय है।”

यथार्थवाद के सभी संदर्भों को यह कृति उनकी पूर्णता प्रकट करती है। इस रूप में यह मानववाद तीर्थसंस्कृति राष्ट्रीय एकता, आध्यात्मिकता आदि विचारों को अभिव्यक्ति देती है।

वर्तमान में हिन्दी के ही नहीं अपुति सम्पूर्ण विश्व के विद्वान एवं साहित्यकार यह मानने लगे हैं कि आध्यात्मिकता को ग्रहण करके, साहित्य एवं कला में उसका समावेश करके ही हम विश्व को उसके कल्याण का मार्ग दिखा सकते हैं।

“का के लागू पांव” के द्वारा डा० मिश्र ने यथार्थवाद के जिस अद्भुत स्वरूप को साहित्य जगत में प्रकट किया है वह अनुपम है तथा आगामी वर्षों में हिन्दी साहित्य इसी दिशा में अग्रसर होगा ऐसी सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

गोबिन्द गाथा का आलोचनात्मक विश्लेषण :

‘गोबिन्द गाथा’ डॉ० “भगवती शरण मिश्र” की दूसरी यथार्थवादी कृति है। “का के लागू पांव” का ही दूसरा अंश गोबिन्द गाथा है। किन्तु “का के लागू पांव” नींव है। नींव के बिना अट्टालिका

नहीं निर्मित होती। नींव जितनी ही अधिक गहरी और सशक्त होगी अट्टालिका उतनी ही ऊँची—गगनचुम्बी। अट्टालिका को जानने के लिए नींव से परिचय भी आवश्यक है।

यह है 'का के लागू पांव' की प्रासंगिता। यद्यपि जैसा कहा गया, वह गुरु के नौ वर्ष तक के जीवन को ही रूपायित करती है।¹ का के लागू पांव के ही समान यह कृति भी यथार्थवाद के भारतीय स्वरूप से ओतप्रोत है। भारतीय यथार्थवाद को हम भारतीय स्तर की रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही समझ सकते हैं। मुक्तिबोध कहते हैं —

“मनुष्य अपने से परे जा सकता है। वह जाता भी है, गया भी है और जायेगा भी इन विशिष्ट रचनाधर्मी की कविताओं के माध्यम से हमने एक जैसी चेतना के उन्मेष की ओर संकेत किया है जिसमें भारतीयता का स्वर मुखरित होता है। भारतीय चिंतन एवं संस्कृति की पहचान वस्तुतः आध्यात्मिकता की दुरुहता है जिसे हम सहज भाव से सरयू—जमुना एवं राम—कृष्ण की कथाओं में पाते हैं। संस्कृति को व्यापक फलक के रूप में भारतीय संस्कृति में ही लिया जाना चाहिए।”² भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता से ओत—प्रोत है। अध्यात्म तत्व से संयुक्त करके ही यथार्थवाद को हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्राप्त कर सकते हैं। आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद मानववाद को उसके समग्र रूप में स्वीकार करके विश्वमानवतावाद की स्थापना करता है। वस्तुतः आज की यथार्थवादी कला पूँजीवादी जीवन दर्शन से साम्यवादी—समाजवादी दर्शन की ओर संचरण है। यथार्थवाद संस्कृति के लिए आधार अवश्य प्रस्तुत करता है। संस्कृति स्वयं में एक ऐसा यथार्थ बन जाती है जिससे एक लेखक को जूझना चाहिए तभी यथार्थ कला का निर्माण कर सकता है। भारतीय संस्कृति यथार्थपरक संस्कृति है इस संस्कृति के जीवन्त मूल्यों की स्थापना “गोविन्द गाथा” में की गई है। पाठक के मन में तत्कालीन यथार्थ का चित्र उपस्थित कर यह एक

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोविन्द गाथा के आमुख से पृ० 5

2. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 19

विद्रोह एक क्रांति को हृदय में अंकुरित करती है जो विकास के लिए परिवर्तन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

“क्रांतिकारी लेखक व कलाकार अपने सृजनात्मक श्रम से जनता के जीवन में मौजूद साहित्यिक व कलात्मक कच्चे माल को विचार धारात्मक रूप में एक ऐसा कलासाहित्य बना देते हैं जो विशाल जनसमुदाय की सेवा करता है।”¹ डॉ० मिश्र ने गुरु गोविन्द सिंह के जीवन का जो चित्र इस कृति में उकेरा है वह समूचे विश्व समुदाय को उत्कृष्ट जीवन की प्रेरणा देता है। अपने पिता की निर्दयता पूर्वक हत्या किये जाने के बाद भी बिना विचलित हुए मात्र नौ वर्ष की अल्पायु में समूचे सिख संप्रदाय के समक्ष एक सहारे के रूप में गोविन्द राय उपस्थित हुए। उनके चरित्र की यह विशेषता कर्तव्य परायणता का संदेश प्रदान करती है। प्रेमचन्द ने भी एक स्थान पर कहा है कि “साहित्य मानव-चरित्र की कालिमाएँ नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएँ दिखाता है।”² डॉ० मिश्र ने गोविन्द सिंह के चरित्र के माध्यम से चरित्र की उज्ज्वलताओं का यथार्थ रूप में अंकित किया है। उनका चरित्र भारतीय विशेषताओं से परिपूर्ण हैं उसमें नव मानव जो मार्क्सवाद का आदर्श है तथा अतिमानव या महामानव जो यथार्थवाद के दर्शन करते हैं। “उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्बिचार से पाठक को मोहित कर ले।”³ वर्तमान में यथार्थवाद का नवीन संदर्भ भौतिक के साथ-साथ आत्मिक भी होता जा रहा है क्योंकि सत्य वही है जो सुन्दर व कल्याणकारी है इस रूप में भौतिक प्रगति न तो कल्याणकारी है न आनन्दमयी इसीलिए हम कह सकते हैं कि वह सत्य भी नहीं है। यथार्थवाद होने के लिए उसे अध्यात्म का समावेश करना ही होगा। गोविन्द सिंह वीरता और शौर्य के साथ अध्यात्म को भी महत्व देते थे।

“गुरु होने के कारण केवल शिकार और शस्त्रास्त्रों के संचालन से कार्य नहीं चलने को था।

-
1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : कला साहित्य और संस्कृति पृ० 62
 2. प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य पृ० 35
 3. वही पृ० 63

वीरता और शौर्य के साथ अध्यात्म और भक्ति को भी जोड़ना था। पर दोनों का महत्व समान था, गोविन्द राय को यह समझते देर न लगी। सैन्य शक्ति यदि धर्म की, संप्रदाय की रक्षा के लिए आवश्यक थी तो भक्ति भाव की आवश्यकता इस शक्ति में आत्मबल भरने के लिए थी।¹ अध्यात्म तत्व मनुष्य को हृदय से मुक्त बनाता है शारीरिक शक्तियाँ जहाँ मनुष्य को अहंकारी व क्रूर बनाती हैं वहीं आत्म शक्ति उसे दैवीय गुणों से मुक्त बनाती है।

वैशाखी जो एक मिलन-जुलन का त्यौहार है। वैसे तो सभी त्यौहार हमारी संस्कृति के प्रतीक होते हैं² किन्तु लेखक द्वारा सिखों के उमंग, उत्साह और आनन्द उल्लास के साक्षात् प्रतीक के रूप में वैशाखी का वर्णन है जो सांस्कृतिक चेतना को उजागर करता है। किसी भी साहित्यिक कृति में इस प्रकार के वर्णन संस्कृति के वाहक होते हैं। यथार्थवाद मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समर्थक है पश्चिमी यथार्थवाद मनुष्य के व्यक्तित्व का खंडित चित्र हमारे सम्मुख करता है। “शोषित, पीड़ित, मजदूर तथा किसान मानव की छवियों का अंकन पश्चिमी यथार्थवाद में मिल जाता है लेकिन अत्यंत मानव व विराट मानव की परिकल्पना पश्चिमी यथार्थवाद में नहीं मिलती हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान आध्यात्मिक दुरुहता ही है इसी आध्यात्मिक दुरुहता में सभी धर्मों के समभाव के कारण समन्वित चेतना का एक रूप सर्वात्म दर्शन की अपनी पहचान होती है।³ यह कृति लघु की नहीं अपितु महामानव की स्थापना करती है तथा ऐसे ही महामानव बनने के लिए नई पीढ़ी को प्रेरित करती है। भारतीयता को शरीर में आत्मा के समान सम्पूर्ण कृति में देखा जा सकता है। यथार्थ के सांस्कृतिक आध्यात्मिक संदर्भ की उद्घोषणा करते हुए एक स्थान पर कथाकार अपने विचार स्पष्ट करता हुआ कहता है —

“शरीर मन तथा आत्मा तीनों को आहार की आवश्यकता है। शरीर के आहार के प्रबन्ध के

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोविन्द गाथा पृ० 11
 2. वही पृ० 13 के आधार पर
 3. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 93

लिए तो सभी व्यग्र रहते ह, पशु पक्षी से लेकर दानव तक (यह तो जीवन का यथार्थ है) मन और आत्मा के आहार का प्रबंध केवल मनुष्य ही कर सकता है। इसीलिए उसके मन के मनोरंजन के लिए, आत्मा के उत्थान के लिए साहित्य-संगीत का भक्ति-भाव और साधना-उपासना का विकास किया। इसी क्रम में ग्रंथ भी रचे गए। उनके अध्ययन-मनन ने मन को सम्यक आहार प्रदान किया, आत्मा के विकास में भी सहयोगी सिद्ध हुए।¹ लेखक का यह विचार यथार्थ के साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्व को सिद्ध करता है। अपनी संस्कृति व साहित्य से अलग हटकर हम सच्चे यथार्थ का चित्रण अपनी कृति में नहीं कर सकते। संपूर्ण यथार्थ के लिए उसका सांस्कृतिक व आध्यात्मिक चेतना से युक्त होना आवश्यक है। अपनी संस्कृति से परिचित होने पर व्यक्ति में राष्ट्रप्रेम जाग्रत हो जाता है। समानता, प्रेम एवं भाईचारे का भाव उदित हो जाता है। “सिक्ख-पंथ तो सबके लिए सुलभ था। जाति-प्रांति का भेद ही इसमें कहां था? ऐसी स्थिति में उसके अनुयायियों में समाज के उपेक्षित, दलित और प्रताड़ित तथा शोषित व्यक्तियों की बहुलता थी तो वे क्या करते?”² यह पंथ सभी को स्वीकार करता था इसकी महानता तो इसी से स्पष्ट है कि यह अत्यन्त दलित, शोषितों को भी सहारा देता था। गुरु ने अपने पंथियों के लिए संस्कृत शिक्षा की जो व्यवस्था की उसका मूल उद्देश्य राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना था, “अपनी समृद्ध धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक सांस्कृतिक परंपरा से परिचित होने के कारण लोगों में राष्ट्रप्रेम की भावना और सांस्कृतिक परंपरा से परिचित होने के कारण लोगों में राष्ट्रप्रेम की भावना और उत्कृष्ट रूप से विकसित हुई। सबके अंदर राष्ट्रीयता कूट-2 कर भरी गई।”³

सिखों के गुरु तेगबहाबुर व गुरु गोबिन्द सिंह का जो समय है। उस समय सिखों व मुगलों में संघर्ष होता ही रहता था और दोनों ही एक दूसरे के शत्रु थे यह एक ऐतिहासिक सत्य है। इस

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोबिन्द गाथा, पृ० 24
 2. वही पृ० 28
 3. वही पृ० 29

कृति में इस ऐतिहासिक सत्य को पूरी सत्यता के साथ वर्णित किया गया है किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि फिर भी किसी भी स्थान पर ऐसा नहीं लगता कि सिक्ख मुसलमानों से घृणा करते हों। गुरु तेगबहादुर व गुरु गोबिन्द सिंह के वक्तव्य व क्रिया कलापों से हिन्दू व मुसलमान दोनों को एक समान समझने का भाव स्पष्ट होता है। गुरुओं को यदि घृणा थी तो अत्याचार से, धर्म परिवर्तन व सामाजिक कुरीतियों से। गुरु पत्नी सुन्दरी देवी आदि गुरु के संबंध में स्पष्ट करती हैं कि "उन्हें मुसलमानों से चिढ़ नहीं था। वे तो वाहे गुरु के बंदे थे। उनके लिए, सभी बराबर थे, कौन मुसलमान और कौन हिन्दू?"¹ धर्म के यथार्थ स्वरूप की उद्घोषणा करते हुए गोबिन्द राय कहते हैं "..... धर्म अंधविश्वास नहीं है और नहीं है यह असंख्य देवी देवताओं की पूजा अर्चना। एक अकाल पुरुष ही सबके ऊपर हैं सबका नियन्ता और सबका रक्षक। अकाल अर्थात् काल-रहित। न उसके आदि का पता है न उसके अंत का। सभी मनुष्य काल के अधीन हैं। काल उन्हें पल-पल मृत्यु के महाद्वार की ओर ले जा रहा है। सभी मरण धर्मी हैं, एक अकाल पुरुष को छोड़कर। सभी देवी-देवता भी उसी से शक्ति ग्रहण करता हैं वह शक्ति का एकमात्र स्रोत है। अतः सबकी उपासना छोड़कर केवल उसी की उपासना ही हमारे पंथ का संदेश है। वही सत् नाम है। उसके ऊपर कोई नहीं उसके अधीन सभी हैं।"² सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में एक ही शक्ति को स्वीकार कर उसी को सत्य माना है। मनुष्य भी इसी शक्ति का एक पुंज है जितना वह बाह्य जगत से ऊर्जा प्राप्त करता, जाता है उतना ही दैवीय गुणों से युक्त होता जाता है। कथाकार का मानना है कि ऊर्जा तो चतुर्दिक वातावरण में व्याप्त है मनुष्य इसका विकास नहीं करता अपितु इस ऊर्जा को ग्रहण कर वह अपनी चेतना का विकास करता है। इसी विकसित चेतना की आज आवश्यकता है। महर्षि अरविन्द ऐसी, ही विकसित चेतना वाले मनुष्य को महामानव व अतिमानव की संज्ञा प्रदान करते हैं।"³

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोबिन्द गाथा पृ० 49

2. वही पृ० 21

3. डॉ० भगवती शरण मिश्र स उनके दिल्ली स्थित निवास पर दिनांक 09.01.2002 को हुई भेंट वार्ता का अंश।

“आज संसार को अतिमानस एवं अखण्ड महायोग की साधना की महती आवश्यकता है। .
 यही समाजवादी-आध्यात्मिकता विश्व प्रेम एवं विश्व मानवता के कल्याण के लिए मानक
 वैचारिक रूप हैं।” मनुष्य की चेतना का पूर्ण विकसित स्वरूप ही विश्व प्रेम, विश्व शांति,
 विश्वमानवतावाद की स्थापना कर सकता है। इस उपन्यास के रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद की
 प्रतिनिधि रचना होने का एक बड़ा कारण यह है कि इसका नायक समाजवादी यथार्थवादी नायकों
 व आलोचनात्मक यथार्थवादी नायकों से भी श्रेष्ठ है इसकी श्रेष्ठता का कारण उसके चरित्र में
 सांस्कृतिक व आध्यात्मिक गुणों का होना है।

“एक अच्छे साहित्यकार के गुणों को व्याख्यायित करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि “ वह हमारा
 पथ प्रदर्शक होता है वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है हममें सद्भावों का संचार करता है हमारी
 दृष्टि को फैलाता है। इस मनोरथ को सिद्ध करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र
 धनात्मक हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकाएँ बल्कि उनको परास्त करें ; जो वासनाओं के पंजे
 में न फंसे बल्कि उनका नमन करें ; जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके
 विजय-नाद करते हुए निकलें। ऐसे ही चरित्रों का हमारे ऊपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है”²

एक अच्छे साहित्यकार के रूप में गुरु गोबिन्द सिंह गुरु तेगबहादुर, माता गूजरी देवी, सुंदरी
 देवी, किरपाल सिंह आदि पात्रों का चयन कर डॉ० मिश्र ने इसी उद्देश्य को स्पष्ट किया है।
 प्रेमचन्द ने प्रभावशाली पात्रों की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे विशेषताएँ हमें ‘का’ के लागू
 पांव’ व ‘गोबिन्द गाथा’ के नायकों में मिल जाती है। गुरु गोबिन्द सिंह के उत्कृष्ट व्यक्तित्व के विषय
 में लेखक ने प्रारम्भ में आमुख में कहा है कि —

“मैंने कहा गुरु का व्यक्तित्व बहुआयामी था। अधिकांश उन्हें एक पंथ नेता और अद्भुत योद्धा

-
1. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ० 36
 2. प्रेम चन्द : साहित्य का उद्देश्य पृ० 64

के रूप में ही जानते हैं उनके एक अतिविशिष्ट आयाम — उनकी साहित्यिकता, उनकी काव्यकला उनकी लेखन शक्ति, उनकी विद्वता से बहुत कम लोगों का ही परिचय हुआ।¹

गुरु गोबिन्द सिंह के चरित्र के आध्यात्मिक गुण को स्पष्ट करता हुआ एक अन्य पात्र कहता है —

“सिक्खों का एक सामान्य गढ़ है वह और वहाँ का गुरु, गुरु गोविन्द राय, जहाँ तक मेरी सूचना है। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक साहित्यिक कार्यों में अधिक रुचि लेता है।”² गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा रचित कृतियाँ भी उनके आध्यात्मिक व सांस्कृतिक स्वरूप को स्पष्ट करती हैं।

“सच्चे तथा महान यथार्थवाद का लक्ष्य समाज, जीवन तथा मनुष्य के जीवन के यत्र-तत्र बिखरे स्फुट अंशों को ही परखने और मूर्त करने का नहीं होता, वरन् उनकी दृष्टि इनके संपूर्ण रूप को उभारने की ओर होती रहती है।”³ ‘गोबिन्द गाथा’ गुरु गोबिन्द सिंह के चरित्र के संपूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत करती है। उनका चरित्र जीवनी शक्ति से संयुक्त है।

भारतीय संदर्भ में यथार्थवाद का रचनात्मक स्वरूप प्राचीन संस्कृति के चारित्रिक विकास के लिए आधार भूमि प्रदान करता है। गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए लेखक ने मनुष्य को कर्म प्रधान जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी है। कर्म के बिना भाग्य पंगु है। पेड़ पर लगा फल भाग्य है। वह वहीं पर सड़ जायेगा या धरती पर गिरकर किसी काम का नहीं रहेगा अगर हाथ बढ़ाकर उसे तोड़ नहीं लो। इतना तो तुम्हें करना ही पड़ेगा, इसी कर्म से विमुख होने से भाग्य भी विवश हो जाता है। कुछ नहीं दे पाता वह तुम्हें।”⁴ भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान तो रही है यह मानव को कर्म शील बनने, क्षण का उपयोग करने की प्रेरणा देती है। डॉ० मिश्र ने एक बार कहा

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोबिन्द गाथा पृ० 6
 2. वही पृ० 19
 3. डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ० 12
 4. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोबिन्द गाथा पृ० 42

था कि जो कुछ होता है वह एक सड़क पर स्थित मंजिलों की तरह है उस सड़क पर चलना मनुष्य का कर्म है बिना इस कर्म का किए उसे मंजिल प्राप्त नहीं होती।¹ किन्तु कर्म के साथ धर्म का होना भी आवश्यक है। सफलता प्राप्त करने के लिए सच्चे अर्थ में मानव बनने के लिए धार्मिक बनाना आवश्यक है।

“यह कहना व्यर्थ है कि कर्म ही सब कुछ है और धर्म की, जीवन में कोई आवश्यकता नहीं। यह सृष्टि केवल हमारे बल पर नहीं चल रही, न इसे गढ़ने में ही हमारा कोई हाथ है। एक सत्नाम, एक अकाल पुरुष, इस सबके मूल में है। वही सब कुछ है। उसकी इच्छा सर्वोपरि है।— आगे गुरु गोबिन्द अपने प्रवचन में कहते हैं”वह क्या संभव होता अगर हमने धर्म के साथ कर्म को भी नहीं साधा होता? सिखों को सफलता के राज का पता लग गया है। वह है धर्म और कर्म दोनों की आराधना। एक ही उपेक्षा भी घातक हो सकती है। अकाल—पुरुष हम पर किरपालु है।² आज का यथार्थ यही है धर्म और कर्म के समन्वय से ही मानव अपनी शक्तियों चाहे वे आत्मिक हों या बाह्य का विकास कर सकता है। मनुष्य के चरित्र का जो महत्वपूर्ण अंग है वह है रचनात्मकता क्योंकि रचनात्मक हृदय एवं मस्तिष्क ही मानव कल्याण के लिए नवीन मार्गों की खोज करता है। समाज के सभी वर्गों से आए हुए व्यक्तियों के मन में एक दूसरे से किसी प्रकार की हीन भावना न रहे ऐसा विचार कर गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना की। “ वहीं वह अमृत के माधुर्य के कारण जाति—पांति और संप्रदाय को भूलकर सभी के साथ मधुर व्यवहार करेगा। उसके लिए न कोई बड़ा होगा, न कोई छोटा। न कोई ऊँच, न कोई नीच। न कोई धनी न कोई दरिद्र। खालसा पंथ समानता के सिद्धान्त पर आधारित होगा। सम भाव इसका लक्ष्य होगा। आज से किसी सिख को न कोई अलग जाति होगी न संप्रदाय। अछूत, छूत, हिन्दू—मुस्लिमान सभी मात्र खालसा होंगे।³ इस रूप में यह कृति राष्ट्रीय एकता व विश्वप्रेम का संदेश प्रदान करती है। रचनाकार का

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र से दिनांक 14.04.2000 को उनके दिल्ली स्थित निवास पर हुई वार्ता का एक अंश
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोबिन्द गाथा पृ० 152
 3. वही पृ० 182

उद्देश्य केवल गुरु के ज्ञान यथार्थ को प्रस्तुत करना नहीं है अपितु समकालीन समस्याओं पर अपना वैचारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना भी है जिससे पाठक कुछ ग्रहण कर सकेलकीर के फकीर इसे पढ़कर सिर पीटने को स्वतंत्र हैं पर इस सबके माध्यम से मैंने कुछ देने का ही प्रयास किया है।¹ वर्तमान समय की राजनीति के विकृत होने का एक महत्वपूर्ण कारण धर्म का राजनीति में प्रवेश है। इस राजनीतिक यथार्थ को स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है “धर्मनीति जब राजनीति के समांतर चलने लगे तो उससे संबद्ध लोगों का दायित्व बढ़ जाता है। धर्म और राजनीति ऐसे दो विपरीत ध्रुव हैं। एक कमल तो दूसरा कीचड़।”²

जीवन विषयक एक और विचार दृष्टव्य है— “गति ही जीवन है और अगति मृत्यु, तो जीवित रहने के आकांक्षियों को गतिशील रहना ही पड़ेगा न, मार्ग में चाहे जितनी बाधाएँ आएँ और बाधाएँ तो आयेंगी ही वे इसीलिए बनी हैं। मनस्वियों की परीक्षा के लिए। पर मनस्वी है कि चलता जाता है उन विघ्न बाधाओं को पार करते हुए।”³ एक यथार्थवादी कृति का नायक इन्हीं विशेषताओं से युक्त होता है। संघर्ष ही मानव के चरित्र को आकर्षण व मजबूती प्रदान करता है। समाज के व्यक्तियों के अंदर की इसी भावना को बल प्रदान करना रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद का उद्देश्य है। जिसकी पूर्ति इस उपन्यास के माध्यम से हुई है। जब हम कला साहित्य के स्रोत की बात करते हैं तो उसमें प्राचीन साहित्य व कलाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते। यद्यपि कोई भी रचनाकार अपने वर्तमान से ही अधिक प्रभावित होता है, फिर भी अतीत से उसे ऐसी वस्तुओं को अवश्य ग्रहण करना चाहिए जो वर्तमान के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकें। “हमें साहित्यिक और कलात्मक विरासत की तमाम श्रेष्ठ चीजों को अपना लेना चाहिए, आलोचनात्मक रूप से उसकी तमाम लाभदायक चीजों को आत्मसात कर लेना चाहिए और जब हम अपने समय और अपने स्थान की जनता के जीवन में मौजूद

-
1. डॉ० भगवती शरण मिश्र की कृति ‘गोविन्द गाथा’ के आमुख से
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोविन्द गाथा पृ० 32
 3. वही पृ० 323

साहित्यिक और कलात्मक कच्चे माल से अपनी कृतियों का सृजन कर रहे हों, उस समय उसे एक उदाहरण के तौर पर इस्तेमाल करना चाहिए।¹ डॉ० मिश्र ने अपनी कृति में प्राचीन भारतीय संस्कृति के शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति की विशेषता बताते हुए एक पात्र के मुख से कथा कहलाया है।

“.....अरे, हमारे धर्म, हमारी संस्कृति ने मनुष्य—मनुष्य के मध्य अंतर माना ही कब ? हम तो वसुधैव कुटुंबकम् के आदर्श के कायल हैं। सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है, उसमें कौन बड़ा और कौन छोटा ? और जाति—पांति और छूत—अछूत की बात कर रहे हैं आप ? कब माना हमारे धर्माचारियों ने जन्म को जाति का आधार ? आपकी सम्माननीय धार्मिक पुस्तक गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है— चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः अर्थात् ये चारों वर्ण—ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र— हमारे द्वारा ही रचे गए हैं। पर जन्म के आधार पर नहीं कर्म और गुण के आधार पर।² उसी विश्व प्रेम एवं विश्व मानववाद की आज के समय में आवश्यकता है। जब हम विश्व प्रेम, विश्व शान्ति की बात करते हैं तो हमारे सम्मुख वर्तमान समय की वे विशेषताएँ आ जाती हैं जिससे समूची विश्वमानवता विनाश के कगार पर पहुँच गई है। 11 सितम्बर 2001 को न्यूयार्क में जो कुछ भी घटित हुआ उसने विश्व मानस के हृदय को झिंझोड़ कर रख दिया।³ उस घटना ने हमें यह सोचने पर विवश कर दिया कि इस प्रकार के विनाश से हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं तथा निरन्तर विकसित होती जा रही मानव सभ्यता का यह वीभत्स रूप क्यों उदित हुआ है। इन सब समस्याओं पर गहराई से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भूल कर भ्रम व अज्ञान के सहारे जी रहा है। धर्म एवं अध्यात्म मनुष्य के सम्मुख आदर्श लक्ष्य रखते हैं।

3. डॉ० शिवकुमार मिश्र : कला साहित्य और संस्कृति पृ 57

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोविन्द गाथा पृ 64

3. 11 सितम्बर, 2001 को न्यूयार्क में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की बहुमंजिली इमारत आतंकवादियों द्वारा ध्वस्त की गई।

भारतीय संस्कृति सदैव से ही परमतत्व की ओर उन्मुख होने एवं उसे प्राप्त करने पर ही बल देती रही है। आज समूचे विश्व को यह आभास हो गया है कि जिस भौतिकता के पीछे वे आँखें बन्दकर पड़े हैं उस भौतिकता ने उन्हें दुःख और संताप के अतिरिक्त कुछ प्रदान नहीं किया है। इस कष्ट से उबरने के लिए उपाय की तलाश में उनकी आँखें भारत की ओर लगी हुई हैं।

इसी प्रयास को एक सार्थक रूप प्रदान करने की श्रंखला में डॉ० भगवती शरण मिश्र ने 'गोविन्द गाथा' व 'का के लागू पांव' का निर्माण किया है। इन उपन्यासों के माध्यम से रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद को स्थापित करते हुए मानव जाति के एक श्रेष्ठ युग के आह्वान का प्रयास है। "साहित्यकार अर्थात् दूसरे प्रकार का साहित्यकार वर्तमान से अधिक दुनियाँ का कल्याण करना चाहता है।" डॉ० मिश्र भी ऐसे ही साहित्यकार हैं जो जनता के आनन्द के लिए नहीं अपितु उसके कल्याण के लिए लिखते हैं। इस प्रकार के साहित्य के विषय में बात करते हुए जैनेन्द्र लिखते हैं कि—

"इस प्रकार का साहित्यसमाज को शुरू में कुछ फीका, कठिन, गरिष्ठ, मालूम होता है, पर उसी को फिर वह औषधि के रूप में स्वीकार करता है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि मिश्र जी की ये कृतियाँ इसी औषधि का कार्य करती हैं।

केवल उपन्यास का विषय ही नहीं अपितु उसकी कलात्मकता में भी यथार्थवाद की रचनात्मकता एवं क्रान्तिकारिता स्पष्ट दिखाई देती है। डॉ० मिश्र का कथन है— "उपन्यास होते हुए भी यह कृति काल्पनिक अतिरंजना से रहित है। जो कुछ है वह यथार्थ के इर्द-गिर्द बुना गया है। ठीक उसी तरह जैसे असम के हस्तकरघों पर कभी अनेकानेक कोमल कमनीयकर रेशम के वस्त्र बुना करते थे, कुछ आज भी बुनते हैं।"¹

1. डॉ० जैनेन्द्र कुमार : साहित्य और संस्कृति पृ० 69

2. वही पृ० 69

3. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव पृ० 6

प्रख्यात आलोचक डॉ० अजब सिंह का भी कथन है कि—“.....यह रचना कलात्मक स्तर पर भी यथार्थवादी बिन्दुओं का व्याख्यायित करती है। यथार्थ के विन्यास में ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों, मनोवैज्ञानिकता, एवं समकालीन जीवनबोध की व्यापकता—कुल मिलाकर यह रचना सम्पूर्ण विश्वमानवता की वैचारिकता की सुन्दर मंजूषा है।”¹

बात उपन्यास के कलात्मक स्वरूप की हो या शैली की सर्वथा एक नूतनता का आभास होता है। यह कह सकते हैं कि यह परम्परा से हटकर रची गई एक कृति है। अपने शिल्प में बदलाव के लिए लेखक आलोचकों को इसकी सूचना देते हुए ‘का के लागू पांव’ की भूमिका में कहता है— “.....गंगा और सतलुज की धारा प्रतिक्षण नवीन होती रहती है तो औपन्यासिक शिल्प को भी अपने पुराने केंचुल से बाहर निकालना मेरी विवशता है। सपाट बयानी का मैं कायल नहीं। अगर अधिकांश अध्यायों का आरम्भ उनमें अन्तर्निहित कथा का सार चिन्तन—धाराओं के माध्यम से प्रस्तुत कर जाता है तो मैं इसके लिए अपने अनर्गल दर्शन को आप पर सौंपने का अपराधी नहीं हूँ।”²

“गोविन्द गाथा” की भूमिका में भी लेखक ने लिखा है कि— “सब कुछ यथार्थाधारित है। शैली, शिल्प अथवा प्रस्तुतीकरण की विधा लेखकीय है।”³

उपन्यास एवं कहानी कल्पना से परिपूर्ण होते हैं कभी कथा काल्पनिक होती है तो कभी पात्र काल्पनिक होते हैं किन्तु ‘का के लागू पांव’ एवं ‘गोविन्द गाथा’ में ऐसा नहीं है। इन दोनों उपन्यासों में एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है। यह समूचे कथा साहित्य जगत में एक अनूठी बात है। स्वयं डॉ० मिश्र कहते हैं— “.....उपन्यास होते हुए भी यह कृति काल्पनिक अतिरंजना से रहित है। जो कुछ है वह यथार्थ के इर्द-गिर्द ही बुना गया है।यही कारण है कि इसका एक पात्र भी काल्पनिक

-
1. सम्पादक डॉ० अजब सिंह : अभिनव भारती पृ० 354
 2. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव की भूमिका से
 3. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोविन्द गाथा की भूमिका से।

नहीं चाहे इसका सम्बन्ध गुरु पुत्र से हो या पिता से। कोई यह भ्रम नहीं पाले कि अर्द्ध विक्षिप्त पंडित शिवदत्त से लेकर पीर भीखन शाह अथवा राजा फतहचंद मैनी और मामा किरपालचन्द में से कोई भी लेखकीय कल्पना की उपज है।¹

वर्तमान समय परिवर्तन का समय है। वैज्ञानिक हो या दर्शन शास्त्री साहित्यकार हो या संतज्ञानी, राजनेता हो या समाजसुधारक सभी 21 वीं सदी को क्रान्तिकारी सदी मानते हैं तथा ऐसा मानने का कारण यह है कि प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। इसीलिए यथार्थवाद के स्वरूप में परिवर्तन भी वांछनीय है।

यथार्थवाद के संकीर्ण अर्थों में ग्रहण करना अनुचित है यथार्थवादी विचारधारा मनुष्य के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से ऐसी रचनाएँ करने की ओर प्रवृत्त हैं जिनसे हमारी सामाजिक चेतना प्रखर हो और हमारी सौन्दर्य बोध की प्रवृत्तियाँ भी सन्तुष्ट हों।²

डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने श्रीलाल शुक्ल को दिए अपने साक्षात्कार में कहा था कि—“वर्तमान समय में एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिकता का रंग भी आया है। आध्यात्मिकता की मृत्यु नहीं हुई और कविता के सहज स्वभाव में अध्यात्म आज भी विद्यमान है।”³

भारतीय परिवेश में व्याप्त इसी आध्यात्मिकता को जीवन्त रूप में आज के संदर्भों में “का के लागू पांव” एवं “गोबिन्द गाथा” में डॉ० मिश्र ने प्रस्तुत किया है। आध्यात्मिक—सांस्कृतिक यथार्थवाद आज के युग की आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति करती हुई उपरोक्त दोनों कृतियाँ हैं। डॉ० अजब सिंह जी कहते हैं कि—“कुल मिलाकर यह कृति यथार्थवाद के नए प्रतिमान का मानक रूप है।”⁴

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : का के लागू पांव की भूमिका से

2. डॉ० उदय भानु सिंह : आध्यात्मिकता पृ० 18

3. दिनांक 22.02.2001 को सायं 6:00 बजे लखनऊ दूरदर्शन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम में व्यक्त डॉ० विद्यानिवास मिश्र का विचार

4. डॉ० अजब सिंह : अभिनव भारती पृ० 357, शोध पत्रिका, हिन्दी विभाग अ०मु०वि०

सप्तम् अध्याय

तीर्थ-संस्कृति एवं अखण्ड मानववाद

- (क) तीर्थ संस्कृति, मानवी संस्कृति के संदर्भ में 'का के लागू पाँव' एवं 'गोबिन्द गाथा' का आलोचनात्मक अध्ययन।
- (ख) तीर्थ संस्कृति के द्वारा भौगोलिक आलोचना की शुरुआत।
- (ग) तीर्थ संस्कृति के द्वारा विश्वमानवतावाद का संदेश।
- (घ) विश्वमानवतावाद के घटक रूप में आध्यात्मवाद, अतिच्छन्दा, अमृताकला व प्रेमकला का वैशिष्ट्य
- (ङ) भारतीय भाषाओं के संदर्भ में संस्कृत एवं अरबी-फारसी के साथ-साथ हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन।
- (च) संस्कृत एवं अरबी के अध्ययन से ईश्वर तत्त्व-आध्यात्म तत्त्व के संस्पर्श से विश्वमानवतावाद का संदेश।
- (छ) पात्रों के चयन में काल्पनिकता का अभाव : एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है।
- (ज) आध्यात्मिकता ही विश्वमानवता का संदेश वाहक।

तीर्थ संस्कृति, मानवी संस्कृति के संदर्भ में “का के लागू पांव” एवं गोबिन्द गाथा का आलोचनात्मक अध्ययन :-

तीर्थ भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य ये तीर्थ करते हैं। अपने तीर्थ स्थानों के लिए भारतीयों के हृदय में अपार श्रद्धा है। तीर्थ संस्कृति मानवीयता को प्रोत्साहित करती है। हिन्दी विश्वकोष में तीर्थ की व्याख्या करते हुए कहा गया है “प्रत्येक मनुष्य को आत्मा की उन्नति के लिए तीर्थयात्रा करनी चाहिए। सारे शरीर को पानी में डुबाकर स्नान कर लेने से तीर्थस्नान नहीं होता यथार्थ तीर्थस्नानी वही है जिसने अपनी पाँचों इन्द्रियों को जीत लिया है तीर्थयात्रा का वास्तविक उद्देश्य चित्त की शुद्धि प्राप्त करना है।”

तीर्थ स्थानों का भ्रमण मनुष्य को चित्त की निकृष्ट अवस्था से मुक्ति दिलाता है। तीर्थ स्थानों पर जाने से मनुष्य की आत्मा को एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। संकीर्णता की परिधि से निकलकर वह सर्व के हित की चिन्ता करने लगता है। तीर्थ स्थान मनुष्य को मानवता से प्रेम करना सिखाते हैं। अधिकांश तीर्थ स्थानों पर यह देखने को मिलता है कि बिना किसी भेदभाव के लोग एक साथ धार्मिक अनुष्ठान में संलग्न रहते हैं उस समय किसी के हृदय में अमीर-गरीब अथवा छोटे-बड़े का भाव नहीं आता है। श्रद्धा, प्रेम, विश्वास जैसे मानवीय मूल्यों को प्रोत्साहित करते हुए ये तीर्थ मानवी संस्कृति का पक्ष लेते दिखाई देते हैं। डॉ. भगवती शरण ने अपने उपन्यास ‘का के लागू पांव’ एवं ‘गोबिन्द गाथा’ में तीर्थ संस्कृति का चित्रण कर इसी मानवी संस्कृति को प्रोत्साहित किया है। तीर्थ यात्रा

का प्रसंग कथाकार की कल्पना नहीं अपितु यथार्थ है। इस ऐतिहासिक सत्य को लेखक ने 'का के लागू पांव' की भूमिका में स्पष्ट किया है। अगर कोई यह समझे कि पाटलिपुत्र से आनन्दपुर की यात्रा को मैंने कल्पना के बल पर अनावश्यक रूप से लम्बा खींचा है तो जवाब उसे इतिहास पृष्ठों में ढूँढना चाहिये।¹

तीर्थों के प्रति मिश्र जी के आकर्षण का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि तीर्थ राष्ट्रीय एकता के वाहक होते हैं। इसके अतिरिक्त तीर्थ मनुष्य को अपनी दिव्य ऊर्जा से प्रभावित भी करते हैं।

“पुरातन ऋषि एवं आचार्यगण वातावरण के प्रचंड प्रभाव से भली भाँति परिचित थे। अतः इसके चमत्कारिक प्रभाव से जन-मानस को आवेशित करने के लिए उन्होंने तीर्थों की स्थापना की थी। ये सामान्यतया जन कोलाहल से दूर नदी या सरोवर के किनारे प्रकृति की सुरम्यता के बीच स्थित होते थे। साथ में सांस्कृतिक प्रेरणाओं से सम्पन्न व ऋषियों की तप-साधना द्वारा संस्कारित होते थे।²

इन स्थानों का भ्रमण करने से मनुष्य के अन्दर सुविचार उदय होते हैं इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर माता गूजरी देवी बालक गोविन्दराय को साथ में लेकर विभिन्न प्राचीन स्थलों पर गईं। सम्भवतः उनके हृदय में यह विचार था कि इन स्थानों का भ्रमण करने से बालक गोविन्द राय के विचार सुसंस्कृत होंगे। इन स्थानों पर रह रहे साधु-सन्तों के आशीर्वाद तथा विचारों से गोविन्द राय का कल्याण होगा। इतिहास साक्षी है कि तप एवं साधना के लिए अनेकों महापुरुषों ने हिमालय की दिव्य भूमि को चुना उसका एकमात्र कारण यहाँ व्याप्त आध्यात्मिक

1. डॉ. भगवती शरण मिश्र : 'का के लागू पांव' (पृ.8)

2. सम्पादक - डॉ. प्रणव पण्डया पत्रिका - अखण्ड ज्योति (पृ. 4.6)

ऊर्जा को अपने अन्दर समाहित करना था। यह आध्यात्मिक चेतना मनुष्य के अन्दर दैवीय भाव उत्पन्न करती है। अरविन्द जिस अतिमानस की बात करते हैं उस अतिमानस की प्राप्ति के लिए ही मनुष्य इन तीर्थ स्थानों की शरण लेता है।

वर्तमान समय में मनुष्य की संकीर्ण विचारधारा के कारण मानवता नष्ट प्राय होती जा रही है। इसीलिए नष्ट होती जा रही मानवता के साथ मानव भी दुःखी है। इस दुःख को दूर करने का एकमात्र उपाय मानवीय भावनाओं को जागृत करना है।

“अपनी साधना के द्वारा अरविन्द को यह दिखलाई पड़ा कि विकास की दो गतियाँ हैं। एक गति तो यह है कि नीचे के धरातल पर के जीव ऊपर उठने का प्रयास करते हैं। किन्तु, ऊपर के धरातल पर जो चित्त शक्ति है, वह भी नीचे आना चाहती है। अर्थात् परमात्मा की कृपा और मनुष्य के प्रयास इन दोनों के योग के बिना मनुष्य का विकास नहीं होता।¹ तीर्थ स्थानों में व्याप्त इस ऊपरी चित्त शक्ति को ग्रहण करने के लिए ही गोविन्द राय ने तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया।

भारत की प्राचीन नगरी वाराणसी की यात्रा के माध्यम से डॉ. मिश्र ने उस स्थान की विशेषताओं के साथ-साथ वहाँ से जुड़े अंधविश्वासों को भी उजागर किया है।

खालसा पंथ को मानने के बावजूद माता गूजरी देवी ने परिवार सहित हिन्दू तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया उसका एक कारण गोविन्द को भारतीय संस्कृति से परिचित कराना भी था। मन्दिर बहुत लम्बे समय तक संस्कृति के केन्द्र रहे हैं। कलाकारों ने अपनी सर्वोत्तम कृतियाँ वहाँ समर्पित की कवियों ने अपनी कवितायें और संगीतज्ञों ने अपने गीत पहले पहल मंदिरों में गाए, और उसके बाद वे बाहर

1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय (पृ. 626)

की दुनियाँ में आए।¹

तीर्थस्थान चाहे हिन्दुओं का हो, मुसलमानों का हो, ईसाइयों का हो या फिर सिक्खों का सभी मतावलम्बी जब वहाँ एक बार पहुँचते हैं तो उनके हृदय से जाति पॉति के सब भेद मिट जाते हैं। वृन्दावन की गलियों में हम अभी भी विदेशियों के साथ-साथ विभिन्न सम्प्रदायों के भारतीयों को कृष्ण भक्ति में समान भाव से लीन देख सकते हैं। तीर्थों का प्रभाव इतना अधिक मानस पटल पर पड़ता है कि वहाँ जाने मात्र से तथा कुछ समय व्यतीत करने से ही मन में परोपकार, करुणा, दया, अहिंसा, श्रद्धा समानता जैसे मानवीय भावों का उदय होता है। नानकी देवी जिस समय अयोध्या पहुँची उस समय का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है कि “नानकी देवी को इस नगर में आकर अद्भुत शान्ति का अनुभव हुआ एक अननुभूत अह्लाद और अकल्पित प्रसन्नता का”² तीर्थों के वातावरण के विषय में मिश्र जी अयोध्या के प्रसन्नतामय वातावरण का कारण एक पात्र के मुख से बतलाते हैं कि—

“प्रसन्नता इसके पूरे परिवेश में है। इसके वातावरण में व्याप्त है। जहाँ सदा प्रसन्न राग का जन्म हुआ हो, जो उनकी कर्मभूमि रही हो, जहाँ सहस्रों वर्षों से श्रद्धालु और तीर्थ-यात्री भक्ति — भावना से भरकर भजन-पूजन सम्पन्न करते रहे हों उसके कण-कण में तो प्रसन्नता का वास होगा ही।”³

इस प्रकार का विशेष एवं दिव्य वातावरण सभी प्राचीन धार्मिक तीर्थ-स्थानों पर पाया जाता है।

1. डा० राधाकृष्णन: धर्म और समाज पृ० 146

2. डा० भगवतीशरण मिश्र: का के लागू पांव' पृ० 303

3. डा० भगवतीशरण मिश्र: का के लागू पांव' पृ० 310

वाराणसी एवं अयोध्या का भ्रमण कर नानकी देवी का काफिला लखनऊ आया वहाँ उन्होंने प्राचीन हनुमान मंदिर के दर्शन किए जिसे मुसलमान नवाब ने बनवाया था। यह मंदिर व इसकी मान्यता हिंदुओं व मुसलमानों में समान रूप से है।

इस प्रकार के अनेक तीर्थ स्थल विश्व में हैं, जहाँ सर्वोच्च भाव मानवीयभाव का ही आश्रय है।

डॉ० अजब सिंह कहते हैं कि “कथा में तीर्थ-संस्कृति के नियोजन द्वारा प्रख्यात कथा-शिल्पी डॉ० भगवती शरण मिश्र ने राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक संस्कृति का सुन्दर चित्र इस कृति में खींचा है। काशी, प्रयाग, अयोध्या, पटना तथा गया के तीर्थयात्रा क्रम में उपन्यासकार ने भाषा की समस्या, राष्ट्रीय एकता की समस्या हिन्दू मुस्लिम एकता के समन्वय सूत्र को बड़ी बारीकी से रेखांकित किया है।”

गुरुतेगबहादुर ने, भी पंथ के प्रचार प्रसार के दौरान बंगाल एवं आसाम तक की यात्रा की उनकी यात्रा का एकमात्र उद्देश्य सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बँधना था।

गुरु गोबिन्द सिंह ने तो आनन्दपुर से अनेक मतानुयाइयों को वाराणसी भेजा जिससे अन्य लोग भी भारत की प्राचीन संस्कृति से परिचित हो सकें।

गुरु गोबिन्द सिंह के समय तक परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। स्वतंत्र रूप से घूम-घूम कर पंथ का प्रचार करने की अपेक्षा एक सुदृढ़ केन्द्र स्थापित करना आवश्यक था, जिससे विभिन्न स्थानों के लोग वहाँ आकर गुरु से मिल सकें व पंथ का प्रचार - प्रसार कर सकें इसलिए गोबिन्द सिंह ने आनन्दपुर की स्थापना की।

स्थान विशेष के महत्व से गोबिन्द सिंह अपरिचित नहीं थे उन्होंने साहित्य रचना के लिए पॉवटा को चुना। आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर पड़ता है। इसीलिए गुरु ने पॉवटा जाने का तथा वहीं रहकर साहित्य रचना का निर्णय लिया।

भारतीय संस्कृति तदैव से मानवी संस्कृति रही है यह नर में नारायण को मानने वाली संस्कृति है। यहाँ धर्म के अन्तर्गत केवल बाह्याडम्बर ही नहीं आते अपितु दया, दान, करुणा, क्षमा, परोपकार जैसे कर्तव्य भी आते हैं। गंगा की धारा के समान इसने अनेक संस्कृतियों को अपने में समाहित किया है किन्तु इसकी पवित्रता अभी भी विद्यमान है। भारत की इस प्राचीन संस्कृति की जड़े इन्हीं तीर्थ स्थानों पर जमी हुई हैं। विख्यात आलोचक डॉ० अजब सिंह देश की उन्नति के लिए प्राचीनता को आवश्यक मानते हुए कहते हैं।

“विश्व प्रेम सौहार्द एवं राष्ट्रीय अस्मिता की उन्नति के लिए हमें आधुनिकता बोध के साथ – साथ परम्परा बोध को भी आत्मसात् करना होगा। जब तक कोई भी देश अपनी जातीय अस्मिता, सांस्कृतिक विरासत के प्रति आस्था नहीं रखेगा वह देश उन्नति के शिखर पर पहुँच नहीं सकेगा।”

आज सम्पूर्ण विश्व भारत की ओर बड़ी आशा के साथ देख रहा है। भारत अपनी प्राचीनता को जब तक विश्व के मानस पटल पर नहीं रखेगा। तब तक भारत की महत्त्वपूर्ण संस्कृति तथा इसके महत्त्व को विश्व समुदाय नहीं समझेगा।

आज के युग की आवश्यकता है कि सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में समझा जाय तथा सम्पूर्ण विश्वमानवता के कल्याण के लिए सार्थक प्रयास किया

जाय। इस रूप में डॉ० भगवतीशरण मिश्र जी की कृतियों 'का के लागूं पांव' एवं 'गोबिन्द गाथा' सार्थक प्रयास है।

तीर्थ संस्कृति के द्वारा भौगोलिक आलोचना की शुरुआत :—

तीर्थ स्थानों का वर्णन करते समय डॉ० भगवतीशरण मिश्र ने उस स्थान की आलोचनात्मक परिस्थिति का वर्णन किया है। डॉ० मिश्र के स्थान वर्णन की यह विशेषता है कि उन्होंने उसके सम्पूर्ण परिवेश का चित्रण कर हिन्दी साहित्य में भौगोलिक आलोचना की शुरुआत की है। स्थानवर्णन तो हम अभी तक साहित्य में देखते आए हैं किन्तु स्थान विशेष के असुन्दर पक्ष की ओर कारण व सुझाव सहित दिशा निर्देश मिश्र जी के उपन्यास 'का के लागूं पांव' में देखा जा सकता है।

ऐसे तीर्थ स्थान जो नदी के किनारे स्थित है विशेषकर गंगा जी के किनारे उन स्थानों पर गंदगी के साम्राज्य को देखा जा सकता है वाराणसी में स्नानार्थ बने घाटों पर फूल, फल, पानी में सड़ती हुई लाशों को देखा जा सकता है।

“भक्तों द्वारा अर्पित फूल—पत्ते और मालाओं के दुकड़े आगे जाने का मार्ग नहीं पाकर यहीं आपस में गुत्थम—गुत्था हो रहे थे। इन्हीं के बीच स्नान पूर्ण करना था। फूल — पत्तों के सड़ने से तथा सैकड़ों लोगों द्वारा स्नान सम्पन्न करने से घाट का पानी पूरी तरह—प्रदूषित हो आया था। और उससे एक विचित्र बू भी आ रही थी।”

काशी में गंगा के किनारे मुर्दों को जलाने वाले प्रकरण की आलोचना करते हुए उसके वीभत्स पक्ष को लेखक ने उजागर किया है “तब यह कि उन लाशों के साथ बजनदार पत्थर बौंध दिये जाते हैं। और कोई छोटी—मोटी नौका किराये पर

ले इन्हें घाट से कुछ दूर ले जाकर गंगा के पेट के हवाले कर दिया जाता है किन्तु ये लाशें कुछ दिनों तक नदी के उदर में पड़ी रहती हैं। लाशों के फूल जाने से रस्सियों स्वयं टूट जाती है पत्थर नीचे पड़े रह जाते हैं और जल जीवों के द्वारा खाई — अधखाई लाशें जल की सतह पर आ वही रूप प्रकट करती हैं।¹

काशी में मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है इस प्रकार की मान्यता भारतीय जन समुदाय में बहुत समय पहले से ही रही है। मृत्यु पर्यन्त इस मोक्ष प्राप्ति की आशा में कई धनवान किराये पर कोठियाँ लेकर वहाँ निवास करते हैं। मृत्यु के लिए प्रतीक्षारत इन मनुष्यों की संख्या आज भी काशी में देखी जा सकती है। इस प्रकार के विश्वास का विरोध करते हुए गोबिन्द राय कहते हैं—

“----- मृत्यु आने के पूर्व ही गंगा तट पर बैठ उसका नाम जपना, उसकी पद-चापों पर कान लगाए रखना, उसकी कायरतापूर्ण प्रतीक्षा ही तो है। जीवन — संग्राम में पीठ दिखाने की बात । है कि नहीं ? मैंने इसे 'मृत्यु का असमय आह्वान कहा तो क्या गलत कहा ? मृत्यु तो जब आएगी तो आएगी ही । उसकी प्रतीक्षा में जीवन के बचे हुए क्षणों को भी क्यों बर्बाद किया जाय ? ”²

स्थान विशेष से सम्बन्धित अंधविश्वासों के प्रति लोगों को जागरूक करके वास्तविक तथ्य से परिचित कराकर सामाजिक कुरीति को दूर करने का प्रयास लेखक के द्वारा किया गया है। यह लेखक की सामाजिक कर्तव्यपरायणता का बोधक है।

अयोध्या का वर्णन करते समय लेखक ने एक ही वाक्य में स्थान विशेष से सम्बन्धित विशेषताओं को स्पष्ट किया है—

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र: का के लागू पांव' पृ० 292

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र: का के लागू पांव' पृ० 294

“----- दशरूपसी के पश्चात् इस मंडली की विश्राम - स्थली बनी यही पुनीत-पवित्र नगरी-पुनीत और पवित्र श्रद्धालुओं की दृष्टि में, अन्यो के लिए मात्र एक धर्म-सम्प्रदाय - विशेष के आडम्बर और अहंकार की प्रतीक, ध्वस्त, अर्द्धध्वस्त तथा प्राचीन और नवीन मंदिरों की रेत-पटी गलियों और ऊबड़ - खाबड़, कच्ची - पक्की सड़कों की अयोध्या।”¹

इस एक वाक्य में अयोध्या की प्राचीन विशेषता, नवीन वातावरण, भौगोलिक दशा सभी का चित्रण किया है।

रामजन्मभूमि की प्रामाणिकता को भी डॉ० मिश्र ने निष्पक्ष भाव से दर्शाया है।²

किसी भी स्थान का इतना विशद वर्णन वह भी उसके सुन्दर एवं असुन्दर सभी पक्षों के साथ हिन्दी साहित्य में कम ही देखने को मिलता है। इस प्रकार भौगोलिक आलोचना के क्षेत्र में ‘का के लागू पांव’ एवं ‘गोबिन्द गाथा’ एक नई शुरुआत हैं। लेखक के इस प्रयास से पाठकों की ज्ञानवृद्धि होने के साथ-साथ तीर्थ स्थानों के महत्वपूर्ण होने का भी पता चलता है।

लखनऊ के प्राचीन एवं प्रसिद्ध अलीगंज के हनुमान मंदिर में लटके हुए विभिन्न आकारों के घण्टों को देखकर गोबिन्द के मन में क्या प्रत्येक पाठक के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि इतने सारे घण्टे वहाँ क्यों लटकाए गए हैं? इस प्रश्न का समाधान लेखक ने भी पुजारी के मुख से करवा दिया है।³

भौगोलिक आलोचना करते समय कथाकार को बहुत सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता होती है जिससे कोई भी छोटा किन्तु महत्वपूर्ण तथ्य उसकी दृष्टि से बच न जाये।

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र: ‘का के लागू पांव’ पृ० 302

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र: ‘का के लागू पांव’ 310

3. डॉ० भगवती शरण मिश्र: ‘का के लागू पांव’ 322

फिर भले ही वे किसी स्थान से सम्बन्धित व्यक्ति हो, वातावरण हो, रीति-रिवाज हो या परम्पराएँ सब लेखक की दृष्टि में आ जाना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि लेखक ने इन स्थानों के चित्रण में इसी सूक्ष्म दृष्टि से कार्य किया है।

आलोचना के क्षेत्र में इन कृतियों के माध्यम से एक नए अध्याय का शुभारम्भ हुआ है। केवल तीर्थ स्थानों की ही आलोचना लेखक ने की हो ऐसा नहीं है। 'का के लागू पांव' में तो बहमपुत्र नदी का वर्णन लेखक ने दो तीन पृष्ठों में किया है किन्तु पाठक की रोचकता में इस विशद वर्णन से कोई कमी नहीं आती।¹

पाँवटा जैसे प्राकृतिक स्थल का चित्रण करते हुए लेखक कहता है — प्रकृति यहाँ अपने पूर्ण वैभव को संजोए प्रस्तुत थी। वनस्पति संकुल। वहीं पहाड़ियों पर प्रस्फुटित वन्य फूलों की गंध दिशाओं में व्याप्त। चतुर्दिक हरीतिमा का विस्तार मन को बौंध-बौंध लेता था। वनों में विचरण करते छोटे-बड़े वन्य जीवों की उछलकूद दर्शनीय थी इन्द्रधनुषी पंखों से सज्जित मयूरों के जोड़े मनोहारी लगते थे पार्श्व में प्रवाहित यमुना का कल-कल निनादी श्यामल-जल जैसे स्वागत — संगीत ही गुनगुना रहा हो। एक बार कालिन्दी के इस कूल पहुँच जाओ तो वहाँ से डोलने का जी नहीं करे।²

इस प्रकार के चित्रण में वातावरण का सौन्दर्य स्वयंमेव पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो आता है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में उपन्यास के माध्यम से भौगोलिक आलोचना की शुरुआत का श्रेय डॉ० भगवतीशरण मिश्र को जाता है। डॉ० मिश्र ने इस आलोचना

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र: 'का के लागू पांव' पृ० 50-51-52

2. डॉ० भगवती शरण मिश्र: 'गोविन्द गाथा' पृ० 77

का केन्द्र तीर्थ स्थानों को तथा तीर्थ संस्कृति को बनाया है। 'का के लागू पांव' में नानकी देवी की तीर्थ यात्रा के माध्यम से वाराणसी, अयोध्या, लखनऊ इत्यादि शहरों की भौगोलिक स्थिति का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार का चित्रण पाठकों को इन स्थानों की ओर आकर्षित करता है। तथा राष्ट्रीय एकता बढ़ाने में सहायक है। तीर्थ संस्कृति पाठकों को विश्वमानवतावाद का संदेश देती है।

तीर्थ संस्कृति के द्वारा विश्वमानवतावाद का संदेश :-

तीर्थ स्थानों का वातावरण अपने आप में एक अपूर्व दिव्यता लिए होता है इन स्थानों पर जाकर मनुष्य को शान्ति का आभास होने लगता है कुछ तीर्थ स्थान तो ऐसे हैं जहाँ जाते ही मनुष्य की बुद्धि सुसंस्कृत हो जाती है। भारत में सम्भवतः इसी कारण से तीर्थ स्थानों की यात्रा को बहुत महत्व दिया जाता है। भारतीय संस्कृति में तीर्थ स्थानों के महत्व के विषय में बताते हुए डॉ० भगवतीशरण मिश्र कहते हैं—

“----- वर्तमान समय में कुछ विशेष कारण हैं जिनके फलस्वरूप तीर्थों का महत्व बढ़ जाता है।—

1. तीर्थ— स्थान हमारी एकता एवं अखंडता को दृढ़ करते हैं। अधिकांश तीर्थ ऐसे हैं जहाँ पर ऊँच—नीच, अमीर—गरीब, छुआछूत जैसी संकीर्णताएं नष्ट हो जाती हैं। जैसे जगन्नाथपुरी में सभी मनुष्य चाहे वे किसी भी जाति या संप्रदाय के हों एक साथ जमीन पर बैठकर भोजन ग्रहण करते हैं। फिर सभी पत्तलों में बची जूठन का प्रसाद बनाया जाता है और सबको बँटा जाता है। कहने का अर्थ यह है कि

तीर्थ हमारी उदात्त भावनाओं को जाग्रत करते हैं।”¹

इस प्रकार के तीर्थ केवल मानवता के भाव को जाग्रत करते हैं कि हम मनुष्य हैं तथा मनुष्य की भलाई के लिए उसके कल्याण के लिए ही कार्य करने चाहिए इस प्रकार के भावों का उदात्त तीर्थ स्थानों में ही होता है। उसका कारण बताते हुए डॉ० मिश्र कहते हैं—

“तीर्थ स्थानों पर एक विशेष प्रकार की ऊर्जा होती है। आपने देखा होगा कि मंदिरों में ऊपर की ओर किसी भी प्रकार की खिड़की अथवा गबाक्ष नहीं होता। उनकी रचना इस प्रकार की होती है कि उनमें उत्पन्न ऊर्जा वहीं संचित होती जाती है। चूँकि प्रत्येक गर्म चीज हल्की होकर ऊपर उठती है, अतः ऊर्जा भी ऊपर उठकर बाहर न निकल जाए इसीलिए ऐसा विधान है।

इस आध्यात्मिक ऊर्जा को ग्रहण करने से व्यक्ति के मन का परिष्कार होता है एवं उसकी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक प्रगति होती है।”²

यह आध्यात्मिक ही उसे (व्यक्ति को) विश्वमानवतावाद की ओर प्रेरित करती है।

“तीर्थों का एक महत्व यह भी है कि वे जीवन की एकरसता व निरंतर दौड़-धूप से मुक्ति पाने के भी स्रोत हैं। प्राचीन समय में तो तीर्थ — स्थान ही पर्यटन का लक्ष्य हुआ करते थे। वर्तमान समय में यद्यपि पर्यटन का क्षेत्र विकसित हो चुका है, किन्तु मानसिक शान्ति के लिये, विचारों की पवित्रता के लिये तीर्थों को महत्व दिया जाता है।”³ विचारों की इस पवित्रता की आज के युग को महती आवश्यकता

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र से उनके निवास स्थान पर दिनांक 14/4/2000 को लिया गया साक्षात्कार
2. डॉ० भगवती शरण से दिनांक 14-04-2000 को साक्षात्कार।

है । जीवन की भाग – दौड़ में मनुष्य मानवता को भूलकर स्वार्थ संकीर्ण होता जा रहा है । आज के युग में माँग है कि मनुष्य भौतिकवाद से निकलकर अध्यात्म की ओर उन्मुख हो । गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त का अनुकरण आज के युग की आवश्यकता है ।

“भोग्य जगत् के फिसलते हुये नश्वर रूपों में जब मानव ने असत् मृत्यु और तमस का अनुभव किया और उन्हें अकाम्य पाया, तभी उसने उनके पीछे का स्वरूप माना । तब मानव जीवन का सार्थक लक्ष्य बना असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर और अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना । वैदिक ऋषियों ने इसी दिशा को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और कहा “असतो मासद्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय ।”¹ मनुष्य के असत् से सत् की ओर जाने की प्रेरणा तीर्थ स्थानों पर ग्रहण की जाने वाली आध्यात्मिक ऊर्जा से ही प्राप्त होती है । जीवन का लक्ष्य सत् की ही प्राप्ति है जब मनुष्य इस लक्ष्य से विमुख हो जाता है तब उसे दुःख उठाने पड़ते हैं ।

आज समस्त विश्व-संस्कृति एवं विश्व-मानवता सुख-शान्ति की तलाश में है लेकिन हम देखते हैं कि सारा संसार अशांत एवं कोलाहलमय स्थितियों से गुजर रहा है ।² ऐसी स्थिति में शान्ति की तलाश में मनुष्य भ्रमण करता है यह शान्ति उसे तीर्थ स्थानों में ही प्राप्त होती है । मनुष्य के लिए आवश्यक है कि न केवल अपने देश के अपितु सम्पूर्ण विश्व के प्राचीनतम तीर्थ स्थानों का भ्रमण करें इससे मानव जाति की एकता बढ़ने के साथ-साथ विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का आपसी

1. डॉ० भगवती शरण से दिनांक 14-04-2000 को साक्षात्कार ।

2. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ०-46

3. डॉ० अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, पृ०48

विरोध भी दूर होगा। निश्चित ही तीर्थ संस्कृति से मानव की आत्मा प्रभावित होगी तथा ऐसी परिष्कृत आत्मा ही विश्व मानवता, विश्व संस्कृति की पोषक होगी। तीर्थों की संस्कृति सामाजिकता की संस्कृति है यह भारतीय संस्कृति का आधार है। भारतीय संस्कृति की विशेषतायें जैसे – आध्यात्मिकता, समन्वय बुद्धि, वाह्य और आन्तरिक शुद्धि, अहिंसा, करुणा मैत्री और विनय, प्रकृति प्रेम, विश्व बन्धुत्व, समानता तथा सबसे महत्वपूर्ण विभिन्न संस्कृतियों का मिश्रण, तीर्थ स्थानों से ही जन्म लेते हैं।

तीर्थ स्थानों पर जाकर मनुष्य के अन्दर मात्र यही भाव शेष रह जाता है कि जैसे वह परमपिता की सन्तान है उसी प्रकार दूसरे सब मनुष्य एवं चर अचर प्राणी परमात्मा से ही उत्पन्न है उसमें और दूसरों में कोई भेद नहीं है अतः विश्व उसे एक परिवार के रूप में अनुभव होता है। यही तीर्थ यात्रा का उद्देश्य है कि मनुष्य व्यक्ति की परिधि से निकलकर समष्टि में लीन हो जाय।

इतिहास साक्षी है जितने भी महान साहित्यकार, कलाकार अथवा वैज्ञानिक हुए हैं उनके लिए देश, काल का कोई महत्व नहीं उन्होंने जिसका भी सृजन किया सम्पूर्ण मानवता के लिए और यही उनकी महानता है। 'का के लागू पाँव' में एक स्थान पर लखनऊ में स्थित अलीगंज के हनुमान मंदिर की स्थापना की कथा में यह ज्ञात होता है कि यह मन्दिर एक मुसलमान नवाब ने बनवाया था क्योंकि हनुमान जी ने उसकी पत्नी की प्रार्थना पर उसे स्वप्न में दर्शन दिये थे। इसी कथा को सुनकर नानकी देवी कहती है – "कहाँ तो हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के मजहब को लेकर कटते मरते रहते हैं, कहाँ हिन्दुओं के एक देवता का इतना विशाल मंदिर बनाकर

एक मुसलमान नवाब ने उसमें उन्हें स्थापित किया।¹

ऐसे स्थानों की यात्रा हिंदू और मुसलमान दोनों ही समुदाय के लोगों में पारस्परिक सौहार्द को बढ़ावा देती है।

“हिन्दू तीर्थ बद्रीनारायण से सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक, जगन्नाथपुरी से द्वारका तक यात्री को भारत-भूमि की चारों दिशाओं से परिचित करा देते हैं। मथुरा, माया, काशी, काँची आदि सप्त नोक्षदायक पुरियाँ भारत की प्रदक्षिणा करा देती हैं।²

इन तीर्थों के विभिन्न दिशाओं एवं क्षेत्रों में स्थापना का उद्देश्य मानवतावाद को बढ़ावा देना ही था।

विश्व मानवतावाद के घटक के रूप में अध्यात्मवाद, अतिच्छन्दा , अमृताकला व प्रेमकला वैशिष्ट्य :-

आध्यात्मिकता ही विश्वमानवतावाद को जन्म दे सकती है। आध्यात्मिकता के अभाव में विश्व का विनाश अवश्यम्भावी है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा — धर्महीन सभ्यता निरी पशुता का उज्ज्वल रूप है तथा उसका विनाश, उसी प्रकार अवश्यम्भावी है जैसे अतीत के अनेक साम्राज्य विनष्ट हुए हैं। उन्होंने कई बार यह चेतावनी दी कि आध्यात्मिकता को अनादृत करके यूरोप उस ज्वालामुखी के मुख पर बैठ गया है, जो किसी भी क्षण विस्फोट कर सकता है।³ अध्यात्म को कला, दर्शन व विज्ञान से भी उत्कृष्ट सिद्ध करते हुए स्वामी जी ने कहा — “जो सच्चे अर्थों में शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति है, उनके आनन्द का आधार विचार और कला होती है, दर्शन और विज्ञान होता है। किन्तु, आध्यात्मिकता तो और भी ऊँचे स्तर की चीज है अतएव, इस स्तर का आनंद भी अत्यंत सूक्ष्म और प्रचुर होता है।”⁴ इसी आध्यात्मिकता से

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : ‘का के लागू पांव’ पृ. 334
2. गुलाबराय : भारतीय संस्कृति, पृ. 24
3. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 596
4. वही, पृष्ठ 569

विश्वमानवतावाद का उदय होता है।

जब भी कलाकार की कृति अध्यात्म, अतिच्छन्दस व अमृता कला से युक्त होती है तो वह सम्पूर्ण विश्व के जन समुदाय के समक्ष मानवतावाद का उद्घोष करती है। आध्यात्मिकता मानवीय कल्याण की प्रक्रिया है।

“आज वैचारिक क्रान्ति का या परिवर्तन का वह क्षण आ गया है जब हम सम्पूर्ण विश्व की समाजवादी चेतना को आध्यात्मिकता से संदर्भित करके विश्वमानवता के कल्याण के लिए मानक रूप में उपस्थित कर सकते हैं, क्योंकि आध्यात्मिकता के संस्पर्श से जिसमें समाजवादी चिन्तन आज भी विश्वमानवता के लिये उपयोगी है मानवीय कल्याण की भावना निहित होती है।” मानवीय कल्याण के लिए ही कला को मानव के उत्कर्ष के परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है।

साहित्य भी एक प्रकार की साधना है और यह साधना है मानव के विकास की। वही साहित्य अमर होता है जिसमें मानव की पूर्णता लक्षित हो। ऐसे ही साहित्य की आज आवश्यकता है जो मनुष्य को अतिच्छन्दस की अवस्था तक पहुँचाए।

“जब तक हम जीवन में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवादी चेतना आध्यात्मिक दर्शन: अतिच्छन्दस को नहीं अपनाते तब तक हम किसी ऐसी वस्तु का निर्माण नहीं कर सकते जो चिरस्थायी है। हमें जीवन का पूर्वी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जो मानव-आत्मा की दिव्य सम्भावनाओं में तथा समस्त जीवन और अस्तित्व की एकता से श्रद्धा रखता है और जो मानवजाति की एकता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के विरोधी को सक्रिय रूप से मिटाने पर जोर देता है।”²

1. डॉ. अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, पृ. 34

2. वही पृ 49

विश्व मानवता की स्थापना के लिए साहित्य के आध्यात्मिक पक्ष को उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। यह आध्यात्मिकता ही विश्वमानवता के लिए एक आधार है। भौतिकवाद ने विश्व को संघर्ष, चिन्ता एवं दुःख के अतिरिक्त कुछ प्रदान नहीं किया आज की आवश्यकता जीवन के यथार्थ को पहचानकर उसकी स्थापना के द्वारा विश्वमानवतावाद को प्रसारित करना है। मनुष्य का दर्शन मनुष्य है। क्षितिज पर एक नये मानवतावाद का उदय हो चुका है। इस बार वह भेदभाव से ऊपर उठकर समग्र मानव जाति का आलिङ्गन करेगा।¹

भारतीय भाषाओं के संदर्भ में संस्कृत एवं अरबी-फारसी के साथ-साथ, हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन :-

भाषा मनुष्य की भावनाओं एवं विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। समस्त भारतीय भाषाओं के सह अस्तित्व की समस्या पर विचार करते हुए शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं - भाषाओं के सह-अस्तित्व का प्रश्न भाषा-विज्ञान की परिधि से बाहर का प्रश्न है। यह वस्तुतः एक सांस्कृतिक प्रश्न है।.... इन भाषाओं के सह-अस्तित्व की समस्या का हमें जनवादी समाधान खोजना पड़ेगा, ताकि उन्नत अनुन्नत छोटी-बड़ी सभी भाषायें बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के आरोपण या दवाब के स्वतन्त्रता और सुरक्षा के वातावरण में विकास कर सकें और भारतीय नागरिकों का हर छोटा या बड़ा, सांस्कृतिक दृष्टि से आगे बढ़ा हुआ या पिछड़ा हुआ समूह अपनी-अपनी मातृभाषा के माध्यम से अपना भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास कर सके।²

भारतीय संस्कृति को जीवन्त एवं वैविध्यपूर्ण बनाए रखने के लिए आवश्यक है

-
1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृ० 655
 2. शिवदान सिंह चौहान : आलोचना के मान, पृ० 92

कि भारत में बोली जाने वाली समस्त भारतीय भाषाओं को महत्व प्रदान किया जाय तथा उन भाषाओं में जो भी उत्तम साहित्य का निर्माण हुआ है उसको अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करके प्रोत्साहित किया जाय । भाषा के विकास पर ही हमारा भौतिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास निर्भर करता है ।

“निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय की सूल”

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

भाषाओं के सह-अस्तित्व पर गम्भीरता पूर्वक ध्यान नहीं दिये जाने के कारण भारत में भाषा की समस्या को लेकर समय-समय पर विवाद होते रहे हैं । संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा है । मुगलों के आगमन के साथ-साथ अरबी-फारसी का प्रवेश भी भारत में हुआ अंग्रेजों के सत्ता में आने पर उन्होंने अंग्रेजी के प्रसार पर बल दिया । इन विभिन्न परिस्थितियों के कारण भाषा के क्षेत्र में अनेक विरोधाभास उत्पन्न हो गए । इन विरोधाभासों की समाप्ति का एकमात्र उपाय है भाषाओं के सह-अस्तित्व पर विशेष बल ।

‘का के लागू पांव’ एवं “गोबिन्द गाथा” पर तत्कालीन समय में प्रचलित अरबी-फारसी, संस्कृत एवं हिन्दुस्तानी के सह-अस्तित्व पर प्रकाश डाला गया है । उस समय के समाज में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी तीनों ही अपने अस्तित्व में थी तथा तीनों का अपना-अपना महत्व भी था ।

संस्कृत भाषा में जो भी प्राचीन भारतीय साहित्य रचा गया वह अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का है ।

संस्कृत साहित्य से अधिक समृद्ध शायद ही कोई अन्य साहित्य हो । इस भाषा

में वेद, उपनिषद, महाभारत और उसी के अंग गीता तो हैं ही, कालिदास, भवभूति, भारवि और माघ के सदृश अत्यन्त कुशल कवि और नाटककार भी हैं। अब सचमुच लगता है जिसने कम से कम कालिदास को नहीं पढ़ा — उनके ऋतुसंहारम् रघुवंशम् और कुमारसंभवम् और सबसे ऊपर अभिज्ञानशाकुन्तलम् को — वह जीवन में बहुत कुछ से वंचित रह गया।¹ अपनी संस्कृति से परिचित होने का सबसे बड़ा माध्यम साहित्य ही है। मुक्तिबोध ने कहा भी है — “साहित्य के अन्दर सांस्कृतिक भाव होते हैं।”² इन सांस्कृतिक भावों को जानने के लिए साहित्य का अध्ययन आवश्यक है।

गुरु तेगबहादुर व गोबिन्द सिंह के समय अरबी—फारसी राज—काज की भाषा थी। गुरु पुत्र के लिए यह आवश्यक था कि उसे प्रशासनिक भाषा का ज्ञान हो क्योंकि एक धार्मिक गुरु होने के कारण उन्हें मुगलों के कोप का भी सामना करना पड़ता था। मुगलों के दरबारों से भी सम्बन्ध प्रायः रखना पड़ता था अतः तत्कालीन राजभाषा की जानकारी आवश्यक थी। अपने उपदेशों को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए गुरु—पुत्र को यह आवश्यक था कि वह संस्कृत के साथ अरबी—फारसी के अक्षरों का ज्ञान रखता हो। फारसी के तत्कालीन महत्व को स्पष्ट करते हुए गुरु तेगबहादुर कहते हैं —

“फारसी एक तरफ से अभी राजभाषा है। इससे अनभिज्ञ को समाज में आदर मिलना कठिन है। दूसरी बात यह थी कि शैरो—शायरी की भाषा भी यही है। पद—रचना इसमें आसान है अगर एक बार उसका सही और पूरा ज्ञान हो जाये।”³ एक श्रेष्ठ गुरु होने के नाते यह आवश्यक था कि राजभाषा का ज्ञान हो।

-
1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र : ‘का के लागू पांव’, पृ० 433
 2. गजानन माधव मुक्तिबोध — नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ० 78
 3. डॉ० भगवती शरण मिश्र : ‘का के लागू पांव’ पृ० 448

गुरु का कार्य लोगों का मार्गदर्शन करना होता है और इसके लिए जनभाषा या बोलचाल की भाषा का ज्ञान आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गुरु तेगबहादुर ने गुरु गोबिन्द सिंह को हिन्दुस्तानी भाषा के ज्ञान को दिलाने पर बल दिया। किरपाल चंद गुरु की इस इच्छा के विषय में ग्रंथी साहब को बताते हुए कहते हैं कि – “हम चाहते हैं कि आप जिस प्रकार की शुद्ध हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही कह लें, बोलते हैं उसे वह भी बोलने लगे, साथ ही संस्कृत की शिक्षा-दीक्षा उसकी इतनी पर्याप्त हो कि वह हमारे प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन-मनन करने में पारंगत हो जाए। गुरु तेगबहादुर की यह हार्दिक इच्छा है कि उनका पुत्र दोनों प्राचीन भाषाओं – संस्कृत और फारसी – में जहाँ तक सम्भव हो निष्णात हो जाय।”¹

उस समय देश में राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता थी और राष्ट्रीय एकता के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए यह आवश्यक था कि विभिन्न भाषाओं के माध्यम से उसे सभी वर्ग एवं समुदाय के लोगों तक पहुँचाया जाय।

इसी व्यापक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गुरु तेगबहादुर ने भारतीय भाषाओं के संदर्भ में संस्कृत एवं अरबी-फारसी के साथ-साथ हिन्दुस्तानी भाषा के अध्ययन पर बल दिया।

वर्तमान समय में भी भाषा के सम्बन्ध में यह विचार ग्राह्य है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी के विकास के साथ-साथ हम क्षेत्रीय भाषाओं का भी विकास करें तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अंग्रेजी को भी स्वीकार करें।

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : 'का के लागू पांव', पृ० 435

संस्कृत एवं अरबी के अध्ययन से ईश्वर तत्व—अध्यात्म तत्व के संस्पर्श से विश्व मानवतावाद का संदेश :—

विश्वमानवतावाद आज के युग की महती आवश्यकता है। वर्तमान की भीषण परिस्थितियों में इसकी आवश्यकता सर्वाधिक अनुभव की जा रही है।

डॉ. मिश्र ने अपने उपन्यास में दो प्राचीन भाषाओं संस्कृत व अरबी—फारसी के माध्यम से अध्यात्म तत्व के संस्पर्श से विश्वमानवतावाद का संदेश प्रसारित किया है। संस्कृत व अरबी के अध्ययन से गुरु ने यह देखा कि प्रायः सभी भाषाओं में धर्म से सम्बन्धित जो भी बातें कही गई हैं उनके मूल में मानवता ही है अतः उन्होंने इसी मानवता को बल प्रदान किया। संस्कृत साहित्य में से अध्यात्म के तत्व को लेकर उन्होंने अकाल—स्तुति की रचना की जिसमें कहा है — ओंकार से ही ब्रह्म की उत्पत्ति हुई । इस ब्रह्मा ने ओंकार का ही चिंतन किया। ओंकार से ही समय उत्पन्न हुआ, युग उत्पन्न हुआ। वेदों के निर्माण के मूल में भी ओंकार का हाथ है। ओंकार से सारे शब्द तर गए, सार्थक हो गए। गुरु— भक्त भी ओंकार से तरे। ओंकार अक्षर पर ठीक विचार करो, ओंकार ही तीनों भुवनों का सार है ।¹ इस ऊँ की महत्ता प्राचीन साहित्य में मिलती है यह सन्देश देता है कि समाज में किसी भी तरह का भेदभाव ईश्वर प्रदत्त नहीं है । सब कुछ एक ही तत्व से उद्भूत है अतः सम्पूर्ण विश्व एक है। गीता के एक श्लोक (उदारा : सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्वमैव में मतम्) के भाव को स्पष्ट करते हुए “अकाल स्तुति में गुरु ने लिखा है —

“शब्द के विहीन काल फांस के अधीन सदा

जुगुन के चउकरी फिरो है फिरतहैं।”²

1 डॉ० भगवती शरण मिश्र · गोविन्द गाथा, पृ. 87

2 डॉ० भगवती शरण मिश्र · गोविन्द गाथा, पृ. 88-89

अर्थात् —

मात्र ज्ञान तो अहंकारी भी प्राप्त कर सकता है ? ज्ञान का कोई अंत है ? और ज्ञान भी सर्व सुलभ है क्या ? सभी अध्ययन मनन कर ज्ञानवान बन जाएँगे ? और हैं सबको इतना अवकाश ? ऐसे में अकाल पुरुष की प्राप्ति में कौन तत्व सहायक हैं ? प्रेम से परमेश्वर, अकाल पुरुष सदा सुलभ है प्रेम सभी भावों में सर्वश्रेष्ठ है प्रेम से मनुष्य तो क्या परमात्मा तक की प्राप्ति की जा सकती है ।

इस प्रकार की रचनाओं से गुरु का उद्देश्य यही था कि जन-जन तक उस साहित्य को पहुँचाया जाय जो कठिन संस्कृत में उपलब्ध होने के कारण जन सामान्य की पहुँच से दूर है तथा इस साहित्य में उपलब्ध अध्यात्म के तत्व को जन समुदाय ग्रहण करे तथा अपनी चेतना का विकास करे । “..... उनकी रचनाओं में उनकी अनुपम कल्पनाशीलता और आकर्षक काव्यात्मकता के साथ, उनके अध्यात्म-आधारित होने के कारण एक रहस्यात्मक अन्तर प्रवाह के दर्शन भी होते हैं । अपने अनुयाइयों में ओजस्विता का संचार करने के अतिरिक्त गुरु की रचनाधार्मिता का एक प्रमुख लक्ष्य समाज के समक्ष पंथ के दैवी सिद्धान्त को प्रकट करना तथा गुरु के अंतर्स में स्थित परमेश्वर की सर्वव्यापी छवि को स्पष्ट करना भी था । इन्हें अध्यात्म और संघर्ष दोनों को साधने के दुहरे दायित्व को संभालने का निर्वहन करना था और इसी उद्देश्य की पूर्ति में एक तरह से उनकी काव्यात्मक प्रतिभा सार्थक भी हुई ।”

भारतीय साहित्य से तथा पौराणिक चरित्रों (राम, कृष्ण, दुर्गा) से प्रभावित होकर तो गुरु ने काव्य रचना की ही किन्तु अरबी-फारसी के एकेश्वरवाद व मूर्ति

पूजा के विरोध से भी वे प्रभावित हुए। उनके काव्य में एकेश्वरवाद के तत्व स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं। यह एकेश्वरवाद विश्व के एक सूत्र में बँधने का संदेश देता है। “अकाल पुरुष कहीं चेतन होकर चेतना संचरित कर रहा है। वहीं कहीं पर चेतना-रहित होकर अचेतन में सोया पड़ा है। दर-दर भिखारी रूप में भीख माँगता चल रहा है, उसमें भी वही है और उसमें भी जो महादानी बनकर मुक्त-हस्त दान कर रहा है कहीं वह तीनों गुणों – सत्व, रज और तम – से परम अतीत है तो कहीं वह सगुण रूप में विद्यमान है।”¹

गुरु के द्वारा स्थापित खालसा पंथ समन्वयवादी था। उसमें सभी के लिए स्थान था। संस्कृत व अरबी के गहन अध्ययन के उपरान्त गुरु ने ईश्वर तत्व को जिस रूप में ग्रहण किया उसी रूप में उसे अपने साहित्य का विषय बनाया। भाषा की समस्या को बड़ी बारीकी से संस्कृत और हिन्दी-हिन्दुस्तानी के माध्यम से फारसी और उर्दू-हिन्दुस्तानी के माध्यम को लेकर एक नया सुझाव दिया है। भाषा के प्रारम्भिक रूप को स्वीकार कर सारी भाषाओं को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयत्न इस कृति में पहली बार किया गया है।² गोबिन्द गाथा का नायक अपने अनुयायियों में आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करना चाहता है इस रूप में उन्होंने अपने उपदेशों में विश्व एकता, मानववाद, आध्यात्मवाद की प्रतिष्ठा की है।

‘पात्रों’ के चयन में काल्पनिकता का अभाव : एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है।:-

हिन्दी उपन्यासों के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि अपने प्रारम्भिक काल से लेकर अद्यतन एक भी उपन्यास ऐसा नहीं है जिसमें किसी न

1. डॉ० भगवती शरण मिश्र : गोबिन्द गाथा पृ० 85
2. डॉ० अजब सिंह अभिनव भारती, पृ० 354

किसी काल्पनिक पात्र की सृष्टि न की गयी हो।

उपन्यास चाहे वे पौराणिक हों या ऐतिहासिक सभी में मुख्य पात्रों को छोड़कर कुछ पात्रों की सृष्टि लेखक की कल्पना की उपज होती है। काल्पनिक पात्रों की सृष्टि लेखक विभिन्न उद्देश्यों से करते हैं कुछ लेखक कथा को मनोरंजक बनाने के लिए तो कुछ अपने विचार उन पात्रों के माध्यम से व्यक्त करने के लिए पात्रों की सृष्टि करते हैं। कथा-साहित्य की यह विशेषता रही कि उसमें पात्र एवं घटनायें कल्पना की सृष्टि होती हैं यद्यपि कथा के लिए विषय तथा पात्र लेखक के आसपास के वातावरण से ही होता है किन्तु उसका विकास लेखक की कल्पना पर आधारित होता है।

“डिकेंस इंगलैंड का बहुत प्रसिद्ध उपन्यासकार हो चुका है। ‘पिकविक’ पेपर्स उसकी एक अमर हास्य-रस-प्रधान रचना है। ‘पिकविक’ का नाम एक शिकरम गाड़ी के मुसाफिरों की जवान से डिकेंस के कान में आया। बस, नाम के अनुरूप ही चरित्र, आकार, वेश-सबकी रचना हो गयी।”¹

इससे प्रमाणित होता है पात्र लेखक की काल्पनिक सृष्टि होते हैं। उपन्यास एवं कहानी के चरित्र यथार्थ होते हुए भी यथार्थ नहीं है। लेखक उनको अपने आस-पास से ग्रहण अवश्य करता है लेकिन उनका विकास पूर्णतया लेखक की कल्पना पर आधारित होता है। यह सत्य है कि चरित्रों की सृष्टि के लिए आधार सत्य ही होते हैं।

“उपन्यासकार के लिए किसी भी चरित्र का निर्माण करना तब तक सम्भव नहीं जब तक वह अपनी कल्पना के सम्मुख किसी जीवित व्यक्ति को लाकर खड़ा नहीं कर लेता।”² पात्रों की काल्पनिकता पर प्रकाश डालते हुए “का के लागू पाँव” की

1. त्रिभुवन सिंह पुस्तक-हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ.116

2. वही पृष्ठ 131

भूमिका में उन्होंने लिखा है कि —

“ऐतिहासिक उपन्यास है यह पर इसमें इतिहास अधिक बोलता है, उपन्यास कम। यही कारण है कि इसका एक पात्र भी काल्पनिक नहीं, चाहे इसका सम्बन्ध गुरु-पुत्र से हो या पिता से कोई यह भ्रम नहीं पाले कि अर्द्ध विक्षिप्त पण्डित शिव दत्त से लेकर पीर भीखन शाह अथवा राजा फतहचन्द मैनी और मामा किरपाल चन्द में से कोई भी लेखकीय कल्पना की उपज है।¹ पात्रों की सत्यता के साथ-साथ उनके जीवन से जुड़ी जो घटनायें हैं वे भी सत्य हैं।

“..... गुरु बालक गोबिन्द राय की बाल्यकाल की घटनाओं का साक्षी नहीं होकर भी उनके वर्णन के लिए काल्पनिक अतिरंजना की वैसाखी मुझे नहीं थामनी पड़ी। जो कुछ लिखा गया वह सत्य के समीप है, कल्पना से दूर।”²

इस प्रकार कथा साहित्य के वैश्विक इतिहास में एक भी पात्र का काल्पनिक न होना एक अनोखी घटना है। यथार्थवादी रचनाओं के क्रम में यह कृति न केवल विषय की दृष्टि से अपितु शिल्प की दृष्टि से भी एक सच्ची रचनात्मक यथार्थवादी कृति है।

आध्यात्मिकता ही विश्वमानवता की संदेश वाहक :—

आज के युग का मानव चहुँ ओर से त्रस्त है इसका एकमात्र कारण उसका अध्यात्म तत्व से दूर होना है। “आज इस भौतिकवादी संसार में ऋत एवं सत्य की उपेक्षा हो रही है। फलस्वरूप आज हाहाकार, अशांति एवं कोलाहलमय स्थिति बनी हुई है। ‘ऋत’ एवं ‘सत्य’ गहरे रूप से उस आध्यात्मिकता से जुड़े होते हैं जिसका

1. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘का के लागू पांव’ पृ० 7

2. डॉ० भगवतीशरण मिश्र: ‘का के लागू पांव’ पृ० 7

आधार मानवीयता है।¹ इसी मानवीयता की स्थापना का प्रयास भारतीय संस्कृति का उद्देश्य रहा है। भारतीय संस्कृति के मूल में आध्यात्मिकता ही है। उपन्यासकार भगवती शरण मिश्र ने कहा है कि "यदि हम सच्चे अर्थों में एवं पूर्ण रूप से विकास करना चाहते हैं तथा आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं तो आज तक हमने जितनी खोज भौतिक क्षेत्र में की है उतनी ही खोज हमें अध्यात्म के क्षेत्र में करनी चाहिए।"² वास्तव में जो आत्म तत्त्व है वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। मनुष्य जब अपनी चेतना का विस्तार करता हुआ इस आत्म तत्त्व तक पहुँचता है तो समस्त सांसारिक क्षुद्र सीमायें चाहे वे देश की हों या काल की समाप्त हो जाती हैं। समय-समय पर अनेक देशों में अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है तथा अपनी प्रखर आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा ही उन्होंने सम्पूर्ण विश्व में जनता के हृदय में स्थान प्राप्त किया। वास्तव में आध्यात्मिक शक्ति इतनी दैवीय है कि वह समस्त विश्व में अपने तेज को प्रसारित करती है। इन आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न मनुष्यों ने विश्व को मानवता का जो सन्देश दिया वह अनुपम है।

"पर एक जगत है इसके अलावा भी — अदृश्य जगत् मानवी शक्तियाँ कुछ नहीं है आध्यात्मिक शक्तियों के समक्ष। इतिहास बताता है कि आज से दो हजार वर्ष से भी पूर्व क्राइस्ट आया था और वह वस्तुतः आध्यात्मिक शक्तियों से उतना सम्पन्न था कि उसने अंधों को आँखें दी थी और कोढ़ियों को 'काया'। झुठलाओ इस ऐतिहासिक सत्य को तब कहो कि अध्यात्म मिथ्या है, धर्म ढोंग है, ईश्वरीय और दैवी शक्तियाँ पोंगापन्थियों की कल्पना की उपज है। झुठलाओ नानक के 'नूर'

-
1. सम्पादक प्रो० अजय सिंह अभिनव भारती, पृ० 83, शोध पत्रिका हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
 2. डॉ. भगवतीशरण मिश्र से उनके निवास स्थान पर दिनांक 09.12.2002 को साक्षात्कार।

के जो देश-विदेश के अधिकांश अंधकार को पी गया, झुठलाना हो तो झुठलाओ कबीर को, सूर को, तुलसी, दादू, रैदास और मीरा को जो इसी आध्यात्मिकता केवल पर आज भी जीवित है। 'तुम कल ही मर जाओगे।'¹ इन सभी महापुरुषों के जीवन इस बात का प्रमाण है कि इन्होंने विश्व मानव को अपने अंक में समेटा। इन के लिए कोई अमीर नहीं कोई गरीब नहीं कोई अपना नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी ही उनका घर तथा सब मनुष्य उनके अपने हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण कर इन्होंने इसी विश्वमानवता का संदेश दिया। वास्तव में धर्म एवं अध्यात्म का वास्तविक एवं मूल उद्देश्य विश्व का कल्याण एवं विश्वमानववाद की स्थापना है।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य तो अपने प्रारम्भिक समय से ही आध्यात्मिकता एवं विश्वमानवतावाद का संरक्षक रहा है।² सभी भारतीय 'यह मानते हैं कि जीवन दुःखमय है तथा आध्यात्मिकता इन दुःखों से बचने का एकमात्र सहारा है। 'भौतिक जीवन आज अशान्त एवं कोलाहलमय स्थितियों का प्रतीक हो गया है। वस्तुतः भौतिक जीवन का अर्थ है – आहार, निद्रा, भय, और मैथुन एवं आध्यात्मिक जीवन का अर्थ पशु की उन क्रियाओं से कुछ श्रेष्ठकर क्रियायें, वस्तुतः मानवीय चेतना एवं सभ्यता का अर्थ है – 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।'³ भौतिक जीवन मनुष्य को स्व तक सीमित रखता है जबकि आध्यात्मिक जीवन सर्वको महत्व देता है मनुष्य यदि शान्ति चाहता है तो उसे आध्यात्मिक जीवन को महत्व देना ही होगा। 'आज के इस भौतिकवादी कोलाहलयुक्त संसार को आध्यात्मिक चिंतन की अपेक्षा है। इसी के द्वारा विश्व मानवता की सुरक्षा की जा सकती है।'⁴ क्योंकि मानवता की एकमात्र

-
1. डॉ. भगवतीशरण मिश्र 'का के लागू पाँव', पृ. 22.
 2. डॉ. रामानन्द तिवारी, 'समालोचक', पृ. 30
 3. डॉ. अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन पृ 66
 4. डॉ. अजब सिंह : चेतना शिक्षा एवं संस्कृति, पृ. 67

वाहिका आध्यात्मिकता है। जिस प्रकार मानवता की परिभाषा प्रत्येक देश व काल में एक जैसी ही रहती है उसी प्रकार अध्यात्म भी प्रत्येक देश में एक ही है। भारतीय संस्कृति तो समूची पृथ्वी को एक परिवार की तरह देखने की पक्षधर रही है। हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना इसी विश्वमानवता की पक्षधर है। मनुष्य के अन्दर जो आध्यात्मिक चेतना है उसका विकास ही आज के मानव को समस्त कष्टों से छुटकारा दिलाकर विश्व को शांति प्रदान कर सकता है। भारतीय आर्श ग्रंथों में यह बार-बार कहा गया है कि सत्य की ही विजय होती है और अन्त में मानव की आत्मा ही प्रभावी रहेगी। वस्तुतः वही मनुष्य सही माने में विश्वमानवता, विश्व संस्कृति, का पोषक एवं संरक्षक होगा। वास्तव में आज के साहित्यकारों व लेखकों का जो कर्तव्य है कि वह आज के मानव को उसके दुःखों से मुक्ति पाने का मार्ग सुझाएँ उस कर्तव्य का पालन डॉ० भगवतीशरण मिश्र ने अपने उपन्यासों में बहुत ही प्रभावशाली ढंग से किया है उनके उपन्यासों के अधिकांश नायक अपनी चेतना का विस्तार कर सभी के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। चाहे वह 'प्रथम पुरुष' एवं 'पुरुषोत्तम के श्रीकृष्ण हों, 'पीतांबर' की मीराबाई 'पवन पुत्र' के हनुमान 'का दै लागूं पाँव' के तेग बहादुर हों या 'गोबिन्द गाथा' के गुरु गोबिन्द सिंह इन सभी चरित्रों में हम ध्यान, धर्म, चेतन शक्ति का विकास करते हुए अध्यात्म तत्व की प्राप्ति का प्रयास देखते हैं। "चेतना का वह स्तर जो भौतिक रूप से अपना प्रभाव प्रकट करती है जो विचार को भी प्रेरित कर सकती है, वह विराट चेतना जहाँ शरीर बहुत छोटी और अन्तर्विष्ट वस्तु होता है, 'योग' चेतना की उसी विराट अनुभूति को खोजती है तथा मानवजाति का गुणात्मक परिवर्तन करने में सक्षम होता है।

भौतिक चेतना के विकास को योग साधना के नियन्त्रण में होना चाहिए, यह विश्व कल्याण, विश्वमानवता की रक्षा सुरक्षा का मार्ग है।¹ अतः यदि विश्वमानवता को अक्षुण्ण रखना है तो आध्यात्मिकता का संबल आवश्यक है। "चेतना के जिस धरातल को महर्षि अरविन्द २, जतिमानस कहा है वह वस्तुतः आध्यात्मिकता का ही दिव्य क्षेत्र है। और उसमें संकीर्णता, ईर्ष्या, द्वेष, सांसारिक कलुषित वासनायें इसकी सीमारेखा में नहीं आ पाती।"² संसार के जितने भी धर्म हैं उन सभी में सभी जीवों से प्रेम की बात कही है। जिस किसी भी धर्म में केवल अपने अनुयाइयों को ही महत्व देने की बात कही जाती है वह सच्चे अर्थों में धर्म होता ही नहीं है। 'गोविन्द गाथा' में गुरु गोविन्द सिंह अपने अनुयाइयों से कहते हैं - "हिन्दू-मुसलमान-सिख सब उसी के बनाए हुए हैं सब उसी के प्यारे बेटे हैं।"³ एक और स्थान पर वे कहते हैं कि अमृत के माधुर्य के कारण जाति-पाति और संप्रदाय को भूलकर सभी के साथ मधुर व्यवहार करेगा। उसके लिए न कोई धनी न कोई दरिद्र। खालसा-पंथ समानता के सिद्धान्त पर आधारित होगा। समभाव इसका लक्ष्य होगा। आज से किसी सिख की न कोई अलग जाति होगी, न सम्प्रदाय। अछूत-छूत, हिन्दू-मुसलमान सभी मात्र खालसा होंगे।"⁴ इस प्रकार उन्होंने केवल मानवता को सर्वोपरि रखा उन्होंने धर्म के प्रचार के लिए लोगों को बाध्य करने को भी गलत बताया।

वे कहते हैं - "मनुष्य-मनुष्य के मध्य अन्तर को समाप्त करना उसका प्रथम लक्ष्य है।"⁵ आध्यात्मिकता का एकमात्र लक्ष्य यही है सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों के मध्य

1. डॉ. अजब सिंह : चेतना शिक्षा एवं संस्कृति, पृ. 79

1. वही, पृष्ठ 81

3. डॉ. भगवतीशरण मिश्र गोविन्द गाथा पृ० 159

4. वही, पृ० 182

5. वही पृ० 230

व्याप्त किसी भी अन्तर को मिटाकर उनमें समानता, प्रेम, बन्धुत्व जैसे भावों का विकास किया जाय जिससे विश्व शांति स्थापित हो सके।

अष्टम् अध्याय

निष्कर्ष, उपलब्धियाँ, एवं उपसंहार —

वर्तमान समय में जबकि हम विभिन्न प्रकार की सामाजिक विषमताओं के दौर से गुजर रहे हैं। यह आवश्यक हो जाता है कि हम समकालीन यथार्थ का सूक्ष्मता से अध्ययन करें। यथार्थ का अध्ययन व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों को बदलने के लिए विचार प्रदान करता है।

भारतीय समाज में निरन्तर बढ़ती जा रही मूल्यहीनता का महत्वपूर्ण कारण है भारतीय जन का अपनी संस्कृति से विमुख होते जाना। हमारी अपनी अस्मिता है अपना साहित्य है जो हमारी संस्कृति के शाश्वत मूल्यों से सिंचित है। अध्यात्म ऐसे ही शाश्वत मूल्यों में से एक है।

वास्तव में यथार्थ को जिस रूप में पाश्चात्य विचारकों एवं कुछ भारतीय विचारकों ने ग्रहण किया है उससे भिन्न यथार्थ के अन्दर अध्यात्म भी समाहित है। जो कुछ दृश्य है तथा मन से अनुभव किया जाता है वह तो यथार्थ है ही किन्तु आत्मा के द्वारा अनुभव किया जाने वाला तथा आत्मा का सत्य भी यथार्थ है। अपने सम्पूर्ण रूप में यथार्थ को हम तभी ग्रहण कर सकते हैं जब वह भौतिक के साथ-साथ अध्यात्म के पक्ष को भी समहित किये हो।

कोई भी कलाकार या साहित्यकार जब अपनी कृति में यथार्थ का अंकन करता है तो उसका लक्ष्य सामाजिक यथार्थ ही होता है। लेखक का उद्देश्य होता है सामाजिक विद्रूपताओं का चित्रण कर पाठक को उन्हें बदलने के लिए प्रेरित

करना किन्तु इसके लिए जो माध्यम अपनाया गया उसी का कुछ परिष्कृत रूप आध्यात्मिक यथार्थवाद है। साहित्य का निर्माण मनुष्य के जीवन को आधार बनाकर होता है "जीवन का उद्देश्य ही आनन्द है। मनुष्य जीवन पर्यन्त आनन्द ही की खोज में पड़ा रहता है।.... लेकिन साहित्य का आनन्द, इस आनन्द से ऊँचा है।, इससे पवित्र है, उसका आधार सुन्दर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनन्द सुन्दर और सत्य से मिलता है। उसी आनन्द को दर्शाना, वही आनन्द उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है।"¹ साहित्य में जब आध्यात्मिक तत्वों का समावेश होता है तब वह मनुष्य को पूर्ण एवं वास्तविक आनन्द की प्राप्ति कराता है। जिस प्रकार भौतिक पदार्थ मनुष्य को सच्चे आनन्द की प्राप्ति नहीं करा सकते उसी प्रकार भौतिक यथार्थवाद का चित्रण भी पूर्ण आनन्द की उपलब्धि नहीं करा सकता है।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में ऐसे महापुरुषों के जीवन को लिया है जिनका जीवन इन्हीं आध्यात्मिक मूल्यों से अनुप्राणित रहा है। इन उपन्यासों में भारतीय संस्कृति अपनी पूरी जीवंतता के साथ उपस्थित है। 'पीतांबर, का के लागूं पांव, गोविन्द गाथा, पवन पुत्र, पावक, अग्निपुरुष' ऐसे उपन्यास हैं जो ऐतिहासिक पौराणिक चरित्रों के माध्यम से आज के युवकों की, वर्तमान पीढ़ी को जीवन जीने के सही माध्यम बताते हैं तथा भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुत करते हैं।

डॉ० भगवती शरण मिश्र जी कहते हैं कि "भारतीय संस्कृति ने विश्व को बहुत कुछ दिया है। आज के समय में जब सम्पूर्ण विश्व आशंका, चिन्ता, विषाद से जूझ

रहा है अस्तित्व का खतरा उत्पन्न होता जा रहा है तब सम्पूर्ण विश्व को यदि कहीं उम्मीद दिखायी देती है तो वह भारत एवं भारतीय साहित्य तथा संस्कृति है।¹

भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष को डॉ० मिश्र ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। भारतीय संस्कृति में श्रद्धा, आस्था, विश्वास, मानवतावाद जैसे तत्व उपस्थित हैं। ये सभी तत्व मनुष्य के आत्मिक विकास में सहायक हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति विश्व-मानवता को निगलने के लिए मुँह फैला रही है। इसके निदान में आध्यात्मिकता ही कारगर हो सकती है क्योंकि आध्यात्मिकता मण्डल वैश्विक कल्याणी-चेतना का अक्षय पुँज है और विश्व मानवता की रक्षा इन्हीं अतिच्छन्दसमयी स्थितियों से की जा सकती है।² इसी को ध्यान में रखकर डॉ. भगवती शरण मिश्र ने जिस यथार्थवाद का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है वह यथार्थवाद भारतीय संस्कृति के माध्यम से विश्व को यथार्थवाद के एक नवीन प्रतिमान से परिचित कराता है। रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद के प्रस्तोता मिश्र जी के ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यास अपने कलेवर में भारतीय साहित्य संस्कृति को समेटे हुए है। “अपसंस्कृति के इस युग में जहाँ आयातित विदेशी मूल्यों ने समृद्ध भारतीय संस्कृति और परम्परा को आखेट बनाकर देश को विखण्डन के कगार पर खड़ा कर दिया है, वहीं यह कृति उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना को समर्पित है। दिग्भ्रमित वर्तमान पीढ़ी को यह मानवता, एकता और अपनी समृद्ध परम्परा का सशक्त सन्देश देने में अद्वितीय है। मुख्य बात यह है कि इसमें सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय, गीता, ब्रह्मसूत्र, भागवत् आदि प्रायः समग्रता में उपलब्ध है।”³

-
1. डॉ. भगवतीशरण के साथ उनके निवास स्थान दिल्ली में लिया गया साक्षात्कार दिनांक 12.01.02
 1. डॉ. अजब सिंह : अभिनव भारती, शोध पत्रिका हिन्दी विभाग, अ.मु.वि. पृ० 359
 3. डॉ. भगवतीशरण मिश्र की कृति “अग्नि पुरुष” के कवर पृष्ठ से उद्धृत।

भारतीय संस्कृति का जड़ से हमारे, त्याग, प्रेम, परोपकार जैसे मूल्यों की पक्षधर रही है। भौतिकवादी जीवन को त्यागकर जीवन के सच्चे यथार्थ आध्यात्मिकता को अपनाने की यह प्रेरणा देती है। यथार्थवाद को सम्पूर्ण रूप में समझने के लिए प्रत्येक दृष्टि से उसका आँकलन आवश्यक हो जाता है। पाश्चात्य समीक्षकों एवं आलोचकों के दृष्टिकोण को अपनाकर हम भारतीय साहित्य में यथार्थवाद के स्वरूप को नहीं जान सकते हैं। हमारे साहित्यकार भी पाश्चात्य यथार्थवादी परिपाटी पर चलकर भारतीय समाज के यथार्थवाद को प्रस्तुत नहीं कर सकते। भारतीय साहित्य को समझने के लिए उसके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए यह आवश्यक है कि उसको भारतीय सन्दर्भों में ही देखा जाय क्योंकि "साहित्य समाज का दर्पण है।" भारतीय समाज में भारतीय मूल्य, भारतीय संस्कृति आज भी जीवन्त है अतः सामाजिक यथार्थ को जानने के लिए उसी समाज की मान्यताओं के संदर्भ में उसे ग्रहण करना चाहिए। यथार्थ के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा करके हम भारतीय साहित्य को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते। भारत के तो कण-कण में अध्यात्म समाहित है। हमारा प्राचीन साहित्य आध्यात्मिकता के गुणों से ओत-प्रोत है। वेद, पुराण, गीता की बात यदि छोड़ भी दें तो भी कुछ आधुनिक कवियों ने अपनी रचनाओं में इसी आध्यात्मिक पक्ष को ग्रहण कर भारतीय जनमानस को उसके महत्व से परिचित कराया है। इसके उदाहरण स्वरूप हम जयशंकर प्रसाद की कामायनी को ग्रहण कर सकते हैं।

"हिन्दी के समाजशास्त्रीय कवि आलोचक "गजानन माधव मुक्तिबोध" ने चेतना के धरातल पर आध्यात्मिकता को काव्य, कला एवं साहित्य के अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है उन्होंने अपनी पुस्तक "एक साहित्यिक की डायरी" में

मनोवैज्ञानिक यथार्थ, समाजवादी यथार्थ के साथ-साथ इसके आतिरिक्त भी एक अन्य यथार्थ की उपस्थिति पर बल देते हैं निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक यथार्थ के बाद मानव जीवन का अन्य यथार्थ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक यथार्थ भी होता है।¹

आध्यात्मिकता मानव को आत्मिक विकास का मार्ग सुझाती है। अपने विवेक एवं आत्मिक शक्ति के बल पर मनुष्य महामानव व अतिमानव की श्रेणी को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य अपने विकास के चरणों से क्रमशः गुजरता हुआ उस अवस्था तक पहुँच सकता है जिसका उल्लेख महर्षि अरविन्द ने करते हुए अतिमानव की अवस्था कहा है। वास्तव में मनुष्य का यही चारित्रिक विकास निरन्तर नष्ट होती जा रही सांसारिक सृष्टि की सुरक्षा कर सकता है।

“यथार्थवाद अपने सम्पूर्ण रूप में इसीलिए मानवतावाद को समाहित किए है। मेरे मत से रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद से परिचित होकर मनुष्य में अपने आत्मिक विकास को लेकर जो क्रांति आएगी वह मानवों को अतिमानवों की श्रृंखला में लाकर खड़ा कर देगी जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण विश्व में मानवतावाद दृष्टिगोचर होगा।

मनुष्य को उसकी श्रेष्ठतम अवस्था तक पहुँचाना ही साहित्य का उद्देश्य है क्योंकि उसके अभाव में उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है। श्रेष्ठ साहित्य मनुष्य को आनन्द प्रदान करता है रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद से युक्त रचनायें पाठक को आत्मिक आनन्द तो प्रदान करती ही है साथ ही ये रचनायें मस्तिष्क में एक विचार भी छोड़ती है कि परिवर्तन सम्भव है। भूमण्डलीकरण के दौर में

1. डॉ. अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 63

विश्वमानववाद की आवश्यकता और भी प्रतीत होती है और उसकी स्थापना यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है।

कथा साहित्य चूँकि मानव जीवन के अधिक समीप होता है और मनुष्य के जीवन के यथार्थ के चित्रण के लिए कथा साहित्य से बढ़कर दूसरी कोई विधा नहीं हो सकती। यथार्थवादी साहित्यकारों ने भी इसी कारण उपन्यास को ही यथार्थ चित्रण के लिए ग्रहण किया।

कुल मिलाकर इस शोध-प्रबन्ध के निष्कर्ष स्वरूप जो तथ्य सामने आते हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि यथार्थवाद को सम्पूर्ण रूप में देखने पर भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता भी उसमें समाहित है। यथार्थ केवल वस्तुओं का यथातथ्य अंकन नहीं है। यथार्थ का एक पक्ष है वास्तविकता का उद्घाटन। मनुष्य के जीवन का जो सत्य है जो विवेक द्वारा संचालित है उसका उद्घाटन। इसके लिए भारतीय संस्कृति सहायिका है। भारतीय संस्कृति के अन्दर ऐसे तत्व उपस्थित हैं जो मनुष्य को उसके जीवन के सत्य से साक्षात्कार कराते हैं। इन तत्वों को प्राचीन भारतीय साहित्य में देखा जा सकता है। समकालीन यथार्थवादी रचनाओं में यदि इस दृष्टिकोण से हम यथार्थ को देखना चाहते हैं तो हमें यथार्थ को भारतीय संदर्भ में भारतीय दृष्टिकोण से देखना होगा। पश्चिमी यथार्थवादी निष्कर्ष पर हम भारतीय रचनाओं की मूल्यवत्ता नहीं आँक सकते। दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। भारतीय यथार्थवाद अपनी सम्पूर्णता में ऐसे तत्वों को ग्रहण किए हैं जो सम्पूर्ण विश्व को एक मार्ग दिखा सकता है। यह विश्वमानवतावाद की उद्घोषणा करता हुआ सम्पूर्ण विश्व को एक ही मंडप के नीचे लाने की योग्यता रखता है। इस शोध प्रबन्ध की उपलब्धि यह है कि यह यथार्थवाद के नए प्रतिमान के रूप में

“रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद” की स्थापना करता है। यह यथार्थवादी रचनात्मक क्रांतिकारी चेतना को जागृत कर मनुष्य को उत्तरोत्तर अपने विकास की प्रेरणा देता है। योग की सहायता से ऐसा कर मनुष्य चरम विकास की अवस्था को प्राप्त करता है। इस अवस्था पर पहुँचकर मनुष्य दैवीय गुणों से युक्त हो जाता है।

“भारतीय योग-साधना में तो विश्व विश्वात्मा और विश्व प्रकृति की चेतना को आत्म-चेतना से सम्बन्धित किया था। चेतना का वह स्तर जो भौतिक रूप से अपना प्रभाव प्रकट करता है जो विचार को प्रेरित भी कर सकता है, वह विराट चेतना जहाँ शरीर बहुत छोटा और अन्तर्विष्ट वस्तु होता है, ‘योग’ चेतना की उसी विराट अनुभूति को खोजता है तथा मानवजाति का गुणात्मक परिवर्तन करने में सक्षम होता है। भौतिक-चेतना के विकास को योग-साधना के नियंत्रण में होना चाहिए। यह विश्व-कल्याण विश्वमानवता की रक्षा-सुरक्षा का मार्ग है। और यही जीवन का नया अर्थ भी है, सन्दर्भ भी है।”¹

सम्पूर्ण मानवजाति के गुणात्मक परिवर्तन होने से विश्व में परिवर्तन स्वतः दृष्टिगोचर होगा। “पीतांबर” की ‘मीराबाई’ अकेले ही सामाजिक परिवर्तन करने में सक्षम थी तब जब ऐसे ही कई मानव होंगे तो दुःख और संताप से त्रस्त जनता सुख का अनुभव करेगी। मनुष्य अपने पूर्णत्व को प्राप्त करेगा और साहित्य का उद्देश्य पूर्ण होगा। इस रूप में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद आज के युग की महती आवश्यकता है। कथा साहित्य के इतिहास में ऐसा प्रथम बार हुआ है कि बिना किसी काल्पनिक पात्र की सृष्टि किए सम्पूर्ण कथाक्रम का ताना-बाना बुन गया हो। “का के लागू पांव”, गोबिन्द गाथा, ‘पीतांबर आदि ऐसी औपन्यासिक कृतियाँ

हैं जिनमें एक भी पात्र काल्पनिक नहीं है। सम्पूर्ण विश्व के कथा साहित्य के इतिहास में यह एक अनोखी घटना है। डॉ० भगवती शरण मिश्र ने इस प्रकार के उपन्यासों की रचना का एक नवीन प्रयोग किया है। यह प्रयोग पूर्णरूपेण सफल भी रहा है। प्रथम तो यथार्थवादी रचना होने के कारण काल्पनिक पात्रों का अभाव इसे यथार्थ के अधिक निकट लाता है। दूसरा कथा के विकास में शिथिलता कहीं भी अनुभव नहीं होती है न ही रोचकता में कमी आयी है यह मिश्र जी की उत्कृष्ट रचनाशक्ति का प्रमाण है।

पारम्परिक एवं पौराणिक आदर्श चरित्रों के जीवन को बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत करना वह भी इस रूप में कि वह अन्य मानवों की रचनात्मक बुद्धि को जाग्रत कर उनमें विकास की प्रेरणा दे मिश्र जी की कुशला रचना-शैली का प्रमाण है।

इस शोध प्रबन्ध की उपलब्धियाँ यही हैं कि यह यथार्थवाद के नये प्रतिमान के रूप में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को अपनाता है तथा उसमें भी यह मानववाद विज्ञानवाद, अतिमानववाद, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिकता को स्वीकार करता है।

उपन्यास के क्षेत्र में भी यह कुछ नवीन आयामों से परिचय कराता है जैसे तीर्थ संस्कृति। तीर्थों के माध्यम से कथा का विकास करते हुए सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधता है। मूल्यों की स्थापना करता है।

हिन्दी काव्य साहित्य में छायावादियों ने जिस तत्व को अपनी कविता में संग्रहीत किया है। उसी तत्व को अधिक प्रभावशाली ढंग से डॉ० मिश्र ने अपने उपन्यासों में ग्रहण किया है। अपनी पुस्तक शिल्प और दर्शन में पन्त कहते हैं कि

विश्व मानवतावाद को लाने के लिए छायावाद ने सर्वात्मवाद और सर्वचेतनावाद का भी आश्रय लिया। पन्त के अनुसार आधुनिक भौतिकवाद मुझे मध्ययुगीन भारतीय दार्शनिकों के आत्मवाद की तरह अपने युग के लिए एकांगी तथा अधूरा लगता है। मानव जीवन के सत्य को अखण्डनीय ही मानना पड़ेगा उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं।¹ इसीलिए आज के युग की आवश्यकता रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद है। अपनी प्राचीन धरोहर को साथ में लेकर यदि हम आगे नहीं बढ़ेंगे तो हम उन्नति नहीं कर सकते। अपनी संस्कृति को विस्मृत करके तो हम अपने अस्तित्व को नष्ट कर रहे हैं।

“विश्व-प्रेम, सौहार्द एवं राष्ट्रीयता अस्मिता की उन्नति के लिए हमें आधुनिकता बोध के साथ-साथ परम्परा बोध को भी आत्मसात् करना होगा। जब तक कोई भी देश अपनी जातीय अस्मिता, सांस्कृतिक विरासत के प्रति आस्था नहीं रखेगा वह देश उन्नति के शिखर पर पहुँच नहीं सकेगा। इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने अतीत की महिमा, अतीत की अनिवार्यता एवं आध्यात्मिकता सांस्कृतिक रिकश पर बल देते हुए कहा है — “मैं अक्सर यह सोचकर हैरान रह जाता हूँ कि हमारी जाति कहीं बुद्ध, महाभारत, रामायण, गीता और उपनिषदों को भूल जासय तो उसका क्या असर पड़ेगा ? हमारी जड़ें उखड़ जायेंगी। हम अपनी उन सारी बुनियादों को खो देंगे, जो युगों से हमारे साथ चली आ रही हैं और जिनके कारण दुनियाँ में हमारी हैसियत बनी हुई है। तब भारत-भारत न रह सकेगा।”² इसीलिए आज की आवश्यकता भौतिक

1. डॉ. अम्बादत्त पाण्डेय : छायावादी काव्य में लोकमंगल की भावना, पृ० 155

2. डॉ. अजब सिंह : यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, पृ० 61

यथार्थ के साथ आध्यात्मिक यथार्थ भी हैं। देशगत, जातिगत सीमाओं का परित्याग कर यदि हम यथार्थ को वैश्विक स्तर पर देखना चाहते हैं तो हमें संकीर्णता के स्थान पर व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए यथार्थ को एक नवीन संदर्भ में ग्रहण करना होगा। आध्यात्मिकता सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधती है जब मनुष्य सभी मनुष्यों में एक ही आत्म तत्त्व के दर्शन अनुभव करने लगता है तब उसकी चेतना का विकास होता है। सारा विश्व उसे एक परिवार के समान प्रतीत होने लगता है इसी भाव एवं ऐसे ही विचारों की आज आवश्यकता है। यही विश्व को शान्ति के मार्ग पर ला सकते हैं। इसीलिए आज का यथार्थ वह है जो मनुष्य को उसके वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता करे इस रूप में हम रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद को स्वीकार करते हैं। केवल जीवन के यथार्थ का चित्रण ही यथार्थ नहीं है अपितु जीवन के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति यथार्थ है। मनुष्य की चेतना शक्ति का विकास यथार्थ है। रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद, यथार्थवाद के इसी पक्ष को उद्घटित कर उसे सम्पूर्ण रूप प्रदान करता है।

रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद सम्पूर्ण विश्व को एक कल्याणकारी मार्ग की ओर ले जाता है तथा विश्व के एक मात्र सत्य ईश्वर की प्राप्ति के लिए मनुष्य की चेतना को जागृत करता है मनुष्य अपने अन्दर दैवीय गुणों को उत्पन्न कर अतिमानव की अवस्था को प्राप्त करें यही इसका उद्देश्य है। मनुष्य का विकास ही समाज का, देश का व विश्व का विकास है।

संदर्भ पुस्तक सूची

लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशक
डॉ० अजब सिंह	1 आधुनिक काव्य की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों	1975	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
	2 स्वच्छंदतावाद : छायावाद	1975	वही
	3 नव स्वच्छंदतावाद	1987	वही
	4 चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति	1997	वही
	5 यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन	1998	वही
अजित कुमार सिन्हा	विज्ञान का दर्शन	1974	उ०प्र० हिन्दी भवन लखनऊ
अम्बादत्त पाण्डेय	छायावादी काव्य में लोक- मंगल की भावना	1973	प्रेम प्रकाशन दिल्ली
अरविन्द	भारतीय संस्कृति के आधार	1968	अरविन्द सोसाइटी पांडिचेरी
आशुतोष कुमार सिंह	डॉ० भगवती शरण मिश्र के साक्षात्कार	2002	किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली
आई० बर्खिन	समाजवाद के निर्माण की कहानी	1965	सोवियत भूमि पुस्तिका नई दिल्ली
उदयभानु सिंह	छायावाद : छायावाद पर लिखित श्रेष्ठ निबन्धों का संग्रह		सामयिक प्रकाशन दिल्ली
डॉ० कुमार विमल	अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य	1965	पराग प्रकाशन पटना
खेलचन्द्र आनन्द	महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य	1973	शारदा प्रकाशन नई दिल्ली
गजानन माधव मुक्तिबोध	नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र	1992	राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
गुलाब राय	भारतीय संस्कृति	1959	रवीन्द्र प्रकाशन ग्वालियर
चमन लाल गौतम	विष्णु रहस्य	1983	संस्कृति संस्थान

जयशंकर प्रसाद	1. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	सं० 2015	भारती भण्डार इलाहाबाद
जैनेन्द्र कुमार	2. तितली	1994	श्याम प्रकाशन जयपुर
द्वारिका प्रसाद मीतल	साहित्य और संस्कृति	1982	पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली
डॉ० दंगल झाल्टे	हिन्दी साहित्य के बाद उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान	1970 1987	साहित्य निकेतन कानपुर वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
डॉ० नगेन्द्र	पाश्चात्य काव्य शास्त्र सिद्धान्त और वाद	अ०सि०	दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन नई दिल्ली
नन्द दुलारे वाजपेयी	1 नया साहित्य नये प्रश्न	1978	द मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लि० दिल्ली
	2. आधुनिक साहित्य	सं० 2018	भारती भण्डार लीडर प्रेस इलाहाबाद
नवल किशोर	मानववाद और साहित्य	1972	राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
प्रेमचन्द	कुछ विचार	1982	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद
	साहित्य का उद्देश्य	1983	हंस प्रकाशन इलाहाबाद
परशुराम शुक्ल विरही	आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद	1966	ग्रन्थम प्रकाशन कानपुर
प्रताप पाल शर्मा	प्रसाद के उपन्यास	1977-78	राज्य श्री प्रकाशन मथुरा
डॉ० मगवती शरण मिश्र	1. नदी नहीं मुड़ती	1982	राजपाल एण्ड सन्स नई दिल्ली
	2. पहला सूरज	1992	वही
	3. पवनपुत्र	1989	वही
	4. प्रथम पुरुष	1995	प्रभात प्रकाशन दिल्ली
	5. पुरुषोत्तम	1990	वही
	6. पीताम्बरा	1993	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली
	7. देख कबीरा रोया	2001	वही
	8. शान्ति दूत	1998	वही
	9. का के लागू पांव	1995	वही

	10. गोबिन्द गाथा	1996	वही
	11. अथ मुख्यमंत्री कथा	1999	वही
	12. पावक	2002	आत्माराम एण्ड सन्स नई दिल्ली
	13. अग्नि पुरुष	2002	वही
माओत्से तुंग	कला साहित्य और संस्कृति	1983	पीपुल्स लिटरेसी दिल्ली
रघुवर सहाय	यथार्थ यथास्थिति नहीं	1984	वाणी प्रकाशन दिल्ली
रामधारी सिंह दिनकर	संस्कृति के चार अध्याय	1962	उदयाचल पटना
	धर्म, नैतिकता और विज्ञान	1959	वही
रामविलास शर्मा	मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य	1984	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
रमाकान्त शर्मा	समाजोन्मुखी यथार्थवादी काव्य	1984	वही
रवीन्द्र कुमार जैन	सिद्धान्त और संरचना	1972	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
लक्ष्मी सक्सेना	समकालीन भारतीय दर्शन	1983	हिन्दी संस्थान लखनऊ
विजय कुलश्रेष्ठ	जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना	1976	पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली
वी0एस0 नरवणे	आधुनिक भारतीय चिंतन	1966	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
वी0एम0 तारा कुण्डे	नवमानववाद	1986	वाग्देवी प्रकाशन वीकानेर
शोभा शंकर	आधुनिक भारतीय समाजवादी चिंतन	1980	साहित्य भवन प्रा0लि0
शिवदान सिंह चौहान	1. साहित्य की समस्यायें	1959	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली
	2. आलोचना के मान	1958	रणजीत प्रिंटर्स दिल्ली
डॉ0 शिवकुमार मिश्र	1. यथार्थवाद	1978	प्रगति प्रकाशन दिल्ली
	2. दर्शन, साहित्य और समाज	1981	पीपुल्स लिटरेसी दिल्ली
शशि शर्मा	मुक्तिबोध की कविता में यथार्थबोध	प्रथम सं0	शब्द और शब्द दिल्ली

शंकर बसंत मुद्गल	हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास	1992	चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर
शुभकार कपूर	आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य	1965	विवेक प्रकाशन लखनऊ
सत्यकाम	आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं प्रेमचन्द	1994	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली
सर्वपल्ली राधाकृष्णन	भारतीय दर्शन	1969	राजपाल एण्ड सन्स नई दिल्ली
सुमित्रानन्दन पंत	1. ग्राम्या	1967	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद
	2. चिदम्बरा	1959	राजकमल प्रकाशन दिल्ली
सर्वपल्ली राधाकृष्णन	धर्म और समाज	1972	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली
सरोज गुप्ता	यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व	1970	अनुराग प्रकाशन अजमेर
सच्चिदानन्द राय	हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना	1974	राजीव प्रकाशन इलाहाबाद
हजारी प्रसाद द्विवेदी	कुटुंब	1964	नैवेद्य निकेतन वाराणसी
हरवंश लाल शर्मा शास्त्री	देवराहा तत्त्व चिंतन सर्वात्म दर्शन	सं० 2026	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
हजारी प्रसाद द्विवेदी	विचार और वितर्क	1961	साहित्य भवन लि० इलाहाबाद
त्रिभुवन सिंह	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	1965	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी
<u>कोष</u>			
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोष	1985	ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी
नगेन्द्र नाथ वसु	हिन्दी विश्व कोष (अठारहवाँ भाग)		वी०आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन
डॉ० नगेन्द्र	1. हिन्दी साहित्य कोष		नेशनल पब्लिशिंग हाउस
	2. मानविकी पारिभाषिक कोष	1998	राजपाल प्रकाशन दिल्ली
रमा शंकर रसाल	भाषा शब्द कोष		प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग

रामचन्द्र वर्मा	मानक हिन्दी कोष (भाग-4)		हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
हरीकृष्ण रावत	समजाशास्त्र कोष	1986	रावत पब्लिकेशन जयपुर
<u>पत्र एवं पत्रिकायें</u>			
अजब सिंह	अभिनव भारती	96-99	अ०मु० वि० अलीगढ़
दयाकृष्ण	मधुमती	1978	राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर
नामवर सिंह	आलोचना	1976	राजकमल प्रकाशन दिल्ली
नन्द किशोर नवल	कसौटी 5	2000	पुनश्च पवनपुत्र अपार्टमेंट पाटन
बालकृष्ण राव	माध्यम	अ०1967	हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
डॉ० प्रणव पण्डया	अखण्ड ज्योति	सि० 2001	अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा
महावीर अग्रवाल, वीरेन्द्र मोहन	सापेक्ष	1984	केलाबाड़ी दुर्ग मध्यप्रदेश
मोहन सिंह सेंगर	नया समाज	मा० 1958	
रामविलास शर्मा	समालोचक	फ० 1959	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
राजेन्द्र यादव	हंस	अ०-सि० 97	अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली
रामधारी सिंह दिनकर	संस्कृति	हेमंत सं० 90	शिक्षा और युवक सेवा मंत्रालय नई दिल्ली
विनोद चन्द्र पाण्डेय	अतएव	नव० 1996	उ०प्र० हिन्दी संस्थान लखनऊ
शैलेन्द्र सागर	कथाक्रम	जु०-सि० 2000	प्रकाश पैकेजर्स लखनऊ
शिवदान सिंह चौहान	आलोचना	अप्रैल 1966	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
सुभाष सेतिया	आजकल	सित० 1999	

अंग्रेजी पुस्तकें

अंस्ट फिशर	द नेसेसिटी ऑफ आर्ट		
क्रिस्टोफर कॉडवेल	रोमान्स एण्ड रियलिज्म		
जार्ज लुकाज	स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म	1950	हिल वे लंदन
हावर्ड फास्ट	लिटरेचर एण्ड रियलिटी		
कार्ल मार्क्स व एंगेल्स	ऑन लिटरेचर एण्ड आर्ट	1978	प्रोग्रेस पब्लिकेशन मास्को

एम0एन0रॉय	न्यू ह्यूमैनिज्म : ए मैनीफेस्टो 1981	अजन्ता पब्लिशर दिल्ली
रॉवर्ट सी. ब्रिन्कले, हार्पर एण्ड रॉ	रियलिज्म एण्ड नेशनलिज्म 1935	न्यूयॉर्क
राल्फ फॉक्स	द नॉविल एण्ड पीपुल 1954	फॉरेन लैंग्वेज प्रेस

अंग्रेजी कोष

शिप्ले	डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर 1953	न्यूयॉर्क फिलोसोफिकल लाइब्रेरी
	द वर्ल्ड बुक : एनसाइक्लोपीडिया 1990 (Vol.16)	वर्ल्ड बुक आई0एन0सी0